खाद्य सामग्री	प्रतिशत
(6) अण्डे	50
(7) गाय और बछड़ो का मास	46
(8) बकरे का मास और मेमना	43
(9) मेव फल	38
(10) गेहूँ को छोड़कर अन्य अनाज	28
(11) पनीर	22
(12) महत दूध	21
(13) फल और सूखे फल (मेव और केला छोड़कर)	19
(14) गेहूँ का आटा	18
(15) सुअर का शुष्क मास	14
(16) मक्खन	13
(17) शक्कर	6
(18) केले	0
(19) कोको	0
(20) वनस्पति लार्ड	0

भूमि की स्थिति, उर्वरता और विविधीकरण का महत्त्व परिवर्तनशील परिस्थितियो मे बदल जाता है। बाजार के आकर्षण का महत्त्व भी यातायात की लागत मे कमी के कारण कम हो जाता है। इससे वस्तु के उत्पादन मे विस्तार होता है। उदाहरणार्थ—

(1) सन् 1850 के बाद समुद्री और रेल यातायात के विकास के कारण अमेरिकन गेहूँ के क्षेत्र का विस्तार प्रारम्भ हुआ था।

(2) अरजेंनटाइना और आस्ट्रेलिया मे शीतगृहो के प्रचार के कारण मास के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला था।

ब्रिटिश पूर्ति के अत्यधिक दबाव के कारण (विशेषकर गेहूँ के लिए) उपर्युक्त दोनो वस्तुओ का प्रतिशत अधिक मात्रा मे कम हो गया था।

जब नगर मे खाद्य उत्पादो की माँग बढती है, तो उनका उत्पादन गहन होता है और उत्पादन मे क्रमश: वृद्धि होती रहती है। पिछली शताब्दी मे जिन क्षेत्रो ने ब्रिटेन मे खाद्यान्न की पूर्ति की थी, वहाँ एक और परिवर्तन यह हुआ कि उत्पादन की नयी पद्धति और तकनीक से उत्पादन की गहनता को

सरलता से बदला गया। ऐसा करने से समस्त या कुछ प्रकार की भूमि से सबसे अधिक लाभ मिला। इस स्थिति में विविधीकरण (Diversification) हतोत्साहित भी हो सकता है और अन्य क्षेत्रों में प्रोत्साहित भी हो सकता है।

कृषि-उत्पादन में उपर्युक्त परिवर्तनों के अनुसार कार्यशैली अपनाना लाभप्रद होता है। परन्तु यह कार्य तुरन्त नहीं किया जा सकता है अर्थात् किसी भी क्षण उत्पादन को अदृश्य परिस्थितियों के प्रकट होने पर बदला नहीं जा सकता है। नयी स्थिति में कृषि कार्य में समजन (Adjustments) भी कुछ अंशों में नहीं किया जा सकता है। इसका कारण कृषकों द्वारा कृषि में हुए परिवर्तनों का अनुभव देर से होना है। साथ ही भू स्वामी और कृषक के बीच कानूनी सम्बन्धों को बदलने में समय लगता है। वैसे कृषकों को पैदावार के पुनर्समजन से तुरन्त लाभ प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि इसके लिए इमारतों और मशीनों (जो एक प्रकार के उत्पादन के लिए बनायी गयी थी) को बदलना जरूरी होता है। इस प्रकार हम अनुभव करते है कि कृषि क्षेत्र की स्थिति (Location of agriculture) कुछ अंशों में विद्यमान परिस्थितियों और कुछ अंशों में भूतकाल की परिस्थितियों पर निर्भर हुआ करती है।

अध्याय 4

फार्मों के आकार

(THE SIZE OF FARMS)

1. परिचालित (Operating) फार्म की इकाई का आकार

गत अध्याय में हमने यह मान्यता स्वीकार की थी कि कृषि की एक उत्पादक इकाई प्रत्येक परिवार में सम्मिलित रहती है। वास्तव में यह मान्यता सम्पूर्ण विश्व के अधिकांश भाग में फार्मों से सम्बन्धित तथ्यों के अनुसार पायी जाती है। ऐसे अनेक देश हैं, जहाँ पारिवारिक फार्मों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। चूंकि पारिवारिक फार्म सामान्यत छोटे आकार के होते हैं इसलिए छोटे आकार की फार्मिंग पर प्रकाश डालना आवश्यक है। प्रत्येक कृषक, उद्योगपति के समान अपनी पैदावार को बढ़ाने के लिए अपनी इच्छा के अनुसार भूमि, पूंजी और श्रमिकों को किराये पर लेने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र होता है। इसी प्रकार प्रत्येक श्रमिक अपने स्वयं के कार्य द्वारा उपार्जित धन की मात्रा से अधिक मात्रा में धन, मजदूरी के रूप में प्राप्त करने की इच्छा रखता है। यह बात दूसरी है कि कोई श्रमिक अपनी विशिष्ट इच्छा के कारण इससे कम मात्रा की मजदूरी लेकर काम करे अर्थात वह स्वेच्छा से, कम कीमत में अपने श्रम को बेचे। उत्पादन की इकाई बड़ी होने से, उसकी लागतें कम होती हैं। ऐसी स्थिति में बड़े उत्पादक को अधिक आय होती है और वह छोटे किन्तु साहसी उत्पादक की तुलना में अधिक मजदूरी देता है। उद्योग में सामान्यत यह स्थिति पायी जाती है। परन्तु कृषि में ऐसा अधिकतर नहीं होता है। लघु मात्रा के उपक्रमों के वर्चस्व के कारण, कृषि और उद्योग में अन्तर पाया जाता है। उदाहरणार्थ—छोटे पैमाने की कृषि में लगभग शून्य मात्रा में किराये के श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होता है। आगामी महत्त्वपूर्ण अध्यायों में कृषि और उद्योग के इस अन्तर को अधिक स्पष्ट किया जायेगा।

बड़े पैमाने की फार्मिंग के लाभ और हानि का विवेचन करने के पूर्व फार्म-उपक्रम का अर्थ समझना आवश्यक है। साधारणतः एक परिचालित इकाई को एक प्रबन्धक के मातहत व्यावसायिक इकाई के रूप में परिभाषित किया जाता है, परन्तु यह परिभाषा पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है; क्योंकि ऐसा भी देखा जाता है कि एक प्रबन्धक देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित दो या दो से अधिक फार्मों का नियन्त्रण करता है। इन फार्मों को कुछ विशेष आर्थिक उद्देश्य के कारण पृथक् इकाई मानना आवश्यक होता है। वैसे अन्य उद्देश्यों के लिए इन फार्मों की जाँच एक इकाई के रूप में भी की जा सकती है।

कृषि के व्यवसाय की परिचालन की मात्रा नापने और इसकी अन्य व्यवसायों के परिचालन से तुलना करने की कोई एक रीति उपलब्ध नहीं है। फार्मिंग से सम्बन्धित आँकड़े, परम्परागत फार्मों के साइज़ का वर्गीकरण, एकड़ों की संख्या के आधार पर करते हैं। एक समान एकड़ के फार्मों को एक समूह में रखा जाता है और फिर एक समूह की दूसरे फार्मों के समूह से तुलना की जाती है। फार्मों की तुलना करने की यह रीति पूर्ण रूप से सन्तोषप्रद नहीं मानी जाती है, क्योंकि एक समूह के दो फार्मों में भी कई प्रकार की भिन्नताएँ रहती है और उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं कहा जा सकता है। साथ ही इस रीति में विभिन्न प्रकार की फार्मिंग के उत्पादन की गहनता का मूल्यांकन नहीं किया जाता है। उदाहरणार्थ, गहन रीति से शाकभाजी उत्पन्न करने वाला 50 एकड़ का फार्म, घास उत्पन्न करने वाले 50 एकड़ के फार्म से भिन्न होता है। एकड़ का आधार कृषि और उद्योग की तुलना करने का भ्रम उत्पन्न करने वाला आधार होता है, क्योंकि इसे आधार मानने पर यह कहा जा सकता है कि उद्योग की अपेक्षा कृषि में परिचालित इकाइयाँ बड़ी होती हैं। यह स्पष्ट रूप से एक विवेकयुक्त निष्कर्ष नहीं है।

फार्मों के साइज़ का सर्वोत्तम प्रमाप इस उद्देश्य पर निर्भर होता है, जिसकी प्राप्ति के लिए प्रमाप की आवश्यकता होती है। इस तथ्य पर प्रकाश डालने के लिए आगामी अध्यायों में, निम्नलिखित दो प्रकार की सूचियों की आवश्यकता होगी :—

(1) प्रत्येक फार्म में कार्यकर्त्ताओं की संख्या

(2) प्रत्येक फार्म के उत्पादन का मूल्य

उपर्युक्त दोनों प्रमापों के अनुसार यह पाया जाता है कि औसत औद्योगिक

उपक्रम की तुलना मे औसत कृषि व्यवसाय का आकार बहुत छोटा होता है। उदाहरणार्थ—युद्ध के पूर्व ग्रेट ब्रिटेन म औद्योगिक फर्म मे कार्यकर्त्ताओं की औसत सख्या 29 थी, जबकि कृषि मे यह सख्या केवल 4 थी। साथ ही इस सख्या मे कृषक भी सम्मिलित था। आजकल उद्योग मे प्रति फर्म पैदावार का मूल्य कृषि-फर्म की पैदावार के मूल्य से 13 गुना अधिक पाया जाता है।

उपर्युक्त औसतें व्यक्तिगत उपक्रमो के अन्तर को छिपा लेती हैं। गैर कृषि उपक्रमो को, जैसे फुटकर दूकानें, कुछ कार्यकर्त्ताओं के समान औसत दर्शाना चाहिए। यद्यपि इन दूकानो की कुल बिक्री, कृषि के समान कम नही होती है। यह अन्तर बिल्कुल सही और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

2 बडे फार्मो के लाभ

उद्योग के समान कृषि मे भी बडे पैमाने के उत्पादन के कुछ लाभ होते हैं। इन लाभो को निम्नलिखित दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है —

(1) बाजार सम्बन्धी मितव्ययताएँ, जो बडे पैमाने के क्रय-विक्रय करने से प्राप्त होती है।

(2) तकनीकी मितव्ययताएँ, जो फार्म के आधिक सचालन से प्राप्त होती हैं।

बाजार सम्बन्धी मितव्ययताएँ, आधिक क्रियाओ के बढने से क्रय-विक्रय की वास्तविक लागतों मे कमी के कारण उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त य मितव्ययताएँ, कृषक की मोल-भाव करने की शक्ति मे सापेक्षिक उन्नति होने से भी प्राप्त होती हैं। कृषको से लेन-देन करने वाले व्यापारी ऊँची लागतें उठाते हैं। सामान्यतः इन लोगो का व्यय, अधिक मात्रा मे होता है। उदाहरणार्थ—जब ये व्यापारी एक व्यक्ति के स्थान पर दस व्यक्तियो को चार टन उर्वरक बेचते हैं, तो उनके हिसाब-किताब रखने का खर्च बढ जाता है। इन व्यापारियों को पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत क्षेत्र म खाद पहुँचाना पडता है। खाद के वितरण करने की क्रिया म भी खाद की कुछ मात्रा नष्ट हो जाती है। प्रत्येक उत्पादक स कम मात्रा म खाद खरीदते समय इसी तरह के खर्च किय जाते हैं। छोटे और मध्यम प्रकार के लेन-देन म व्यय के इन अन्तरो का महत्त्व रहता है। इग्लैण्ड का एक उद्यमी, जो केवल अपने परिवार के सदस्यों की सहायता स कार्य करता है और किराय के श्रमिकों का उपयोग नही करता है, वह अपनी वर्ष भर की आवश्यकताओ की पूर्ति, वस्तुओं को एक या दो बार खरीद कर करता

है। थोक खरीदने की इस रीति के कारण ऐसे किसान को खाद्य-सामग्री या उर्वरक बेचने वाली फर्मों से अधिक मात्रा में बट्टा (Discount) मिलता है। जहाँ तक उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री का प्रश्न है, वह अपने नाशवान् उत्पादों का स्टाक इकट्ठा करके नहीं रखता है। परन्तु यातायात की ऊँची लागत तथा बिक्री खर्चों के कारण, उत्पादित वस्तुओं की कीमतों को कम नहीं किया जा सकता है। वैसे यह अन्तर सामान्यतः बहुत अधिक नहीं होता है। बड़े पैमाने की बिक्री करने का एक लाभ यह भी है कि किसान अपने उत्पादों को कोटियों में बाँट सकता है और सामान्य परिस्थितियों में ऊँची औसत कीमत[1] प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

[बड़े पैमाने के लेन-देन से मिलने वाले लाभ व्यापारियों द्वारा प्रदान की जाने वाली अच्छे किस्म की मोल-भाव करने की शक्ति (Bargaining power) में निहित रहते हैं। उन देशों में जहाँ बिखरे हुए क्षेत्रों में उत्पादन होता है, वहाँ छोटे उत्पादक उन व्यापारियों पर निर्भर रहते हैं, जिनसे वे सामान खरीदते हैं और जिन्हें वे अपनी उत्पादित वस्तुएँ बेचते हैं।] इसके विपरीत बड़े पैमाने के कृषि-उपक्रम अपनी आवश्यकता के अनुसार स्वयं का क्रय-विक्रय-संगठन स्थापित कर लेते हैं। इस सन्दर्भ में छोटे-बड़े पैमाने के उत्पादक एक साथ कार्य कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए बड़े पैमाने के उत्पादकों को छोटे उत्पादकों का कच्चा माल खरीदने और उनके उत्पादों के बेचने के कार्य में सहकारिता अपनानी आवश्यक होती है। आगामी अध्याय पाँच में इस सम्भावना के बारे में विचार किया जायेगा। अभी इतना ज्ञान करना पर्याप्त है कि बड़े पैमाने के उपक्रम छोटे पैमाने के उपक्रमों से क्रय-विक्रय करने में सन्तोषप्रद लाभ प्राप्त कर लेते हैं। छोटे उपक्रमों को ऐसे मध्यस्थ से लेन-देन करना पड़ता है, जो एकाधिकारी होता है। साथ ही अन्य व्यापारियों से या विभिन्न बाजारों से दूरी, या अपनी अनिच्छा या निश्चेष्टता आदि के कारण, ये छोटे उपक्रमी क्रय-विक्रय सम्बन्धी सहकारिता के विकास को रोक लेते हैं।

बड़े पैमाने के फार्म के निम्नलिखित तकनीकी लाभ हैं.—

(1) फार्म के साइज के बढ़ने से, फार्म की इमारत के लिए सापेक्ष रूप से कम खर्च करना पड़ता है। चार गुने पशुओं के रखने के लिए बनायी जाने

---

1. अध्याय 5, उप-शीर्षक 3, देखिए।

वालो छाया या चार गुना अनाज रखने के लिए धान्यागार या कोठार बनाने का खच, छोटी इमारत बनाने के चौगुने खच से कम होता है। उदाहरणार्थ— फश को चौगुना करने के लिए केवल फश और छप्पर को चौगुना करना जरूरी होता है। दीवालो का क्षेत्रफल चौगुना न बढकर केवल दुगना होता है। दीवालो की ऊँचाई बढाने की कोई आवश्यकता नही रहती है। यह लाभ कुछ प्रकार के फार्मिंग म सबसे अधिक मिलता है। यथा—सुअरो को बिल्डिंग म भीतर खिलाने और गायो का दूध भीतर दुहने की व्यवस्था का कार्य। इन कार्यों मे इमारतो का अत्यधिक महत्त्व होता है।

(2) बडे फार्मों मे विशिष्ट और महँगी मशीनो का लगातार उपयोग (परिचालन) किया जा सकता है। यह लाभ अन्य लाभो की तुलना मे औद्योगिक उपक्रम को बढा हुआ स्वरूप प्रदान करने वाला एक निर्णायक लाभ माना जाता है। उदाहरणार्थ— लोहा और इस्पात उद्योग मे धमन भट्ठी, मोटर उद्योग मे विभिन्न पुरजो को एकत्रित करने वाला गतिमान पट्टा और अन्य प्रकार की मशीनें, उस समय प्रयोग मे आ सकती हैं, जिस समय वहाँ कार्य करने वाले लोगो की सख्या अधिक होती है। कृषि मे इस प्रकार की मशीनो का कोई प्रयोग नही होता है और न उनका कोई अस्तित्व ही रहता है। इस तथ्य के बारे मे हम पहले ही विवेचना कर चुके हैं कि कृषि के कार्य मे, एक व्यक्ति को उद्योग की अपेक्षा अधिक क्षेत्रफल मे कार्य क्यो करना पडता है। ऐसे बिखरे हुए कार्यों मे कई लोगों की मदद से चलने वाली मशीनो के उपयोग का प्रश्न ही नही उठता है, क्योंकि इसके लिए किसी भी भूमि पर उत्पादन की सघनता की आवश्यकता होगी, जो बिल्कुल ही अलाभकर स्थिति होगी। फिर भी कुछ ऐसी कृषि मशीनें है, जिनका उपयोग अधिक सख्या मे श्रमिकों के उपलब्ध होने पर ही किया जा सकता है। उदाहरणार्थ—गहाई की एक मशीन मे सात या आठ लोगो की एक टोली की आवश्यकता होती है। कटाई की एक मशीन मे ट्रैक्टर चलाने के लिए एक आदमी, कटाई की मशीन चलाने के लिए एक आदमी और कटा हुआ अनाज हटाने के लिए एक आदमी की आवश्यकता होती है अर्थात् कुल तीन आदमियो की जरूरत होती है। चूंकि साल भर इन लोगो की आवश्यकता नही होती है, अत इसम म कुछ लोगो को अस्थायी रूप मे, कुछ समय के लिए मजदूरी पर लगाया जा सकता है। यदि फार्म के समस्त परिचालन को समान रूप से मशीनीकृत कर दिया जाय, तो

भी यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है कि मशीनो के प्रयोग से एक फार्म-विशेष मे श्रमिको और कार्यकर्त्ताओ की लाभदायक सख्या को कहाँ तक बढाया जा सकता है। इस प्रकार के परिवर्तन से, सबसे अधिक लाभदायक क्षेत्रफल की मात्रा निश्चित रूप से बढ जाती है। कम्बाइन-कटाई-मशीन (Combine harvester) जैसी महँगी मशीन उस समय तक लाभदायक नही होती है जब तक कटाई के मौसम मे इस मशीन का पूरा-पूरा उपयोग न हो। कम्बाइन-कटाई-मशीन, घोडे की सहायता से चलायी जाने वाली कटाई मशीन (Horse driven mower) से दुगने क्षेत्रफल मे कटाई कर सकती है।

प्राय सभी दृष्टान्तो से यह ज्ञात होता है कि फार्मो के सबसे लाभदायक मान या प्रमाप मे मशीनो के उपयोग से वृद्धि होती है। इस प्रमाप को फार्म के उत्पादन द्वारा नापना आवश्यक है। ऐसा माना जाता है कि हाथ द्वारा की जाने वाली खेती की अपेक्षा मशीन के द्वारा की जाने वाली खेती से प्रति एकड उत्पादन कम मात्रा मे देती है। परन्तु सर्दैव निश्चित रूप से ऐसा नही होता है। मशीनें, निराई (Weeding) या अनाज उठाने का कार्य हाथ श्रमिको के समान बिल्कुल सही रूप मे नही कर सकती हैं। चूँकि मशीन की क्रिया सस्ती होती है, इसलिए उपज आने पर ये कार्य, अधिकाश मात्रा मे हाथ श्रमिको की अपेक्षा मशीन के द्वारा किये जाते हैं। इस तरह प्रति एकड पैदावार की कमी को प्रत्येक फार्म मे मशीनो का पूर्ण रूप से उपयोग करके और खेती का क्षेत्रफल बढाकर न केवल पूरा किया जाता है, बल्कि कुल उत्पादन की मात्रा भी बढायी जाती है।

यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि फार्मिंग का लाभदायक प्रमाप मशीनीकरण के द्वारा उस समय बढ जायेगा, जब इस प्रमाप को प्रत्येक फार्म मे काम करने वाले श्रमिकों की सख्या से नापा जा सकेगा। विविधीकृत फार्मों म ऐसी स्थिति की सम्भावना बहुत अधिक रहती है। एक बात और ध्यान देने योग्य है कि कृषि-कार्य की समस्त परिचालन क्रियाओ को मशीनीकृत नही किया जा सकता है। उदाहरणार्थ—

(1) मशीनो के द्वारा अनाज की अपेक्षा जडो की खेती व कटाई का तरीका निकालना बहुत कठिन है।

(2) पशुपालन के अधिकाश कार्यों को हाथ द्वारा करना आवश्यक होता है।

किसी फार्म मे अनाज की खेती क लिए बनायी गयी मशीनो से लाभ प्राप्त करने हेतु अधिक क्षेत्रफल की भूमि की आवश्यकता होती है। इसी तरह विविधीकृत फार्मिंग के लाभ प्राप्त करने के लिए श्रमिको को, मजदूरी पर अधिक सख्या मे काम मे लगाना जरूरी होता है। ऐसी भूमि मे बहुत अधिक मशीनो का वर्ष भर प्रयोग करके फसल उत्पन्न की जाती है। उदाहरणार्थ— मान लीजिए, एक फार्म के कुल क्षेत्रफल का $\frac{1}{2}$ भाग प्रत्येक वर्ष अनाज की खेती के अन्तर्गत रहता है और उस फार्म मे तीन व्यक्ति कार्य करते है। इन व्यक्तियो मे से एक व्यक्ति अनाज की बुआई के लिए आवश्यक है। कटाई की नयी मशीन के अनुसन्धान के कारण, अब दुगुने क्षेत्रफल की आवश्यकता हो गयी है, क्योकि दुगुने क्षेत्रफल मे ही इस नयी मशीन का आर्थिक उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कृषि के अन्य परिचालनो (क्रियाओ) मे कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नही है। यदि इस नयी स्थिति मे अनाज की भूमि का क्षेत्रफल कुल क्षेत्रफल का $\frac{1}{2}$ ही रखा जाता है, तो अन्य परिचालनो को करने के लिए दो अतिरिक्त व्यक्तिओ की आवश्यकता होती है। यह दृष्टान्त यद्यपि अतिशयोक्तिपूर्ण है, फिर भी इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि फार्मिंग के मशीनीकरण से फार्म के लाभदायक साइज का विस्तार होता है, परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि फार्मिंग का मशीनीकरण बहुत बडे फार्मो की आवश्यकता उत्पन्न करता है।

(3) बडे फार्मो का तीसरा लाभ श्रमिक-लागतो के कम होने से प्राप्त होता है। बडे फार्मो मे प्रत्येक श्रमिक को ऐसे कार्य पर नियुक्त किया जाता है, जो उसके सर्वाधिक अनुकूल हो। योग्यता के अनुसार कार्य मिलने पर श्रमिको के स्वाभाविक झुकाव और कार्य करने की निपुणता, जो उस काय को लगातार करने से उत्पन्न होती है, के लाभ प्राप्त होते है। खेती म उद्योगो की अपेक्षा निपुणता उत्पन्न करके आर्थिक मितव्ययता प्राप्त करने का अवसर कम मिलता है; क्योकि कृषि मे ऐसी क्रियाएँ होती हैं, जिन्हे प्रत्येक दिन सम्पूर्ण मात्रा मे करना प ता है। किसी छोटी-सी क्रिया मे एक व्यक्ति को अपना ध्यान केन्द्रित करने का अवसर नही मिलता है जैसा कि उद्योग मे मिलता है। फार्म के श्रमिक और कार्यकर्ताओ को वर्ष के उपयुक्त मौसम मे हल चलाना, हैरो चलाना तथा फसल की कटाई करने का कार्य करना पडता है। इन लोगो मे उपर्युक्त समस्त कार्य करने की योग्यता रहती है। इसी प्रकार गायो का दिन म दो बार दुहना और सुअरों को दो समय खाना देना आवश्यक होता है।

परन्तु पशुपालक अपना समस्त समय केवल इन कार्यों को करने मे व्यतीत नही करता है। उसे इन कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्य करने भी जरूरी होते हैं।

कृषि के समान ही उद्योग मे भी विभिन्न प्रकार के शारीरिक या कायिक (Manual) कार्यों को समान महत्त्व दिया जाता है। कुछ लोग विशेष रूप से पशुओ की देखभाल करने मे निपुण होते हैं। इस कार्य के लिए छोटे फार्मों को अपेक्षा बडे फार्म ज्यादा मूल्यवान होते हैं क्योकि बडे फार्मो मे ये लोग गडरिया या गायो के रखवालो के रूप मे पशुओ की देखभाल करने के कार्य मे विशिष्टीकरण (Specialisation) प्राप्त करने का अवसर पाते हैं। इसके विपरीत, छोटे फार्मो मे यह विशिष्टीकरण नही हो पाता है, क्योकि यहाँ उनका अधिकाश समय खेती के योग्य भूमि मे, कार्य करने मे व्यतीत हो जाता है। श्रमिको का झुकाव (Aptitude) विभिन्न प्रकार के शारीरिक कार्यों के अतिरिक्त व्यवसाय के प्रबन्ध मे भी भिन्न रूप मे पाया जाता है। कुछ लोग, अन्य लोगो की अपेक्षा उत्पादन के सगठन, मातहत कर्मचारियो के कार्यों के पर्यवेक्षण और आवश्यक निर्णयो को लेने, जैसे क्या उत्पन्न करना चाहिए या कैसे बेचना चाहिए इत्यादि मे अधिक निपुण होते हैं। बडे पैमाने के उद्योग का छोटे पैमाने के उद्योग की तुलना मे एक अतिरिक्त लाभ यह होता है कि बडे पैमाने के उद्योगो म निपुण लोगो का पूरा-पूरा उपयोग किया जा सकता है। यहाँ उद्यमियो को अपना सम्पूर्ण समय, नीति सम्बन्धी प्रमुख समस्याओ को सुलझाने, अन्य लोगो को कायिक श्रम बाँटने तथा छोटी देखभाल करने के कार्यों को सुपुर्द करने इत्यादि, कार्यो मे व्यतीत करने की पूर्ण स्वतन्त्रता एव स्वीकृति रहती है।

कृषि मे, कभी-कभी श्रम-विभाजन का यह सम्पूर्ण रूप ऐसे देशो मे अपनाया जाता है, जहाँ जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियाँ शीघ्रता से बदलने की सम्भावना नहीं रहती है। लोगो को इन परिस्थितियों का ज्ञान पहले से रहता है। यहाँ उत्पादन एक फसल के स्तर पर विशिष्टिकृत होता है। फोरमन या ओवरसियर, श्रमिको और कार्यकर्त्ताओ के कार्यों का परिवीक्षण (Supervision) तात्कालिक ढग मे करते हैं। परिवर्तनशील जलवायु वाले देशो मे मिश्रित फार्मिंग एक सामान्य नियम होता है। यहाँ उत्पादन को क्रमबद्ध करना अत्यन्त कठिन होना है क्योकि प्रत्येक खेत मे, कार्यों मे भिन्नता पायी

जाती है और इन कार्यों को मौसम के अनुसार बदलना जरूरी होता है। उपर्युक्त कारणों से फार्मिंग में कई विस्तृत निर्णय लेने पड़ते हैं। कृषक इन कार्यों को किसी को सुपुर्द न करके स्वयं करता है।

3 छोटे फार्मों के लाभ

एक बड़े फार्म का साइज एक विशेष सीमा से अधिक होने पर परिवीक्षण की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं और उस फार्म की उत्पादन करने की योग्यता एवं क्षमता को घटा देती हैं। बड़े फार्मों की इस साइज सम्बन्धी कठिनाई के कारण, छोटे फार्मों को प्रोत्साहन मिलता है। चूँकि एक कृषक, कृषि सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण निर्णय स्वतः लेता है, इसलिए वह बड़ी संख्या में कार्यरत श्रमिकों के कार्यों की देखभाल (पर्यवेक्षण) नहीं कर पाता है। कृषक की असमर्थता का एक कारण यह भी है कि कम मजदूरों के स्थान पर अधिक मजदूरों को कार्य में लगाने से कृषि का प्रबन्ध कम प्रभावशील रह जाता है, क्योंकि श्रमिक उद्योग की अपेक्षा कृषि के कार्य में बड़े क्षेत्र में फैले रहते हैं। सामान्यतः एक व्यक्ति के लिए कई लोगों पर एक साथ नियन्त्रण करना असम्भव हो जाता है। उदाहरणार्थ—(1) इंग्लैण्ड में मिश्रित फार्म में साधारणतः एक वर्ग मील से कम क्षेत्र में औसतन दस व्यक्ति कार्य नहीं करते हैं।

(2) अमेरिका में मध्य पश्चिम के गेहूँ के फार्म में दस श्रमिकों के कार्य करने का औसत क्षेत्र $2\frac{1}{2}$ वर्ग मील होता है।

श्रमिकों का इस प्रकार का फैलाव या विस्तार, उन्हें बहुत अधिक संख्या में कार्य करने से रोकता है। कम संख्या के श्रमिकों के कार्यों की देखभाल करने के लिए एक पर्यवेक्षक की आवश्यकता होती है। कृषक इस कार्य को स्वतः या अपने प्रतिनिधि द्वारा करता है। परन्तु ये लोग कृषि के प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य में दिन का सम्पूर्ण समय नहीं दे पाते हैं। श्रमिक एक दिन के कुछ भाग में, प्रबन्धक के आदेशों की अनुपस्थिति में कार्य करते रहते हैं। इसके लिए जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियों का अपरिवर्तित रहना जरूरी है। फार्म में ये कार्यकर्त्ता कुछ शारीरिक श्रम भी करते हैं। सामान्य कार्यों में अकस्मात् परिवर्तन होने से कृषि के कार्य में शेष व्यवस्था करना जरूरी होता है। फार्मिंग में इस प्रकार के प्रबन्ध और शारीरिक श्रम सम्बन्धी कार्यों को पूर्ण रूप से बाँटना सदैव लाभदायक नहीं होता है।

उपर्युक्त कृषि कार्यों को विभाजित न करने के भी कुछ लाभ होते हैं। साधारणत फार्म के प्रबन्ध की कुशलता, कार्यकर्त्ता की योग्यता, निपुणता और उसकी उन्नति के प्रति दिये जाने वाले ध्यान की मात्रा पर निर्भर होती है। इसके लिए फार्म की लगातार देखभाल आवश्यक होती है। यह देखभाल करने के लिए, कार्यकर्त्ता को, कृषि के परिणामो मे वित्तीय दृष्टिकोण स दिलचस्पी लेना जरूरी होता है। कार्यकर्त्ता केवल परिणाम के आधार पर किसी व्यवसाय मे भुगतान नही कर सकते हैं। ऐसे भुगतान कार्यो की भिन्नता के कारण असम्भव होते है क्योकि इनम से कुछ कार्यो को ही नेम (Routine) मे बदला जा सकता है। ऐसे फार्मो मे निश्चित मात्रा म लाभ होता है और कृषक की आय इन फार्मों पर निभर रहती है। फाम के समस्त कार्यों के एक बडे हिस्से की देखभाल स्वय कृषक के द्वारा किय जाने से कुछ छोटे फाम वास्तविक मितव्ययता प्राप्त करने की स्थिति (यह स्थिति वडे फार्मो मे पायी जाती है) न होते हुए भी वडे फार्मो की तुलना मे, अपनी लागता को कम-से-कम करने मे सफल हो जाते है।

इसलिए कुल मिलाकर उद्योगो की अपेक्षा कृषि मे वड पैमाने के परिचालन के बहुत कम लाभ मिलते है। उद्योगो म सबम बडा लाभ अत्यधिक मितव्ययी, किन्तु जटिल मशीनो के प्रयोग से मिलता है, परन्तु कृषि में इनका महत्व बहुत कम होता है। कृषि म उद्योग की अपेक्षा व्यवसाय के आकार म वृद्धि करने से उत्पन्न होने वाली, प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयाँ बहुत कम पायी जाती ह। चूंकि य कठिनाइयाँ वडे पैमाने के प्रबन्ध सम्बन्धी निपुणता से प्राप्त होने वाली मितव्ययताओ का निर्धारण करती हैं, इसलिए सबमे योग्य व्यवसायी कृषि के कार्य से उद्योग की ओर आकर्षित होत है। उद्योग मे अपनी प्रबन्ध सम्बन्धी योग्यताआ का उपयोग करके अधिक से अधिक लाभ कमाने और उन्नति करने का अवसर प्राप्त होता है। जिन लोगो मे बड पैमान के सगठन के प्रति कम रुचि या योग्यता होती है, वे कृषि के कार्य म शेष बचे रहते हैं। इस प्रकार के कृषक, फार्म के सबसे अधिक लाभदायक साइज का उपयोग नही कर पाते है। सामान्य योग्यता वाला व्यक्ति कृषि करक, अपनी सेवा-निवृत्ति के समय तक औसत फार्म से कुछ वडे साइज का फाम तयार कर लेता है। परन्तु ऐसा भी देखा गया है कि इस कृषक के उत्तराधिकारियो मे बहुत कम सदस्य ऐसे होते हैं, जो उपर्युक्त आकार के फाम का प्रबन्ध सफलतापूर्वक करने मे सफल हो जाते हैं।

4 फार्म के अनुकूलतम साइज मे परिवर्तन

कृषि एक ऐसा उद्योग है, जिसकी समस्त शाखाओ का साइज सभी परिस्थितियो में, हमेशा, एक समान नहीं होता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(1) छोटे साइज क फार्म को कच्चे सामान की पूर्ति प्राप्त करन और अपनी पैदावार को बाजार मे बेचने मे जितनी अधिक कठिनाई होती है, बडे फार्मों मे इन कार्यों से उतना ही अधिक लाभ प्राप्त होता है।

(2) छोटे फार्मों की अपेक्षा बडे फार्म अधिक सख्या मे, श्रमिकों की सहायता से योग्य मशीनो के द्वारा अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। उदाहरणार्थ, अनाज की कटाई की मशीनो से किया गया कार्य।

(3) मिश्रित फार्मिंग पद्धति में फार्मों का विस्तार मशीनो और प्रबन्धको की निपुणता मे विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से पायी जाने वाली मितव्ययताओं की मात्रा क अनुसार होता है।

(4) फार्मिंग का कार्य प्रति एकड जितनी तीव्र गति से होता है, एक कृषक के लिए अधिक सख्या मे व्यक्तियो के कार्यों की देखभाल करना, उतना ही सरल हो जाता है। ऐसे फार्मों मे कम क्षेत्रफल रहते हुए भी, श्रम-शक्ति बढने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसे सकुचित फार्म की प्रवृत्ति कहते हैं। इसम अन्य परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण नहीं होती हैं। बडे फार्मों मे देखभाल करने का कार्य विस्तार के साथ करना पडता है और फार्म सम्बन्धी जानकारी अधिक मात्रा मे इकट्ठा करना जरूरी होता है। इसलिए कृषक छोटे फार्म पसन्द करते हैं। विस्तृत फार्मिंग की अपेक्षा सकुचित फार्मों मे नेम (Routine) की मात्रा भी कम पायी जाती है।

(5) सर्वाधिक आर्थिक-फार्म का साइज श्रमिक, कार्यकर्त्ता और फार्म के स्वामी के बीच प्रबन्ध सम्बन्धी निपुणता के अन्तर के अनुसार बडा होता है।

फार्मों मे उपयोग आने वाली मानव शक्ति को दो श्रेणियो म बाँटा जाता है। प्रथम—अधिक सख्या वाला अनिपुण श्रम, जो सस्ता होता है। द्वितीय—कम सख्या का निपुण श्रम, जिसम प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों को करने का झुकाव अधिक रहता है। फार्म के प्रबन्ध मे आवश्यक समस्त समय के अधिकाश भाग म दूसरी श्रेणी के श्रम से अधिक लाभ प्राप्त होता है। परन्तु इनके एक समूह का दूसरे समूह के कार्यकर्त्ताओ मे बदलने मे, उपर्युक्त समय का अधिकाश भाग व्यतीत हो जाता है।

बड़े साइज़ के फार्मों को कार्यकर्त्ताओं को सख्या और फार्म की पैदावार के मूल्य से नापा जाता है। साधारणतः ऐसे फार्म बागानों के क्षेत्र में पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में बड़े फार्म के लिए अनुकूल सुविधाएँ, अधिक मात्रा में, एक साथ पायी जाती हैं। बागानों में पैदा किये गये उत्पाद दूर के बाजारों में बेचे जाते हैं। उदाहरणार्थ—चाय, कॉफी, कपास, शक्कर इत्यादि। चूँकि इन उत्पादों का प्रयोग विशिष्ट उत्पादन के लिए किया जाता है, इसलिए ये बागान ऐसे स्थानों में लगाये जाते हैं जहाँ बड़ी सख्या में देशी श्रमिक तथा प्रशासन में अनुभवी उपनिवेशी या अधिदर्शक उपलब्ध हो। अभी हाल की खोजो स पता चला है कि छोटे साइज़ के फार्मों के उत्पादन की अपेक्षा बागान का उत्पादन अधिक लाभदायक होता है। परन्तु रबर के उत्पादन के लिए यह बात सही नहीं है। इग्लैण्ड के सबसे बड़े फार्मों में अनाज की मशीनों की सहायता से की जाने वाली खेती का सयाग विविधीकृत फार्मिंग के साथ किया गया है।

5. विस्तार में तकनीकी अवरोध

हम यह जान चुके है की तकनीकी दृष्टिकोण से फार्म का सबसे लाभदायक साइज़ सापेक्ष रूप से छोटा होता है। परन्तु यह साइज इतना छोटा नही होता है, जितना पहले से विकसित देशो मे पाया जाता है। सबसे अच्छे साइज़ के फार्म की गणना क्षेत्रफल के आधार पर की जाती है। यह गणना रोजगार पाने वाले लोगो की सख्या के आधार पर नही की जाती है। एक और मूल्याकन के अनुसार यह कहा जाता है कि इग्लैण्ड में सामान्य मिश्रित फार्मिंग का कार्य, सबसे सस्ते ढग से 500 स 1000 एकड के साइज़ के फार्म मे किया जाता है। वास्तव मे इग्लैण्ड मे औसत साइज़ के फार्म 100 एकड से कम के हैं। समस्त फार्मों के ⅓ फार्म ऐसे हैं, जिनमे आधी से अधिक भूमि कृषि-भूमि है। ये फार्म लगभग 150 एकड क्षेत्रफल के साइज़ के हैं। इन फार्मों की असगति का कारण वे तकनीकी और वित्तीय साधन है, जो वर्तमान फार्म के विस्तार को सीमित करते हैं। उपर्युक्त असगति का एक और अन्य कारण, वे सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, जो कई देशो मे छोटे साइज़ के फार्मों का निर्माण करती हैं।

वर्तमान फार्मों के विस्तार को रोकने वाले निम्नलिखित तीन प्रमुख तकनीकी अवरोध है :—

(1) फाम की इमारतो को वतमान फाम के साइज के अनुसार होना चाहिए। प्रति इकाई उत्पादन म मितव्ययता करने के लिए छोटी इमारतो के स्थान पर वडी इमारतो का निमाण करना आवश्यक होता है। परन्तु नय शेड बनाने की अपेक्षा पुराने शेड को बडा करना सस्ता होता है। यद्यपि अविकसित देशो म किसानो को भवन विहीन भूमि अधिक मात्रा मे मिल जाती है परन्तु वहा वड पमान की फार्मिग का लाभ नही मिलता है। पुराने देशो मे कृषका को फाम का विस्तार करने के लिए इमारत फसिग और सडका वाली भूमि का उपयोग स्वत त्र इकाइया के रूप म करना पडता है। ऐसी दशा मे एक केन्द्र से दो फार्मो के बीच विस्तार करने की लागत अधिक हो जाती है क्योकि कृषको को फाम की इमारतो को बनाने और सडको मे परिवतन करने मे अधिक खच करना पडता है कृषक दोनो फार्मो की पुरानी इमारतो का एक साथ उपयोग करने से उपयक्त अतिरिक्त खच से तो बच जाता है परन्तु प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयाँ बढ जाती हैं।

फार्मो के विस्तार का उपयक्त अवरोध एक पूण रूप स बसे हुए क्षेत्र म दूसरे अवरोधो म सम्मिलित रहता है। तकनीकी परिस्थितियो के बदलन स विद्यमान फाम की तुलना मे आर्थिक फाम का साइज बढ जाना है परन्तु साइज की यह वद्धि दुगुनी मात्रा म नही होती है। कृषक अपनी जमीन मे मनोवाछित वद्धि करने म सरलता से समथ नही होता है। साधारणत फाम अविभाजित इकाइयो के रूप मे होत है। उनका विभाजन करन के लिए उनके अभिन्यास (Lay-out) म पूण रूप स परिवतन करना आवश्यक होता है। जब कुछ कृषक एक विद्यमान फाम का आपस म बाँटत हैं तब अतिरिक्त फाम म प्राप्त भूमि कम मात्रा मे हान क कारण फाम म विस्तार नही हो पाता है।

फाम क विस्तार म तीसरा अवरोध कृषक को अपन फाम के समीप की जमीन के न मिलने म उत्पन्न होता है। यह अवरोध प्राय पाया जाता है क्योकि वतमान स्वामियो क त्यागने क बाद ही फाम प्राप्त हो पाते हैं और ऐसा प्राय नही हो पाता है इग्लण्ड म सन 1940 की दशाब्दी के प्रारम्भ म भूमि के अन्तिम हस्तान्तरण का औसत समय लगभग 22 वष था। कृषक को अपना व्यवसाय बढाने के लिए यह देखना पडता है कि वह कौन-सी जमीन प्राप्त कर सकता है। यदि उसे अपने फाम क पास की जमीन उपलब्ध नही

होती है, तो वह बड़े पैमाने के परिचालन से मिलने वाले लाभ प्राप्त करता है। ये लाभ बड़ी सख्या मे अशो के क्रय-विक्रय से और कृषि की मशीनो को उनकी पूर्ण क्षमता मे चलाने मे उत्पन्न होते हैं। ऐसे कृषक को अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए मशीनो को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र ले जाने का अतिरिक्त व्यय करना पडता है। फार्म के पास की जमीन न मिलने से, उसे उपर्युक्त लाभ के सिवाय अन्य लाभ प्राप्त नही हो पाते हैं।

एक पूर्ण रूप से व्यवस्थित देश मे सबसे अधिक आर्थिक फार्म के साइज़ मे वृद्धि को न्यायसगत नही कहा जाता है क्योंकि साइज की इस वृद्धि से वहा की फार्मिंग के मान मे धीमी गति से विस्तार होता है। फार्मिंग का मशीनीकरण सम्भवत: फार्म के साइज़ मे वृद्धि कर देता है और उसे सबसे सस्ते ढग से चलाया जा सकता है, परन्तु इससे फार्म को वास्तविक साइज नही मिल पाता है।

6. कृषि सम्बन्धी साख (Agricultural Credit)

फार्मिंग के व्यवसाय का साइज़ कभी-कभी पूँजी प्राप्त करने की कठिनाइयो द्वारा सीमित हो जाता है। कृषको को भी अन्य उद्यमियो की भाँति, बनी हुई वस्तुओ के भुगतान पाने के पूर्व ही अर्थात् कृषि वस्तुओ को उत्पन्न करने के लिए खर्च करना पडता है। सरल शब्दो मे, फार्मिंग के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। इग्लैण्ड मे, उद्योग की अपेक्षा कृषि मे प्रति कार्यकर्त्ता पूँजी की आवश्यकता अधिक होती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि सन् 1928-30 मे कृषि मे प्रति कार्यकर्त्ता उपयोग की गयी औसत पूँजी 1370 पौण्ड थी। इस पूँजी का तीन-चौथाई भाग भूमि, इमारतो और दीर्घकालीन विनियोजनो के रूप मे था। उद्योग मे यह राशि केवल 430 पौण्ड थी।

उत्पादन के पूर्व किये जाने वाले खर्च को निम्नलिखित दो श्रेणियो म बाँटा जा सकता है —

(1) दीर्घकालीन पूँजी—यह पूँजी लम्बे समय के उत्पादन की क्रिया मे सहायता देने वाले उत्पादन के साधनो को प्राप्त करने मे व्यय की जाती है।

(2) अल्पकालीन पूँजी—यह पूँजी वस्तुओ के एक खेप (Batch) के उत्पादन मे सहायक होती है।

कुछ आर्थिक उद्देश्यो के लिए दीर्घकालीन पूँजी को पुन: दीर्घकालीन और मध्यस्थ पूँजी मे विभाजित करना आवश्यक होता है। दीर्घकालीन

पूंजी का उपयोग भूमि के साथ-साथ अन्य विस्तार के लिए भी होता है। साधारणतः इस पूंजी का उपयोग अन्य कार्यों में अधिक होता है। इग्लैण्ड मे मध्यस्थ पूंजी भू-स्वामी और किसान की पूंजी[1] के रूप मे पायी जाती है।

एक व्यक्तिगत कृषक या भू-स्वामी की दृष्टि से उत्पादन का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन भूमि है। उत्पादन के पूर्व भूमि की कीमत देना आवश्यक होता है, क्योंकि फार्म भूमि पर ही स्थित होता है। यह सच है कि जब भूमि को सम्पूर्ण समाज के लिए, 'मृदा की मौलिक और अविनाशी शक्तियो' (Orignal & indestructible powers of soil) के रूप मे परिभाषित किया जाता है, तो उसका आधार पूंजी के समान नही होता है क्योकि इसके उत्पादन के लिए पूंजीगत माल के समान किसी भी उत्पादक शक्ति को, अन्य उपयोगो से, इस ओर लगाने की आवश्यकता नही पडती है। भू-स्वामी एक बार भूमि का स्वामित्व प्राप्त करने के पश्चात् उस भूमि की एक कीमत रखता है। इसके पश्चात् इस भूमि का आधार अन्य पूंजीगत माल जैसा हो जाता है।

भूमि को एक दीर्घकालीन पूंजीगत माल माना जाता है। भूमि पर कई कार्य किये जाते हैं, जैसे वृक्षो की कटाई, नाली बनाना, बाडी बाँधना आदि। भूमि मे खेती करने के लिए उपर्युक्त कार्यों को करना पडता है। कृषि-फार्म की इमारतें और मशीनें भी इसी प्रकार के कार्य करती हैं, उदाहरणार्थ (1) अनाज का उत्पादन, (2) पशुओ का प्रजनन, (3) दूध दुहने का कार्य, इत्यादि।

अल्पकालीन पूंजी के अधिकाश भाग का उपयोग श्रमिको को मजदूरी देने, कम आयु के पशु, उर्वरक और बीजो को खरीदने तथा बना हुई वस्तुओ का स्टाक उस समय तक करने के लिए किया जाता है, जब तक कि ये बनी हुई वस्तुएँ बिक न जायें। दीर्घकालीन और अल्पकालीन पूंजी के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नही है। कुछ सख्या मे श्रमिक और कुछ मात्रा की खाद का प्रयोग उपज के उपभोग के लिए किया जाता है, इसलिए इन्हें अल्पकालीन पूंजीगत वस्तुओ की श्रेणी मे रखा जाता है। कुछ वस्तुएँ भविष्य मे उत्पन्न होने वाली उपजो के लिए आवश्यक होती हैं। ऐसी वस्तुओ को दीर्घकालीन पूंजीगत माल की श्रेणी मे रखा जाता है। उदाहरणार्थ—(1) दूध देने वाली

---

1 पृ० स० 66 देखिए।

गायें, (2) बच्चे पैदा करने वाली शूकरी आदि । ये वस्तुएँ अन्त में विक्रय के लिए काट डाली जाती है । इस स्थिति में इन्हें दोनों के समान अल्पकालीन पूंजीगत माल की श्रेणी में रख लिया जाता है ।

उत्पादों की पूर्ति के पूर्व एक प्रकार का अन्य खर्च भी किया जाता है । इस खर्च का अभी तक उल्लेख नहीं किया गया है । यह खर्च कृषक और उसके परिवार के निर्वाह खर्च (Costs of living) के रूप में किया जाता है । साधारणतः फार्म की स्थापना और प्रथम उपज के उत्पन्न होने में सम्पूर्ण क्रियाओं के लिए इस खर्च का उपयोग होता है । यह खर्च सरलता के साथ दो श्रेणियों में विभाजित नहीं किया जा सकता है । वैसे हमारे अध्ययन के उद्देश्य के लिए दो श्रेणियों के बीच का कोई स्पष्ट अन्तर विशेष उपयोगी नहीं होता है ।

व्यय और आय के बीच के अन्तर की नियाओं को पूरा करने के लिए कृषक के पास स्वयं की पूंजी का होना आवश्यक होता है । कृषक, स्वयं के साधनों के अभाव में ऐसे लोगों से उधार लेता है, जिनके पास ये साधन होते हैं । कृषक अपने सीमित साधनों पर निर्भर नहीं रह पाता है अन्यथा फार्मिंग से सम्बन्धित पैमाना नियन्त्रित हो जाता है । ऐसी स्थिति में कृषक को यह विचार करना आवश्यक होता है कि अपने फार्म को सर्वाधिक मितव्ययी रूप में संचालित करने के लिए, अन्य लोगों से कितनी सीमा तक उधार लेना चाहिए । इस समस्या को "कृषि सम्बन्धी साख की समस्या" कहते हैं ।

कृषक के द्वारा उपयोग की जाने वाली पूंजी की मात्रा स्थिर नहीं रहती है क्योंकि वह आय और व्यय के बीच कम या अधिक अन्तर उत्पन्न करने वाली रीतियों का अनुसरण करने के लिए स्वतन्त्र होता है । जब कृषक उत्पादन में अधिक मशीनों का उपयोग करता है या भूमि को अधिक मात्रा में खेती के लिए उन्नत करता है, तो उस अधिक मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है । चूंकि उद्योग और कृषि में उपयोग आने वाली कुल पूंजी की मात्रा राष्ट्रीय आय के साइज, शीघ्र उपभोग की जाने वाली प्रतिस्पर्धात्मक मांगों और सामुदायिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि द्वारा सीमित होती हैं, इसलिए कृषि को उपलब्ध पूर्ति के लिए उद्योग से प्रतिस्पर्धा करना आवश्यक होता है ।

कृषि और उद्योग में पूंजी की पूर्ति अच्छी तरह से व्यवस्थित और संगठित

रहने पर, इन व्यवसायों के लिए उधार ली गयी पूँजी पर ब्याज की दरें इनकी जोखिमों की मात्रा के अनुसार परिवर्तित होती हैं। कृषि म उद्योग की अपेक्षा जोखिम के अवसर अधिक रहते हैं, क्योंकि यहाँ उधार ली गयी पूँजी की अदायगी शीघ्रता मे नहीं हो पाती है। कृषि के लिए उधार देने वाले लोग अतिरिक्त जोखिम को इस मात्रा को ब्याज म स्वाभाविक रूप से सम्मिलित कर लेते हैं। इससे कृषि मे उधार दी जाने वाली पूंजी पर ब्याज की दर अधिक होती है। कृषि-साख मे ब्याज सम्बन्धी हानि की सम्भावना सदैव विद्यमान रहती है। फार्मिंग मे इकाइयाँ उद्योग की अपेक्षा छोटी होती हैं इसलिए कृषि म उधार देना अधिक जोखिम का काम माना जाता है। वैसे इस जोखिम की सही मात्रा नापना बडा कठिन है। फिर भी जैसा कि आगे के अध्यायो मे देखा जायेगा कि उद्योग की तुलना मे कृषि हमेशा एक चिरकालीन अवसाद (Chronic depression) के अन्तर्गत ही पायी जाती है, क्योंकि कृषि उत्पादो की कीमतो और उनसे प्राप्त होने वाले लाभो म बहुत परिवर्तन होता रहा है।

यह कथन कुछ अशो मे तो सही है कि किसान कम ब्याज की दर पर अधिक पूंजी प्राप्त करना चाहता है और यदि पूंजी प्राप्त न हो तो फार्मो का साइज सीमित हो जाता है। परन्तु यह कथन पूर्णरूपण सही नहीं है क्योंकि पूंजी ही नही, बल्कि कृषि के समस्त साधनो की कमी एक बुनियादी सत्य है। इस तथ्य की अवहेलना नहीं की जा सकती है। कृषक को अपनी इच्छानुसार पूंजी प्राप्त न होने से 'पूँजी की कमी' नामक वाक्यांश का महत्त्व उस समय बढ जाता है, जब वह उद्योग को प्राप्त होने वाली पूंजी के लिए दिये जाने वाले ब्याज की दर से कुछ भिन्न दर देने को तैयार रहता है। वैस आर्थिक विचारको के बीच इस तथ्य की सत्यता पर व्यापक मतभेद है।

कृषि म अल्पकालीन और दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने के तरीके उद्योग के तरीको से भिन्न होते हैं। एक विकसित देश म दीर्घकालीन पूंजी उधार लेने के लिए, बडे पैमाने का उपक्रम (Undertaking) अपने आप म एक सीमित-दायित्व-युक्त कम्पनी बन जाता है। ये कम्पनियाँ उन इजरा कोठियो (Issue houses) की पूर्ण विकसित प्रणाली की सहायता स उधार लेती है, जो सामान्य जनता मे व्यवसाय के रूप म हिस्से (Shares) बेचती हैं। इसके विपरीत एक प्राथमिक कृषि-प्रधान देश से कृषको को विदेशो से उधार लेना पडता है क्योंकि इन देशो म कृषको की बचत का प्रतिशोत करने वाली

सस्थाओ का अभाव रहता है। उपर्युक्त रीतियाँ छोटे उपक्रमो के लिए उपयोगी नही रहती हैं, इसलिए अधिकाश कृषको के लिए भी अनावश्यक होती हैं। इसके निम्नलिखित दो प्रमुख कारण हैं —

(1) हिस्सो के निर्गम की विधि बहुत मँहगी पडती है, क्योंकि कृषक के पास आवश्यक पूँजी की मात्रा छोटी होती है।

(2) जनता के लिए छोटे कारोबार के भविष्य के बारे मे विचार करना सम्भव नही होता है।

पेशेवर विनियोजक या वित्तीय सलाहकार इन छोटी बातो पर विचार नही करते हैं। इसलिए कृषि को भी अन्य छोटे उपक्रमो की भाँति, दीघकालीन पूँजी के लिए अन्यत्र शरण लेनी पडती है।

कृषक के विश्वसनीय साधन, बहुत बडी सीमा तक क्रियाशील भूमि सम्बन्धी पट्टेदारी (Tenure) की प्रणाली पर निर्भर होते हैं। बहुत सारे कृषक जिस जमीन पर खेती करते हैं, उस जमीन के वे स्वय ही मालिक होते हैं। उदाहरणार्थ—ग्रेट ब्रिटेन मे भू स्वामी—दखलदार समस्त भूमि के $\frac{1}{3}$ भाग मे खेती करते हैं। और भी कई देशो मे इस प्रकार की भूमि का अनुपात अधिक है। उदाहरणार्थ, न्यूजीलैण्ड मे 50% और डेनमार्क मे 95% भूमि। ऐसे कृषको को *जमीन खरीदने, आवश्यक सुधार करने तथा जरूरी* इमारतो के निर्माण के लिए पूँजी का प्रबन्ध स्वत करना पडता है। कभी-कभी कृषक अन्य लोगो से उधार भी लेते हैं। उधार राशि के भुगतान के लिए कृषि की भूमि और इमारतो को जमानत के रूप मे रखा जाता है। इससे विकसित पूँजीवादी देश मे भूमि को गिरवी रखकर, उसके मूल्य के ऊँचे अनुपात मे पैसा उधार लेने मे कोई कठिनाई नही होती है। साधारणत निजी-निवेशक या निवेश कम्पनियाँ कृषको को आसानी से उधार दे देती है। परन्तु कृषक को आवश्यक मात्रा मे पूँजी प्राप्त करने के लिए खुद ही तलाश करनी पडती है। कृषक की भूमि और इमारतो की स्थिति और फार्मिंग करने की शैली, फार्मिंग की सामान्य प्रगति पर निर्भर रहने से साख सम्बन्धी उपर्युक्त दशा अपरिवर्तित रहती है। जब कृषको को उधार देने वाले ऋणदाता भूमि और इमारतो को अपने पास गिरवी रखकर भी ऋण देना बन्द कर देते हैं, तब ऋण देने वाले अन्य आसामी (Tenant) ढूँढने मे बडी कठिनाई होती है। भावी कृषक के पास कुछ पूँजी होनी आवश्यक है। कृषि और उद्योग की साख

की रीतियो मे एक मूलभूत अन्तर यह है कि कृषि मे ब्याज की दर प्राय स्थित रहती है, क्योकि कृषक उद्योग के प्रबन्धक की भाँति अपने जोखिम को अधिक मात्रा मे अन्य लोगो पर आरोपित नही कर सकता है। उद्योग मे लाभ का एक महत्त्वपूर्ण भाग हिस्सो (Shares) के व्यवसाय द्वारा नियन्त्रित होता है। परन्तु कृषि मे ऐसी कोई व्यवस्था नही पायी जाती हैं। बल्कि कृषको की वित्तीय कठिनाइयाँ कृषि उपजो की गिरती हुई कीमतो के कारण बढ जाती है। उन्हे ऋण ली गयी राशि पर निश्चित दर के अनुसार ही ब्याज का भुगतान करना अनिवाय रहता है।

जब कृषक भूमि के मालिक न होकर, उसे लगान पर लेने वाले होते है तब भूमि खरीदने के लिए दीर्घकालीन ऋण प्राप्त करना, कृषक की समस्या न होकर भू स्वामी की समस्या हो जाती है। भू स्वामी को सुव्यवस्थित कृषि के लिए, खेतो मे नालियाँ बनवाने, बाडी लगवाने तथा इमारतो का निर्माण कराने के लिए दीर्घकालीन पूंजी की व्यवस्था करना जरूरी होता है। ये निवेश 'भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियो' से कभी भी अलग न होने के रूप मे सयुक्त हो जाते हैं। भू स्वामी इन कार्यों के लिए अपनी स्वय की पूंजी का प्रयोग कर सकता है। परन्तु यह पूंजी पर्याप्त न होने पर, भू-स्वामी अपनी भूमि के एक बडे हिस्से को गिरवी रखकर पूंजी उधार लेता है। भू-स्वामी-दखलदार भी पूंजी का इसी प्रकार प्रबन्ध करता है। फार्मिग करने वाला व्यक्ति भूमि का मालिक होने पर यह अनुभव करता है कि फार्म के विस्तार मे दीर्घकालीन पूंजी की अल्प मात्रा एक अवरोध होती है। काश्तकार कृषक (Tenant farmer) के लिए उपर्युक्त स्थिति सही नहीं है। वह अपने भू-स्वामी से इस पूंजी को उधार ले लेता है और इस राशि का भुगतान बढ़े हुए लगान के द्वारा कर देता है। भू-स्वामी उसे बाजार की अपेक्षा ब्याज की कम दर पर पूंजी उधार दे देता है। भू स्वामी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा या स्वामित्व से प्राप्त होने वाले सन्तोष के कारण भूमि का क्रय करते हैं या भूमि को अपने पास रखते हैं। ये सम्पन्न किसान वित्तीय लाभ की परवाह न करते हुए भूमि मे कई आवश्यक सुधार करते हैं। कुछ सन्देह के साथ यह कहा जा सकता है कि सन् 1914 के पूर्व इग्लैण्ड मे ऐसी स्थिति थी, यद्यपि इसके सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य की उपलब्ध नही है।

दीर्घकालीन साख के अन्तगत आवश्यक पूंजी उपर्युक्त साधनो से प्राप्त

नही की जा सकती है। स्वामी-अधिकारी (Owner-occupier) कृषि की मशीनो और पशुओ को खरीदने के लिए गिरवी के आधार पर उधार नही लेता है। वह इन खर्चों को, उद्योग के समान पूँजीगत वस्तुओ को खरीदने के लिए करता है। इसलिए ये कृषक अल्पकालीन पूंजी का प्रबन्ध करने वाले साधनो पर निर्भर रहते हैं। जब कोई कृषक भूमि को लगान पर लेता है तो भू-स्वामी उसे अल्पकालीन और दीर्घकालीन पूंजी उधार देकर अधिक जोखिम उठाता है। भू-स्वामी अन्य ऋणदाताओ म इस जोखिम का विस्तार नही करता है। वह अपने आसामियो को ही ऋण देता है और उनकी कार्यविधि पर नियन्त्रण करने की इच्छा रखता है। साथ ही वह इन आसामियो के वित्तीय प्रतिफल मे भी हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। उपर्युक्त कारणो स भू-स्वामी बहुत ही कम अवसरो पर मध्य या अल्पकालीन ऋण देते है। पट्टेदारी की प्रथा इस स्थिति को उत्पन्न करती है। यूरोप के कुछ भागो मे बटाई (Metayage) प्रणाली और सयुक्त राज्य-अमेरिका के दक्षिणी प्रदेशो मे फसलो मे हिस्सा बँटाने की प्रथा प्रचलित है। भू-स्वामी अल्पकालीन साख के लिए स्वय ही जिम्मेदार होता है। जब भू-स्वामी के पास दीर्घकालीन साख के लिए पर्याप्त साधन नही होते हैं, तो वह स्वामी-दखलदार की भाँति ऋण लेता है।

कृषक के हाथ मे पट्टेदारी प्रथा क अन्तर्गत कृषि उपक्रमो पर अधिक-से-अधिक नियन्त्रण रहता है। इग्लैण्ड म ऐसा ही होता है। कृषक स्वय मध्य और अल्पकालीन पूँजी के लिए जिम्मेदार होता है। भू स्वामी तथा आसामी के बीच जिम्मेदारी के विभाजन से कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। भू-स्वामी अपनी पूँजी की सुरक्षा चाहता है। भूमि की कुछ शक्तियां 'मौलिक' होती हैं, परन्तु वे बहुत अधिक मात्रा मे 'अविनाशी' नही होती हैं। जैसे अपरदन के कारण उर्वरा-शक्ति की गम्भीर हानि से विश्व के अनेक भागो मे ऐसी स्थिति हो गयी है। दीर्घकालीन निवेशो मे भी गलत ढग की फार्मिंग से नुकसान पहुँचता है। कृषक को अपना घर बचाने तथा व्यवसाय का मूल्य बनाये रखने के लिए पट्टेदारी की सुरक्षा आवश्यक होती है। इग्लैण्ड मे प्रत्येक हिस्सेदार के अधिकार और कर्तव्यो को नियमित करने के लिए कई कानून पारित किये गये हैं। काश्तकारो के अधिकारो पर १९ वी सदी से अन्तिम चतुर्थांश के प्रारम्भिक कृषि जोत कानूनो (Agricultural-holdings Act) लेकर सन् 1947 के कृषि कानून (Agricultural Act) तक के कानूनो मे, बहुत अधिक

बल दिया गया है। इन क्रमिक परिवर्तनो के बारे म यहाँ विचार नही किया जायेगा।

एक अकेले उद्योगपति की अपेक्षा एक अकेले कृषक को अल्पकालीन पूँजी प्राप्त करने मे, दीर्घकालीन पूँजी से अधिक कठिनाइयाँ होती हैं। उद्योगपति साधारणत बैंको पर विश्वास रखते है। कृषको के लिए भी बैंक उपलब्ध रहते हैं। परन्तु वे उद्योगपतियो को बडी सरलता से ऋण दे देते हैं। कृषको की छोटे पैमाने की कारवाइयो से बैंक-अधिकारी सन्तुष्ट नही हो पाते हैं और बडी कठिनाई से उनको ऋण प्राप्त करने की योग्यता का निश्चय करते हैं। यह कठिनाई उस समय बढ जाती है जब कृषकगण बैंक मे आवश्यक खाता तक नही रखते हैं और भविष्य मे प्रस्तुत करने मे भी समर्थ नही होते हैं। बैंकरो के दृष्टिकोण से कृषको को उधार देने मे निम्नलिखित हानियाँ होती हैं:—

(1) कृषि म फसलो के लिए कम-से-कम एक वर्ष और पशुओ की वध-योग्य वृद्धि होने के लिए इसम भी अधिक समय की अल्पकालीन पूँजी की आवश्यकता पडती है, परन्तु इग्लैण्ड मे बैंक कुछ महीनो के लिए ही उधार देना पसन्द करते हैं।

(2) कृषि उत्पाद विपरीत मौसमो के कारण अकस्मात् नष्ट हो जाते हैं और औद्योगिक उत्पादो की तुलना मे कम स्तरीय उत्तरदायी होते हैं।

(3) तैयार फसल और पशुधन पर स्वामित्व के आधार पर ऋण के लिए जमानत देने मे कई बार कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

सहकारी सघ के माध्यम से कुछ कृषक मिल-जुल कर सयुक्त रूप से किसी बैंक के प्रति साख के लिए वचन-बद्ध हो जाते हैं। ऐसी अवस्था मे उपर्युक्त कठिनाइयाँ अधिकाश मात्रा में दूर हो जाती हैं। किसी ऋण को न्यायसगत घोषित करने का कार्य बैंक के प्रबन्धको से सहकारी सघ के प्रबन्ध करने वाले कृषको पर स्थानान्तरित हो जायेगा। चूँकि य प्रबन्धक, भावी कृषको क पडोसी होते हैं और उनके व्यवसाया से पूर्ण रूप से परिचित रहते हैं इसलिए सहकारी सघ अपने सदस्या और जनसमुदाय के अन्य लोगो से ऋण ल सकता है। यहाँ प्रत्येक प्रकार की हानि की जोखिम एक व्यक्तिगत ऋण के रूप मे उठायी जा सकती है। ये लोग बैंको की पर्याप्त साख-सुविधाओ के अभाव मे या दीर्घकालीन ऋणो के प्रति उदासीनता के समय, साख के स्रोत के रूप में कार्य कर सकते हैं। अनेक देशो में इस प्रकार के सहकारी सघो या सार्वजनिक

बैंको ने किसानो की मध्यकालिक तथा अल्पकालिक उधार की समस्या को मुख्य रूप से सुलभा दिया है। परन्तु इग्लैण्ड और अधिकाश आग्ल-सेक्सन देशो मे कृपको ने अपने पडोसियो द्वारा अपने कार्य-कलापो की जाँच किये जाने पर अनिच्छा व्यक्त की है। इसलिए इन देशो मे सहकारी-साख-सगठन असफल हो गये हैं।

इग्लैण्ड मे कृपक उन व्यापारियो से अल्पकालीन साख प्राप्त करते है; जिन्हे वे अपनी उपजे बेचते हैं और आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदते हैं। कृषक को इस पद्धति के कई लाभ प्राप्त होते हैं। उसे बीज, उर्वरक और अन्य खाद्यसामग्री के भुगतान मे होने वाली देरी मे सहायता मिलती है। कृपक को अपनी उपज के बिक जाने तक के समय की प्रतीक्षा करनी पडती है। इन व्यापारियो से कृपक अपनी आवश्यकतानुसार समय के लिए साख प्राप्त करता है। ये व्यापारी कृपक की ऋण लेने की योग्यता को बडी सरलता स जाँच लेत हैं। परन्तु इस पद्धति मे कई दोष भी पाय जाते हैं। उदाहरणार्थ.—

(1) अक्सर व्यवसायी लोग ब्याज की स्पष्ट दर नही लगात है। वे खरीद की जाने वालो वस्तुओ मे ही ऋणों की लागतें जोड लेते है।

(2) इसलिए कृपकों को यह पता नही चल पाता है कि व ऋण लेने की क्या कीमत चुका रहे हैं।

(3) वस्तुओ को नगद और उधार खरीदने वाले दोना प्रकार क्रेताओ स एक कीमत ली जाती है।

(4) कृपक के ऋणी होन की वजह से उसकी स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है, क्योंकि कृपक अपनी इच्छानुसार वस्तुओ का क्रय-विक्रय नही कर पाता है।

कृपको को पूँजी के अभाव मे व्यवसायियो की मॅहगी पूँजी पर निभर होना पडता है, अथवा अधिकाश कृपकों को कुछ मात्रा म अल्पकालीन और मध्यम्य पूँजी का प्रबन्ध स्वय करना पडता है। इसी तरह भू स्वामी कृपका को भी दीर्घकालीन पूँजी के एक बडे हिस्से की पूर्ति स्वय करनी पडती है। कृपक अपनी स्वय की पूंजी के अभाव मे व्यवसाय बढाने म समर्थ नहीं होता है। पूँजी की कमी के कारण फार्मों के आकार मे होन वाली वृद्धि रुक जाती है। ऐसा देखा गया है कि अधिकाश कृपको के पास अतिरिक्त पूँजी नही है। इसलिए छोटे पैमाने पर फार्म का सगठन करना, तकनीकी कारणो

से भी लाभप्रद होता है। ये फार्म साख सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण तकनीकी आवश्यकता की तुलना मे अधिक छोटे हो जाते हैं।

7 सामाजिक और कानूनी विचार

वास्तव मे फार्मों का साइज उन आर्थिक विचारो से ही पूर्ण रूप से अथवा प्राय प्रमुख रूप से भी निर्धारित नही होता है जिनका कि वर्णन किया गया है। फार्मों का साइज अधिकतर सामाजिक और कानूनी तथ्यो के द्वारा, जिनमे खासतौर पर कानून और उत्तराधिकार से सम्बन्धित रीति रिवाज, भूमि के पोषण और स्वामित्व के प्रति दृष्टिकोण सम्मिलित हैं प्रभावित होता है।

कुछ देशो मे पिता अपनी मृत्यु के समय अपनी सम्पत्ति, जिसमे भूमिगत् सम्पत्ति सम्मिलित रहती है को अपने बच्चो के बीच बँटवारा करने के लिए, कानून द्वारा बाध्य होता है। उदाहरणार्थ फ्रास मे अन्य देशो मे बिना स्वत ऐसा करना है। जिन स्थानो पर ज्येष्ठाधिकार (Primogeniture) एक नियम है, उन्हे छोड कर अन्य स्थानो मे भू स्वामी या दखलदार की मृत्यु होने पर फार्मों के साइज कम होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इस प्रथा मे सभी उत्तराधिकारियों को आपस की सब जोतो (Holdings) को मिलाकर एक इकाई मे रखने की स्वतन्त्रता रहती है। जब ऐसा सम्भव नही होता है तो वे भूमि की देखरेख करने वाले व्यक्ति को अपना हिस्सा बेच सकते हैं। परन्तु उपर्युक्त दोनो रीतियो मे बहुत सी कठिनाइयाँ होती हैं। जैसे —

(1) संयुक्त प्रबन्ध सन्तोषप्रद नही पाया जाता है।

(2) एक उत्तराधिकारी को अन्य लोगो के हिस्से खरीदने के लिए पूंजी एकत्रित करने मे कठिनाई होती है।

(3) बड़े लड़के को भूमि के सुपुर्द कर देने से दूसरे की शेष सम्पत्ति का उसके अन्य बच्चो के बीच विभाजन होता है। इसमे फार्म मे पूंजी की कमी हो जाती है।

(4) कभी-कभी पूंजी प्राप्त करने के लिए कुछ भूमि को बेचना आवश्यक हो जाता है अन्यथा शेष भूमि पर खेती करना कठिन हो जाता है।

(5) मृत्यु-कर (Death duties) के कारण पूंजी कम हो जाती है।

एक भू-स्वामी की मृत्यु होने पर, उसकी सम्पत्ति के विभाजन या मृत्यु-कर की राशि के भुगतान से पूंजी मे कमी हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप फार्म के साइज को छोटे करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। इंग्लैण्ड मे यह

वात अत्यधिक सामान्य है। भू-स्वामी की मृत्यु के पश्चात् कृपक को जमीन खरीदने और फार्मों का त्याग करने की समस्या का सामना करना पडता है। उसके पास जमीन खरीदने या फार्म के पशुओं का पोषण करने के लिए पर्याप्त पूंजी की कमी होने के बावजूद उसे पहले विकल्प का चुनाव करना पडता है।

फार्मों के साइज़ को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक विचार यह भी है कि बहुत से लोग आय बढाने के लिए भूमि खरीदने की इच्छा न करके, अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा या सुरक्षा की भावना या स्वामित्व सम्बन्धी घमण्ड (जो उन्हे बडे क्षेत्रफल की भूमि के स्वामित्व से मिलता है) के लिए करते हैं। हमने यह पहिले ही देख लिया है कि यह दृष्टिकोण सस्ती दीर्घकालीन पूंजी किस प्रकार उपलब्ध कराता है। आर्थिक साइज़ के फार्म के लिए आवश्यक पूंजी एकत्रित न कर सकने के कारण कृपक मे फार्म का साइज़ छोटा करने की प्रवृत्ति होती है। वह अपने छोटे फार्म को अपेक्षा एक वडे फार्म को लगान मे लेने की इच्छा नही करता है। कृपक अपने छोटे से फार्म की कम मात्रा की आय से सन्तोप कर लेता है। इस प्रकार की क्रिया को इसलिए अनार्थिक नही कहा जा सकता है। क्योंकि अधिक मुद्रा आय (Monetary income) प्राप्त करने की अपेक्षा कृपक स्वेच्छा से छोटे फार्म का भू-स्वामी बनना पसन्द करता है।

धनवान कृपक भूमि की कीमत को अधिक करके वडे फार्मो के निर्माण को रोकते है। सम्भवत कृपि-प्रधान देशो मे छोटे फार्मो के पाये जाने का सबसे महत्वपूर्ण कारण यही है। एक कृपक, काश्तकार या फार्म का श्रमिक होकर कम आय प्राप्त करने के पश्चात् भी ज्यादा सुख प्राप्त करता है। वह छोटे से फाम के स्वामित्व के कारण एक निश्चित गौरव और अधिक सुरक्षा का अनुभव करके सुखी जीवन व्यतीत करता है।

●●

अध्याय 5

विपणन

(MARKETING)

1 स्वावलम्बी फार्म (The Self-Sufficing farm)

अभी तक फार्म पर कृषि-वस्तुओ के उत्पादन के विषय मे विचार किया गया है। इस उत्पादन का कुछ भाग उत्पादको के उपयोग मे आता है। पिछडे और विरली जनसख्या वाले देशो म कृपक अपने उपभोग से अधिक मात्रा म उत्पादन करते हैं। इससे कृषि-मजदूरी के भुगतान मे सहायता मिलती है। इग्लैण्ड और सयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशो मे भी फार्म की पैदावार का एक विशेष अनुपात उत्पादको द्वारा उपभोग किया जाता है। यद्यपि उपभोग की जाने वाली यह मात्रा कुल पैदावार का छोटा-सा भाग होती है।

युद्ध के पूर्व किये गये एक सर्वेक्षण मे यह ज्ञात हुआ कि इग्लैण्ड के पूर्वी प्रदेशो मे कृपको के द्वारा उत्पन्न किये गये खाद्य पदार्थों और उनके परिवारो द्वारा उपभोग किये गय खाद्य-पदार्थों की मात्रा मे बहुत कम अन्तर था। यह मात्रा 20 एकड से 50 एकड तक के छोटे फार्मो की कुल पैदावार का केवल 6% थी। यह अन्तर 500 एकड से बडे फार्मो की कुल पैदावार का केवल 1% था। फार्म के कार्यकर्ताओ को वस्तुओ के रूप मे दी गयी कुल मजदूरी की मात्रा का अनुपात भी बहुत कम पाया गया। यह अनुपात कुल पैदावार का केवल 7% था। इग्लैण्ड के फार्मो की अपेक्षा सयुक्त राज्य अमेरिका के फार्मो मे उत्पन्न किये गये और उपभोग किये गये खाद्य पदार्थ का मूल्य अधिक पाया गया। फिर भी यह अनुपात इग्लैण्ड मे फार्म की कुल प्राप्ति (Receipts) का केवल 9% था। फार्म के कार्यकर्ताओ को मजदूरी के

रूप मे भुगतान किये गये खाद्य-पदार्थों का मूल्य कुल नगद मजदूरी का $12\frac{1}{2}\%$ भाग पाया गया।

खाद्य-पदार्थों का कुछ भाग, शाक-भाजी और अण्डो का उत्पादन क्रमशः बगीचो तथा फार्मों मे होता है। इन वस्तुओ का उत्पादन नियतन की पद्धति (Allotments) के अन्तर्गत अन्य व्यवसायों मे लगे हुए व्यक्तियो द्वारा भी किया जाता है। उदाहरणार्थ, इग्लैण्ड और वेल्स मे युद्ध के पूर्व अण्डो के उत्पादन का लगभग $\frac{1}{4}$ भाग और आलू की पैदावार का लगभग $\frac{1}{6}$ भाग बगीचो, नियतनो (Allotments) और घर के पीछे बाडियों मे उत्पन्न किया गया था। इस उत्पादन का कुछ हिस्सा तो बेचा गया था, परन्तु शेष भाग का उपभोग उत्पादको द्वारा किया गया था। बाजार म विक्रय के लिए प्रवेश न करने वाली अन्य वस्तुओं की कुल पैदावार का अनुपात उपर्युक्त वस्तुओं की तुलना मे कम था।

कृषक और उसके परिवार के सदस्यो की माँगो को सन्तुष्ट करने के लिए फार्मो मे उत्पादो का उत्पादन का कार्य और अन्य सेवाएं की जाती है। साधारणत: छोटे पैमाने की अपेक्षा ये अन्य सेवाएँ बडे पैमाने के सगठन मे सस्ते ढग से की जा सकती है। कृषको के द्वारा अपने उत्पादन के बड़े हिस्से का स्वय उपभोग न करने का यह एक प्रमुख कारण भी है।

2. बाजार-माँग (Market Demand)

कई देशो मे फार्म पैदावार का बडा हिस्सा उनके उत्पादको द्वारा उपभोग नही किया जाता है। उपभोक्ताओ की माँग (Consumers' demand) को सन्तुष्ट करने के लिए इस पैदावार को औद्योगिक उत्पादो के समान बेचना आवश्यक होता है। ये उपभोक्ता अपनी पसन्द के अनुसार अन्य वस्तुओ को उत्पन्न करते हैं और उन्हे बेचकर मुद्रा आय कमाते है। वे अपनी मुद्रा आय से अधिक से-अधिक सन्तोष प्राप्त करने के लिए विभिन्न वस्तुओ और सेवाओ के बीच उनका वितरण करते हैं।

कृषि का सम्बन्ध जैसा कि हम देख चुके है[1], मुख्यरूप से खाद्य-पदार्थों के उत्पादन से है, क्योंकि कृषि उत्पादो मे सबसे अधिक माँग खाद्य-पदार्थ की होती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि खाद्य-पदार्थ की माँग, स्वय खाद्य-

1. अध्याय 2, उप-शीर्षक 1 देखिए।

पदार्थ उत्पन्न करने वाले देशों को छोड़कर शेष सभी देशों के प्रत्येक परिवार के द्वारा दिन में तीन-चार बार की जाती है अर्थात् खाद्य-पदार्थों की माँग नियमित रूप से वर्ष भर होती है। इस माँग में कई प्रकार के खाद्यान्न की माँग सम्मिलित रहती है। यह माँग शहरों में ही महत्तम और अत्यधिक केन्द्रित रहती है, किन्तु ग्रामीण इलाकों में भी इसका अस्तित्व पाया जाता है। इनकी पूर्ति कम मात्रा में पायी जाती है। साधारणत. खाद्यान्नों की माँग उस रूप में नहीं की जाती है, जिस रूप में कृषक उन्हें उत्पन्न करते हैं।

खाद्यान्नों का कुछ भाग मौसमी और कुछ अंशों में नाशवान् होने के कारण कृषकों के द्वारा उत्पन्न किया जाने वाला खाद्य-पदार्थों का उत्पादन-समस्त माँग को प्रत्यक्ष रूप से सन्तुष्ट नहीं कर पाता है। चूंकि खाद्य पदार्थों की पैदावार, सम्पूर्ण विश्व में ग्रामीण क्षेत्रों में (शहरों से दूर) बिखरे किसानों के द्वारा की जाती है, इसलिए कृषक इनकी मात्रा को नियन्त्रित नहीं कर पाते है। इन खाद्य-पदार्थों के गुण कृषकों की इच्छा के बावजूद परिवर्तित होते रहते हैं।

फार्म की पैदावार उपभोक्ताओं की आवश्यकता के अनुसार, एक विशेष समय, स्थान और रूप में पैदा नहीं की जाती है। वैसे समस्त उत्पादन का एकमेव लक्ष्य उपभोक्ताओं की माँग को सन्तुष्ट करना होता है। कृषि उत्पादन उस समय तक बेकार होता है, जब तक कि दोषपूर्ण समजन (Mal-adjustment) को दूर करने तथा माँग और पूर्ति को एक दूसरे से सम्बन्धित करने का काम नहीं किया जाता है। कुछ लोगों को यह अनुमान लगाना भी जरूरी होता है कि उपभोक्ताओं को कृषि उत्पादों की कब, कहाँ और कितनी आवश्यकता हैं तथा वे कृषि उत्पादों को विभिन्न कीमतों में कितनी मात्रा में क्रय करेंगे। कुछ लोगों को यह अनुमान भी लगाना चाहिए कि ये कृषि उत्पाद किस समय, कितनी मात्रा में उपलब्ध रहते है और ऐसे उपभोक्ताओं को, जो सर्वोत्तम कीमत चुकाने को तैयार हैं; ये उत्पाद वाछनीय समय पर कैसे पहुँचाये जा सकते है। यह मध्यस्थ लोगों का कार्य है। मध्यस्थ व्यापारी कृषकों के द्वारा की जाने वाली खाद्यान्न की पूर्ति को उपभोक्ताओं की माँग में सम्बन्धित करते है। ये उत्पादों को कई उत्पादकों से बड़ी मात्रा में संग्रह करके अनेक उपभोक्ताओं में फैला देते हैं। मध्यस्थ व्यापारी माँग और पूर्ति में समजन स्थापित करने के लिए आवश्यक कीमत को तय करते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से विपणन प्रक्रिया (Marketing process) को कोमन

निर्धारण की एक प्रणाली माना जाता है। इसी प्रकार बाजार वह स्थान कहा जाता है, जहाँ क्रेता और विक्रेता मोल-भाव के द्वारा चालू कीमता का निर्धारण करते हैं। यद्यपि ये क्रियाएँ विपणन क्रिया की क्रोड हैं, परन्तु किसी भी दृष्टि से सम्पूर्ण नहीं हैं, क्योंकि उत्पादक और उपभोक्ताओ को पास लान क पूर्व अन्य कई महत्त्वपूर्ण सेवाओ को करना आवश्यक होता है।

कृषि और औद्योगिक उत्पादो के लिए विपणन एक महत्त्वपूर्ण समस्या होती है। मध्यस्थ लोगो के द्वारा कृषि उत्पादो के लिए की जाने वाली कई क्रियाएँ औद्योगिक उत्पादो के लिए भी जरूरी होती हैं। यथार्थ मे, विपणन क्रिया[1] को पूर्ण रीति से लिखना, इस पुस्तक की विषय वस्तु के बाहर है परन्तु हम कृषि उत्पादो की विपणन क्रिया से सम्बन्धित समस्याओ के ज्ञान के बिना, कृषि का अर्थशास्त्र नही समझ सकते हैं। कृषि उत्पाद सम्बन्धी ये समस्याएँ, माँग और पूर्ति की स्थितियों की भिन्नता के कारण, औद्योगिक उत्पादो के विपणन की समस्याओ से भिन्न होती हैं। फार्म सगठन क छोटे होने के कारण उद्योग की अपेक्षा फार्म उत्पादो का व्यवसाय करने वाले मध्यस्थ, अधिक महत्त्व प्राप्त करते हैं।

3 विपणन सेवाएँ (Marketing Services)

विपणन क्रिया मे कीमतों का निर्धारण,सामान्य वितरण सम्बन्धी निर्देशन और कई अन्य सेवाओ की आवश्यकता होती है। वैसे सब प्रकार की सेवाएँ समस्त उत्पादा के लिए आवश्यक नही होती हैं। एक बडे शहर को खाद्य-पदार्थ उपलब्ध कराने के लिए अधिकाश सेवाओ की आवश्यकता पडती है। जैसे—

(1) कृषि उत्पादा को उत्पादकों के यहाँ स खरीदकर एक स्थान मे एकत्रित करना आवश्यक होता है, ताकि उसे बडे पैमान पर सस्ती-से-सस्ती विपणन क्रियाओं के द्वारा उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जा सके। चूँकि रुढिवादी कृषक छोटे पैमान पर पैदावार उत्पन्न करता है, इससे यह कठिनाई बढ जाती है।

(2) बहुजातीय उत्पादन (Heterogeneous) को सामान्यत श्रेणिया (grades) म छाँटना आवश्यक होता है। उनका पहले से निर्धारित मानक मानों

---

1 डी० एच० राबर्टसन् द्वारा रचित 'दि कण्ट्रोल ऑफ इण्डस्ट्री' नामक पुस्तक का अध्याय 4 देखिए।

(Standards) में भी वर्गीकरण किया जाता है। वैसे, इस सेवा के बिना भी उपभोक्ताओ और उत्पादको को पास लाया जा सकता है। साधारणत यह क्रिया अधिक प्रभावपूर्ण नही होती है। कुछ गृहणियाँ ऊँचे किस्म के उत्पाद पसन्द करती है। उदाहरणार्थ, दोषरहित सेव या तन्दुरुस्त पशुओ का मास। अन्य गृहणियाँ ऐसी भी होती है, जो कम कीमत म दागदार सेव और कम ऊँचे किस्म के मांस को खरीद लेती है। यदि ये पसन्दगियाँ मिल सके तो उत्पादक और उपभोक्ता दोनो को लाभ होता है। जो वस्तुएँ पूर्ण रूप से विशिष्ट विवरण (Specifications) के अनुसार एक समान उत्पन्न नही की जा सकती हैं, उनका श्रेणी निर्धारण अत्यन्त आवश्यक होता है। श्रेणियो की सहायता से कृषि से सम्बन्धित कच्चे माल को छोडकर शेष कच्चा माल प्राप्त किया जाता है जैसे कोयला। औद्योगिक उत्पादो को मिलते-जुलते रूप मे एक समान उत्पन्न करने स उत्पादन की क्रिया मे उपर्युक्त विचार महत्त्वपूर्ण नही होता है।

(3) फार्मों मे उत्पन्न किये जाने वाले कच्चे माल म उपयोगी बनाने की प्रक्रिया या निर्माण प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। पौधा और पशु उत्पादो म इस उपयोगीकरण (Processing) का एक भाग फार्म म किया जाता है। हम इस विषय का अध्ययन विपणन म न करके कृषि-उत्पादन के अध्याय म करेंगे। कुछ कृषि उत्पादें ऐसी भी होती हैं, जिसमे आगे की प्रक्रिया सदैव आवश्यक नही होती है, जैसे दूध अब भी उपभोक्ताओ को साधारणत बिना किसी प्रक्रिया या शीशियो मे वगैर भरे विक्रय किया जाता है। इसी प्रकार मुर्गियो से प्राप्त होने वाले अण्डे भी उसी रूप म बेचे जात है। साधारणत. कच्ची सागभाजी व फल भी बिना डब्बो म बन्द किये बेचे जाते हैं। परन्तु बहुत-सी वस्तुओ क लिए अतिरिक्त उपयोगीकरण की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ—

(i) गेहूँ को पीसकर आटा बनाना (ii) आटे से रोटी बनाना और (iii) पशुओ के बध स्थान या कसाई के यहाँ माँस काटना इत्यादि।

कभी-कभी इन क्रियाओ मे अतिरिक्त उपयोगीकरण भी आवश्यक होता है जैसे—(i) बछड़े का माँस बेचने के लिए तैयार करना, (ii) कच्चे दूध को ठण्डा करना या आशिक निर्जीवीकरण (Pasturization) करने के पश्चात् शीशियो म बन्द करके बेचना (iii) जमे हुए दूध से मक्खन और पनीर

बनाना और (iv) फलो को बेचने के लिए डिब्बो मे बन्द करना या फलो का मुरब्बा बनाना, इत्यादि ।

इसके अतिरिक्त आजकल उपभोक्ता अधिकतर बना बनाया खाना, चीनी आटे का बना पेस्ट्री का भोजन, केक, शोरबा, इत्यादि खरीदना पसन्द करते हैं । इसके विपरीत औद्योगिक उत्पादो को बनाने की क्रिया को कच्चे सामानो के विपणन से सम्बन्धित एक सेवा के रूप मे वर्गीकृत नही किया जाता है, बल्कि इनके उत्पादन की क्रिया को स्वतन्त्र विधि माना जाता है । कृषि उत्पादो के उत्पन्न करने की क्रिया को उत्पादन की स्वतन्त्र विधि नही माना जाता है । इसीलिए इन क्रियाओ को विपणन-क्रियाओं के समूह मे सम्मिलित करना उचित एव सुविधाजनक होता है । उद्योग मे उपयोगी कच्चा माल सामान्यत (सदैव नही) निर्माण की क्रिया मे अपना अस्तित्व खो देता है, परन्तु फार्मों के उत्पादो के लिए यह असाधारण बात होती है । औद्योगिक उत्पादो से कृषि-उत्पाद यह भिन्नता भी रखते हैं कि वे निर्माण की लम्बी प्रक्रिया मे एक कच्चे माल के रूप मे बहुत कम पाये जाते हैं । साधारणतः कृषि उत्पादो का उपयोग विभिन्न उत्पादो के लिए नही किया जाता है और न ये उत्पाद उपभोक्ताओ के अनेक उपयोगो को पूरा करने के लिए ही काम मे आते हैं । वैसे इस सम्बन्ध मे कुछ अपवाद भी हैं, परन्तु कृषि-उत्पादो (जो खाद्य-पदार्थ नहीं हैं) मे ये अपवाद बहुत कम पाये जाते हैं; उदाहरणार्थ, कपास और ऊन । इनका उपयोग कपडा बनाने और कारो की गद्दी तैयार करने के लिए किया जाता है । रबर भी अनेक औद्योगिक उपयोगो मे आती है, मलाई निकाले गये दूध को छातो की मूठ बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है ।

(4) चौथी सेवा सग्रह सम्बन्धी है । उपभोक्ता, वर्ष भर खाद्य-पदार्थो की नियमित पूर्ति की माँग करते हैं । विभिन्न जलवायु वाले प्रदेशो से पूर्ति करने के बाद भी उत्पादन अनियमित रहता है । फसले वर्ष मे साधारणत एक बार काटी जाती हैं । इसी प्रकार कुछ पशु सम्बन्धी उत्पाद भी वर्ष भर उत्पन्न किये जाते हैं, जैसे दूध और अण्डे । इन वस्तुओ की पूर्ति शीत ऋतु की अपेक्षा शरद ऋतु मे कम लागत मे की जाती है। किसी-न-किसी व्यक्ति को शीघ्र नाशवान् न होने वाले उत्पादो की पूर्ति को सम बनाये रखने के लिए सचय करना आवश्यक होता है । सग्रह करना जितना ही सरल और सस्ता होता है, उतना ही उपयुक्त मौसम मे अर्थात् जब कीमतें कम होती हैं, तब

उत्पादो का उत्पादन अपेक्षाकृत अधिक सम्भव होता है । सग्रह की सेवा केवल खाद्य पदार्थों तक सीमित नही होती है । यह सेवा नियमित रूप से वर्ष भर उत्पादन लागत मे बिना वृद्धि करते हुए उत्पन्न किये जाने वाले उत्पादो के लिए अधिक महत्वपूर्ण है । इस तरह सग्रह की सेवा कृषि उत्पादो के लिए औद्योगिक उत्पादो से अधिक आवश्यक समझी जाती है ।

(5) पाँचवी सेवा यातायात सम्बन्धी है । उत्पादो को सग्रह के स्थान से अन्तिम बिक्रय के स्थान तक ले जाना होता है । इस सेवा के लिए आवश्यक व्यय के महत्त्व पर कृषि उत्पादन की स्थिति से एक सम्बन्धित अध्याय मे लिखा जा चुका है । यातायात की लागतें, प्रति इकाई वजन मे कम होने से, विभिन्न जिलो मे कम उत्पादन लागतो से अधिक लाभ प्राप्त करना सम्भव होता है ।

(6) उपभोक्ताओ को उत्पादो का बिक्रय करना आवश्यक होता है । इस सेवा मे निम्नलिखित दो बातें सम्मिलित हैं —

(i) इस सेवा के अन्तगत वस्तुओ को ऐस रूप मे प्रस्तुत करना होता है कि गृहणी देख सकें और गुणो की भिन्नता के अनुसार विभिन्न कीमतो और वस्तुओ का चुनाव कर सकें ।

(ii) क्रय की गयी वस्तुओ को उपभोक्ताओ के निवास स्थान तक पहुँचाया जा सके । यह सेवा एक या अन्य रूप मे समस्त वस्तुओ के लिए आवश्यक होती है ।

खाद्य पदार्थों की बिक्री अन्य वस्तुओ की बिक्री से भिन्न होती है । यह क्रिया कई छोटे छोटे नियमित भुगतानो के माध्यम से होती है । खाद्य पदार्थों का प्रयोग अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक स्थिर होता है । साधारणत इनका विक्रय उपभोग के तुरन्त पूर्व किया जाता है । इसके निम्नलिखित तीन कारण हैं —

(1) खाद्य पदार्थ बहुधा नाशवान् होते हैं ।

(2) उपभोक्ताओ की आय और व्यय के बीच सन्तोषप्रद लाभ न होने से खाद्य-पदार्थों को अग्रिम रूप से खरीदने मे कठिनाई होती है ।

(3) बहुत से घरो मे सग्रह करने के स्थान की कमी पायी जाती है ।

उपर्युक्त सेवाओ की प्रक्रिया के लिए सम्पूर्ण विपणन प्रक्रम मे दो अतिरिक्त

सेवाओं की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है, यथा—(i) पूँजी का प्रबन्ध और (ii) जोखिम उठना।

गत अध्यायो मे यह अध्ययन किया गया है कि फार्म उत्पादो के उत्पादन के लिए किस प्रकार पूंजी की आवश्यकता होती है। इससे पूर्व कि कृषक को अपनी उत्पाद के बिक्रय से आय प्राप्त हो उसे व्यय-भार उठाना पडता हैं। कृषक प्रत्यक्ष रूप से भुगतान होने पर अपनी पैदावार की बिक्री के लिए तैयार रहता है। परन्तु उपभोक्ताओ से इस भुगतान को प्राप्त करने मे समय लगता है। इस मध्यान्तर मे अन्य विपणन सेवाओ के लिए अतिरिक्त लागत की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार आय और व्यय के बीच का अन्तर पूरा करने के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है। इस अन्तर के अधिक होने पर अधिक और कम होने पर कम पूंजी की जरूरत होती है। यदि किसी उत्पाद का उत्पादन वार्षिक हो और बिक्रय से पूर्व उसे सग्रहित किया जाये तो उसके व्यय और आय के मध्य समय का अन्तर ऐसे उत्पाद जो उत्पादन के बाद तुरन्त बेचे जाते है, जैसे दूध के उत्पादन मे होने वाले व्यय और आय के मध्य समय के अन्तर से बडा होगा।

विपणन की सम्पूर्ण प्रक्रिया मे जोखिम उठाना एक आवश्यक क्रिया है। कीमतो मे प्रतिदिन, प्रति माह और प्रत्येक स्थान मे उच्चावचन होता रहता है। उत्पादो के गुणो मे बिना किसी पूर्व सम्भावना के विघटन होने से कभी-कभी उनका केवल एक भाग ही सामान्य कीमत मे बिक पाता है। कभी कुछ हिस्सा चोरी चला जाता है या आग से नष्ट हो जाता है। इस तरह इन उत्पादो के कृषक से पृथक् होने से लेकर उपभोक्ताओं तक पहुँचाने की क्रिया मे अनेक प्रकार की जोखिम पायी जाती है। किसी-न-किसी व्यक्ति को इन जोखिमो को उठाना आवश्यक होता है।

4 परिचालन का मान (The Scale of Oprerat1on)

उपर्युक्त सेवाओ को प्रत्येक प्रकार के कार्य-विशेष मे दक्ष या विशिष्टीकरण प्राप्त एक या अधिक सगठनो के द्वारा किया जा सकता है। औद्योगिक फर्मे कई प्रकार से इस प्रकार की सेवाएँ करती है, जैसे, (i) शीतगृहो या गैस-गृहो का निर्माण, (ii) अनाजो के लिए उत्थापन यन्त्र की स्थापना, (iii) बन्दरगाहो मे गोदामो का निर्माण इत्यादि। उत्पादो के सग्रह करने के इच्छुक व्यापारी इन गोदामो को किराये प' लेते हैं। कृषि उत्पादो को रेलें, जहाज और मोटर

लारियाँ निश्चित दरो पर ढोया करती है । बैंक व्यापारियों को अल्पकालीन ऋण देते हैं। इजरा-कोठियाँ (Issue-houses) दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराने के लिए हिस्सों का प्रसारण (Floating of shares) करते हैं। बीमा कम्पनियाँ, आग लगने, जहाज डूबने, दुर्घटना, चोरी इत्यादि से होने वाली हानि की जोखिम उठाती हैं। सटोरिये सगठित उत्पाद विनिमय-केन्द्रों म अपनी सेवाओ द्वारा उत्पादको को उत्पादो की कीमतो के उच्चावचन से होने वाली जोखिम से मुक्ति दिलाते हैं। ये समस्त परिचालन या क्रियाएँ कृषि की अपेक्षा औद्योगिक क्रियाओ के अधिक नजदीक पायी जाती हैं। साधारणत ये क्रियाएँ बडे पैमाने म लेन देन करने वाले व्यवसायी द्वारा कई औद्योगिक क्रियाओ के समान सस्ते रूप म सचालित की जाती हैं।

विपणन के कई कार्य इस प्रकार के विशेषज्ञ सगठनो को सौंपे जा सकते हैं, परन्तु वितरण के नियन्त्रण तथा सगठन का मुख्य कार्य ये सगठन नहीं करते हैं। यह कार्य व्यापारियो द्वारा ही किया जाता है। उत्पादक और उपभोक्ताओ के बीच कभी एक व्यापारी और कभी कई व्यापारियो की एक लम्बी शृखला होती है।

वितरण की पहली अवस्था का सामान्यत अर्थ, फार्म से उत्पादो की पूर्ति करने के स्थान तक ढोकर इकट्ठा करना होता है। यह कार्य स्वय कृषक या कुछ छोटे व्यापारी करते हैं। ये लोग फार्मिंग के समान बडे पैमाने की क्रिया द्वारा प्रचुर लाभ नही कमाते हैं। इन कार्यों म छोटे व्यवसाय के प्रबन्धको द्वारा अधिक ध्यान देना लाभप्रद होता है। कृषि उत्पादो को एकत्रित करने के लिए व्यवस्था अधिक जटिल नहीं होती है। इसलिए इन कार्यों म विशिष्टीकरण के विकास की सम्भावना कम रहती है।

कृषक की अपेक्षा किसी विशेषज्ञ द्वारा इन कार्यों को करने के कुछ लाभ होते हैं। यदि किसी क्षेत्र की पैदावार को बाजार तक ले जाने के लिए इतने कृषक उपलब्ध हो कि उन्हे सामान ढोने का पूर्णकालिक रोजगार दिया जा सके तो ऐसा करने से मितव्ययता होती है। उदाहरणार्थ —

(1) विशेषज्ञ कुल उपज को ढोने के लिए आवागमन के साधन के रूप म लॉरी का प्रयोग करके प्रति इकाई लागत को कम कर लेता है।

(2) फार्म के विशेष कार्यों में दक्ष श्रमिको को अनावश्यक रूप से लॉरी चलाने का कार्य नही करना पडता है। वैसे लॉरी चलाने के लिए विशेष मानसिक झुकाव और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

वितरण का कार्य करने वाले कृषक के लाभों द्वारा उपर्युक्त लागतो का सन्तुलित किया जा सकता है। वितरण का कार्य स्वय करने के लिए कृषक को लॉरी खरीदनी पडती है। वह लारी का उपयोग फार्म के कार्यो और वस्तुओ को बाजार से लाने, ले जाने के लिए करना है जब य कार्य नही रहत है तो लॉरी खडी रहती है तथा उपयोग न होने से नुकसान होता है। लॉरी का पृथक् चालक नियुक्त करने मे कृषक को अतिरिक्त लागत व्यय करना पडता है। इस लागत की कोई प्रति-थापन-लागत नही होती है। जब कृषक अपना या अपने श्रमिक का एक दिन या एक सप्ताह वस्तुओ के यातायात म लगाता है, तो उस अवधि म फार्म का काम नही हो पाता है। फिर भी जब एक विशेषज्ञ की लॉरी बिना उपयोग की खडी रहती है, तो यातायात की लागत बढ जाती है। एक जिले म पर्याप्त मात्रा मे यातायात का काम न होने पर विशेषज्ञो को हानि और कृषको क द्वारा उन कार्यों का करन पर लाभ होता है। ऐसे जिलो मे कृषक अपनी वस्तुओ का मवम नजदीक बाजार म स्वत यातायात करते हैं।

वितरण की चौथी अवस्था का काय भी छोट पैमाने म सगठित रहता है। ये कार्य उपभोक्ताओ क नजदीक किय जात हैं। फुटकर बिक्री की दूकानें विशेष कारणो मे यातायात के व्यवसाय की इकाई से छोटी होती है। उपभोक्ता अपने निवास के पास सभी प्रकार की दूकानो का रहना, हमेशा सुविधाजनक पाते हैं। छोटी इकाइयाँ ही नजदीक के स्थानो पर स्थापित होती हैं क्योकि बडी इकाइया को केन्द्रीय बाजारो मे सस्ती लागत मे स्थापित किया जाता है। वैसे छोटी दूकानो को बड़े पैमाने की इकाई के प्रबन्ध के साथ सयुक्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ—(1) सेन्सबरी (2) मार्क एण्ड स्पेंसर (3) वुलवर्थ इत्यादि बहु सस्थान। परन्तु व्यावहारिक जीवन म छोटी दूकानें बडे सगठनो के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए, चलती रहती है।

वितरण की मध्यस्थ व्यवस्था थोक व्यापारी क द्वारा बड पैमाने पर सगठित की जाती है। थोक व्यापारी प्रत्येक उत्पाद को भेजन का स्थान तथा माँग और पूर्ति को बराबर करन वाली कीमतो को इस प्रकार निश्चित करत हैं, जिससे उनका लाभ अधिक-से-अधिक हो जाये। थोक व्यापारी ही विपणन के शेष कार्यों जैसे श्रेणीकरण, परिष्करण, सग्रह, यातायात, कुछ मात्रा मे साख की व्यवस्था और जोखिम के अधिकाश भाग को उठाना इत्यादि को

करने के लिए विशेषज्ञ सगठनों की व्यवस्था करते हैं। हमे ज्ञात है कि औद्योगिक प्रक्रियाएँ बड़े पैमाने मे सबसे सस्ती रीति से की जाती हैं। इसलिए छोटे व्यापारी की अपेक्षा थोक व्यापारी बाजार और पूर्ति का अध्ययन बड़ी सरलता से करने मे समर्थ होता है। उत्पादो को सबसे लाभदायक स्थानो मे भजने के लिए मध्यस्थ व्यापारियो को विभिन्न स्थानो की गतिविधियो की जानकारी रखना आवश्यक होता है। छोटे लेन देनो के लिए भी इस प्रकार का अध्ययन करना लाभप्रद होता है। इस तरह एकत्रित की गयी सूचनाएँ भी बड़े विक्रय के लिए उपयोगी होती हैं। वैसे बड़े फार्मों को बाजार की व्यावसायिक गतिविधियाँ उपलब्ध कराने वाले व्यावसायिक पत्र या शासकीय एजेन्सी के बिना सन्तोषप्रद लाभ नही हो पाता है।

थोक फर्मे प्राय बड़ी होती है। ये फर्मे कभी-कभी अपने व्यवसाय को उत्पादको या उपभोक्ताओ के साथ सयुक्त करके या दोनो दिशाओ मे दोनो से सम्बन्धित करके लाभ प्राप्त करती हैं। इस अध्याय मे विशेषज्ञता (Specialisation) और एकीकरण (Integration) के लाभ हानियो का वर्णन नही किया गया है। वैसे इनमे से प्रत्येक स्थिति मे विभिन्न लाभ प्राप्त होते हैं।

5 विपणन की लागतें (The Costs of Marketing)

उपभोक्ताओ को खाद्य सामग्री प्राप्त कराने के लिए उत्पादन के समान वितरण भी आवश्यक है। उपर्युक्त सेवाओ के बिना उद्योगपतियो और कृषको के बीच श्रम-विभाजन (Division of labour) असम्भव होता है। श्रम-विभाजन की अनुपस्थिति मे प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी खाद्य सामग्री स्वय उत्पन्न करना अनिवाय हो जायेगा। ऐसा करने से मनुष्य के आर्थिक जीवन मे विकास की गति धीमी हो जायेगी। जो भी हो यह सलाह प्राय दी गयी है कि खाद्य सामग्री के वितरण की लागतें अत्यधिक होती हैं। यह बात सच है कि वितरण-कर्ता औद्योगिक वस्तुओ की अपेक्षा कृषि उत्पादो के सन्दर्भ मे उपभोक्ताओ द्वारा भुगतान की गयी राशि का अधिकाश भाग स्वय रख लेता है परन्तु हमे इस दोष को निभाना पडता है। उदाहरणार्थ—(1) इग्लैण्ड मे युद्ध के पूर्व उपभोक्ताओ द्वारा भुगतान की गयी राशि का कृषको को मांस के लिए $\frac{2}{3}$, दूध के लिए $\frac{1}{2}$, फलो और शाकभाजी के लिए परिवर्तनशील अनुपात मे $\frac{1}{3}$ मे भी कम भाग प्राप्त होना था।

(2) न्यूजीलैण्ड का कृषक, इग्लैण्ड के उपभोक्ता द्वारा भुगतान की गयी

राशि का $\frac{1}{2}$ और $\frac{4}{5}$ के बीच का भाग मक्खन के लिए प्राप्त करता था। सन् 1930 मे उपभोक्ताओ द्वारा खाद्य सामग्री के लिए किये गये भुगतान का $\frac{1}{3}$ भाग कृषक व आयातकर्ता को और $\frac{1}{3}$ भाग निर्माण और खाद्य सामग्री के परिष्करण के लिए प्राप्त होता था। इसमें अन्य समुद्री स्थानो से अंग्रेजो बन्दरगाहो तक का यातायात सम्मिलित था। वितरक के लिए शेष $\frac{1}{3}$ भाग बच रहता था। सन् 1930 मे प्राथमिक उत्पादो की कीमते मन्दी हो गयी थी। इसके पूर्व के वर्षो मे कृषको को ऊँची कामतो के कारण ज्यादा लाभ प्राप्त हुआ था।

उद्योग की अपेक्षा कृषि मे वितरण के मंहगे होने के निम्नलिखित कारण है:—

(1) कृषि उत्पादन का छोटा-मान।

(2) उत्पादको का दूर स्थानो तक फैलाव।

(3) पैदावार की कई किस्मे और मात्राएँ।

(4) कृषि उत्पाद की नश्वरता।

(5) उपभोक्ताओ द्वारा छोटी मात्रा मे अपने घर के नजदीक की दूकान से क्रय करना।

फार्म वस्तुओ की लागत मे समस्त अतिरिक्त क्रय शामिल हो जाते से वे लाभ कम हो जाते हैं, जो विशेष खाद्य सामग्री की माँग की स्थिरता से प्राप्त होते हैं। इन खाद्य सामग्रियो की माँगो मे, अन्य वस्तुओ के समान, फैशन का असर नहीं पडता है।

यद्यपि विपणन की सेवाएँ अपनी पूरी सीमा तक सस्ती नही की जाती है, फिर भी व्यक्तिगत उद्यम और व्यक्तिगत व्यवसाय के चुनाव की स्वतन्त्रता का लगातार उपयोग या अनुलम्बन (Persistence), इस मान्यता के अन्तर्गत न्यायसगत माना जाता है कि विभिन्न लोगो के बीच पायी जाने वाली प्रतिस्पर्धा विपणन सेवाओ की लागतो को कम करने का बीमा करती है। किसी सेवा के अनावश्यक रूप से अतिव्यय होने पर यह मान लिया जाता है कि दूसरे व्यक्ति इस सेवा को पूर्ति सस्ते ढग से करने के लिए आकर्षित होंगे। अब यह तथ्य स्पष्टतः मान्य हो गया है कि वितरण की आदर्श व्यवस्था कई अवरोधो के द्वारा रोक दी जाती है। व्यावहारिक जीवन की प्रतिस्पर्धा पूर्ण-प्रतिस्पर्धा

की स्थिति से बहुत भिन्न होती है। वितरण के क्षेत्र मे पायी जाने वाली अपूर्णताओ पर विचार करना आवश्यक है।

देहाती लेन-देन और फुटकर बिक्री, दोनो के लिए कुछ मात्रा मे स्थानीय एकाधिकार अपरिहार्य होता है। अत देहाती लेन-देन मे यातायात् की लागत केवल उस समय सबसे कम होती है, जब प्रत्येक क्षेत्र मे केवल एक विक्रेता जाता है क्योकि इस प्रकार परस्पर व्यापन को हटा कर यात्रा की दूरी घटकर निम्नतम हो जाती है। यह बात फुटकर वितरण के लिए सत्य है। फुटकर वितरण मे दूकानों द्वारा खाद्य सामग्री को प्रतिदिन उपभोक्ता के घर पहुँचाया जाता है। जैसे, दूध दिन मे दो-तीन बार पहुँचाया जाता है। कृषकों और उपभोक्ताओ के पास उन लोगो की सीमित पसन्दें रहती हैं, जिन्हे बेचना है या जिनमे खरीदना है। जिन क्षेत्रो मे कई फर्में होती हैं, वहाँ प्रत्येक फर्म के लिए वितरण की लागत न्यूनतम स्तर से अधिक होने लगती है। कृषक और उपभोक्ताओ को अपने समय और शक्ति के गैर-आनुपातिक भाग का उपयोग यह जानने मे करना पडता है कि दूसरे व्यापारी कितनी मात्रा मे भुगतान कर रहे हैं, या *दूसरी दूकानें आवश्यक वस्तुओ की कितनी कीमतें ले रही हैं। इस जानकारी* के अभाव मे एक फर्म से दूसरे फर्म का व्यवसाय सरलता के साथ स्थानान्तरित नही होता है।

उपर्युक्त कठिनाइयो के कारण थोक व्यापारी और फुटकर विक्रेताओ दोनो को अपने जिलो मे आंशिक एकाधिकार (Partial monopoly) प्राप्त रहता है। ये लोग अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार कार्य करते हुए वितरण की लागत से अधिक चार्ज बढाकर अधिक लाभ कमाते हैं। इन लोगो का एकाधिकार, नयी फर्मों को उनके व्यवसाय मे प्रवेश करने से नही रोकता है। बल्कि इनके अधिक मात्रा के चार्ज से होने वाले लाभो को देखकर प्रतिस्पर्धा करने वाले आकर्षित होते हैं। इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक फर्म के व्यवसाय की मात्रा उनके लाभ सामान्य होने तक घटती रहती है। ऐसे क्षेत्र मे वितरण का कार्य करने के लिए आवश्यकता से अधिक सख्या मे फर्में स्थापित हो जाती हैं। जब ये फर्में अपनी पूर्ण क्षमता के बराबर कार्य करती हैं, तो वितरण की लागतें, व्यवसाय *की मात्रा अधिक होने की स्थिति में होने वाली लागतो से अधिक हो जाती* हैं। कोई भी फर्म अपने चार्ज को कम करके ग्राहको की सख्या बढाकर अधिक लाभ प्राप्त नही कर पाती है क्योकि अपने क्षेत्र मे प्रत्येक फर्म अन्य फर्मों से

स्वतन्त्रतापूर्वक प्रतिस्पर्धा करती है। चार्ज को कम करने की विधि का ऐसे ग्राहकों तक विस्तार होना आवश्यक होता है, जो अन्य फर्मों से स्थानान्तरित होने की सबसे कम सम्भावना रखते हैं। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्य और फुटकर व्यवसाय की लागतों को न्यून स्तर से ऊँचा रखना आवश्यक है, भले ही इनके कारण फर्म को अधिक मात्रा में लाभ न मिल सके।

थोक व्यापार में इस प्रकार की अपूर्ण प्रतिस्पर्धा (Imperfect competition) बहुत कम पायी जाती है। एक थोक व्यापार के फर्म का ग्राहकों के विशेष समूह में ही व्यापार करने का कोई प्रमुख कारण नहीं होता है क्योंकि अधिकांश फर्में विपणन केन्द्र में स्थित रहती है। ये फर्में किसी एक क्षेत्र विशेष से व्यवसाय नहीं करती हैं। थोक व्यापार करने वाली फर्में साधारणतः अन्य व्यापारियों से, क्रय और विक्रय, दोनों प्रकार के लेन देन का कार्य करती है। ये फर्में कृषकों के द्वारा चार्ज की जाने वाली और उपभोक्ताओं द्वारा भुगतान की जाने वाली कीमतों के परिवर्तनों का विशेष रूप से अध्ययन करती हैं।

विपणन में एक प्रकार की अपूर्ण प्रतिस्पर्धा और पायी जाती है। थोक व्यापार का बड़े पैमाने का मान सबसे मितव्ययी होता है। व्यवसाय की प्रत्येक शाखा में अधिक संख्या में पाये जाने वाले थोक व्यापारियों के लिए यह कोई आकस्मिक बात नहीं होती है। परिसंचालन का सबसे उत्तम मान कभी-कभी इतना बड़ा होता है कि केवल थोक व्यापारी ही व्यवसाय करने के लिए अस्तित्व में रह जाते हैं। एक क्षेत्र के कई थोक व्यापारी अपने व्यवसाय के लिए सबसे अच्छे स्थान को अपना केन्द्र बनाते हैं और आपस में एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखते हैं। वे सबके हितों को बनाये रखने के लिए आवश्यक कीमतों पर एक मत हो जाते हैं। ये कीमतें, प्रदान की जाने वाली या स्वीकार की जाने वाली होती है। इस प्रकार की सहमति के कारण सब लोग मिलकर एक एकाधिकारी (Monopolist) की भाँति व्यवसाय करने लगते हैं। ये व्यापारी आपस में मिलकर एक संगठन बना लेते हैं, जिसका उद्देश्य केवल परिचालन की क्रियाओं में मितव्ययता प्राप्त करना न होकर मोल-भाव करने की सर्वाधिक लाभप्रद स्थिति का निर्माण करना होता है। इस प्रकार के संगठन व्यवसाय में नयी फर्मों का प्रवेश रोकने में सफल हो जाते हैं। इसके लिए वे अपने चार्जों को अस्थायी रूप से कम कर देते हैं और

बाद मे उत्पादक और उपभोक्ताओ के खर्चों के माध्यम से सबस अधिक लाभ कमाते हैं। ऐस सगठनो की शक्ति, विशेष रूप से अधिक होती है। थोक व्यापारी, जिन व्यापारियो से लेन-देन करते हैं, वे छोटे मान म सगठित रहते है। यही कारण है कि थोक व्यापार म अधिकाधिक लाभ और फुटकर व्यापार मे लागतो को अधिकाधिक खतरा बना रहता है। विपणन सम्बन्धी उपर्युक्त तर्क कुछ निमाण विधियो म भी लागू होते है, इसलिए इन निर्माण विधियो मे बडे पैमाने के सगठन पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ— (i) मारगरीन के निर्माण, (ii) शक्कर की सफाई और (iii) बन्दरगाहो मे अनाजों को पीसना तथा और भी कई विधियो मे।

विपणन पद्धति का एक महत्त्वपूर्ण दोष यह होना है कि विपणन विधि की किसी भी अवस्था मे पायी जाने वाली असफलता का पता लगाना कठिन होता है। कृषि-उत्पादो के लिए उपभोक्ताओं की अभिरुचि सापेक्ष कीमतों के द्वारा दर्शायी जाती है। परन्तु उत्पादको को यह अभिरुचि अपनी उत्पादो के बदले मे मिलने वाली कीमतों के अन्तर द्वारा पूर्ण रूप से ज्ञात नही होती है। अन्य शब्दो मे, विपणन-पद्धति उत्पादो की पूर्ति को माँग के साथ सगत करने मे और अपने प्रमुख कर्त्तव्यो का पालन करने मे समर्थ नही है।

खाद्य सामग्री के वितरण मे आवश्यकता से अधिक लागतें आती है। सन् 1922-23 मे इग्लैण्ड की लिनलिथगो समिति ने इस सम्बन्ध म विस्तार के साथ अध्ययन किया था। इस समिति का यह निष्कर्ष था कि 'उत्पादको और उपभोक्ताओ की कीमतो के बीच अत्यधिक अन्तर" न्यायसगत नही है और वितरण की लागतें इतनी भारी बोझ हैं कि समाज सरलता के साथ इसे स्थायी रूप से वहन करन की स्वीकृति नहीं देगा। इस स्थिति के पश्चात किसी विशेष सुधार के चिह्न नही दिखते हैं। दूध का व्यवसाय जैसे व्यवसायो मे फुटकर विक्रेताओ की सख्या सबसे अधिक पायी जाती है। यह बिल्कुल साधारण बात है कि एक स्ट्रीट मे एक दिन 1 या 2 फेरी वाला के स्थान पर 3 या 4 फेरी वाले रखे जाते हैं। इसके विपरीत कई व्यवसायो मे थोक व्यापारियो की सख्या इतनी कम होती है कि प्रमुख फर्मे सत्तारोह (Ascendency) की स्थिति प्राप्त कर लेती हैं। इस प्रकार की कुछ प्रमुख फार्मों के नाम इस प्रकार हैं :—

(1) मिल के व्यवसाय मे मेसर्स स्पिलर्स एण्ड रैंक्स,

(2) दुग्ध वितरण मे यूनाइटेड डेरीज और

(3) गोमास के व्यापार मे मास एण्ड बाक्सटर ।

ये फर्में अपने व्यवसाय के अधिकाश भाग का नियन्त्रण करती हैं परन्तु जितनी मात्रा मे वस्तुओं का लेन-देन करती हैं, उनके अनुपात मे प्रति इकाई लाभ अधिक नही होता है । उनका लाभ अपनी पूंजी के निवेश के अनुपात मे अधिक होता है । इन फार्मों के द्वारा उन कृषको की ईर्ष्या और रोष जागृत होता है जिनकी वस्तुओ का व्यापार इनके द्वारा होता है । यह कहना अत्यन्त कठिन है कि ये सगठन अपनी अत्यधिक योग्यता के परिणामस्वरूप या अधिक योग्यता प्राप्त करने या अधिक शक्ति प्राप्त करने मे कहाँ तक सफल हुए है ।

6 सहकारी विपणन (Cooperative Marketing)

सहकारी विपणन, उत्पादो के वितरण की लागतो को कम करने का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है । सहकारिता को विपणन विधि से किसी भी छोर से सगठित किया जाता है । उत्पादक अधिक आय प्राप्त करने की आशा से अपने उत्पादो को वितरण करने का स्वय प्रयत्न करते हैं । इसी प्रकार उपभोक्ता अपने उपभोग की वस्तुओ को सस्ती कीमत में खरीदने के लिए वितरण का कार्य-भार स्वय सम्भालते हैं ।

उपर्युक्त दोनो प्रकार के उपाय अनन्य (Exclusive) नहीं हैं, अर्थात् साथ-साथ पाये जाते है । सहकारी भण्डार वितरण की समस्त स्थितियो का नियन्त्रण करने का प्रयत्न करते है । उत्पादको के भण्डार सामान्यत उत्पादको के छोर से कार्य प्रारम्भ करते हैं और ग्रामीण क्षेत्रो के व्यवसायी और थोक व्यापारियो के कार्यों से अधिक काय नही करते हैं । इसी प्रकार उपभोक्ताओ के सहकारी-भण्डार फुटकर बिक्री के छोर के काय प्रारम्भ करते हैं । ये भण्डार कभी-कभी पीछे की ओर अर्थात् उत्पादको के कार्यों की ओर भी बढते है । उदाहरणार्थ —

(1) सयुक्त राज्य सघ अमेरिका के कई दुग्ध उत्पादक सगठनो ने उपभोक्ताओ को दूध के वितरण करने का प्रयत्न किया था ।

(2) आंग्ल सहकारी समितियाँ फुटकर सगठन हैं । ये सहकारी थोक समितियो से मिलकर दूध और अन्य फार्म उत्पादो को खरीदती हैं । कभी-कभी ये सगठन अपने फार्मों का परिचालन भी करती हैं ।

साधारणत वितरण की सम्पूर्ण विधि का नियन्त्रण करने वाले सगठन बहुत कम पाये जाते हैं । कृषको के सहकारी भण्डार फुटकर बिक्री का कार्य करने मे

सफल नही हुए हैं। अमेरिका मे उपभोक्ताओं को दूध बाँटने के प्रयत्न का सफलता न मिलने के कारण परित्याग किया गया है। इसके विपरीत उपभोक्ता सहकारी भण्डार कृषको से उत्पादें खरीदने मे सफल हो गये हैं। परन्तु इन भण्डारो को अपने फार्म की व्यवस्था करने मे सफलता नही मिली है। ये उपभोक्ता भण्डार, थोक व्यापारियो और उत्पादको के सहकारी भण्डारो से उत्पादो' को खरीदते हैं। डेनमार्क मे उपभोक्ताओ द्वारा सगठित सहकारी थोक समिति अपने कारखानो का परिचालन करती है और कृषको के सहकारी भण्डारो से सफलतापूर्वक मक्खन तथा गोमाँस खरीदती है।

उपभोक्ता सहकारिता के विषय मे विवेचन इस पुस्तक की विषयवस्तु नही है। केवल उत्पादक-सहकारिता के बारे मे थोडा सा प्रकाश डाला जा सकता है। उपयुक्त लोगो को उत्पादक सहकारिता की वास्तविक उपलब्धियो का ज्ञान नही हो पाता है। उनके लिए इन जानकारियो को प्राप्त करना कठिन ही नही अपितु असम्भव होता है। साधारणत यह कहा जाता है कि "सहकारिता का उद्देश्य मध्यस्थ व्यक्ति का विलोपन (Elimination) करना है।" अर्थात् मध्यस्थ लोग कोई उपयोगी कार्य नहीं करते हैं। चूंकि कृषक अपने उत्पाद को मध्यस्थो को वेचने के लिए विवश होते है। इसलिए विपणन पद्धति के अन्तर्गत उत्पादक और उपभोक्ता के बीच उठाय जाने वाले लाभ को मध्यस्थ अपना लाभ बना लेने। इस दृष्टिकोण में स्पष्टत निरर्थकता है। मध्यस्थ का कार्य बडा महत्वपूर्ण है। वह बडे शहरी की जनसख्या को खाद्य-सामग्री उपलब्ध कराने का प्रबन्ध करता है। उसकी सेवाएँ कृषको की सेवाओं के समान ही आवश्यक होती हैं। यद्यपि उन्ह भी इन सेवाओ के लिए भूमि, श्रम, पूँजी और प्रबन्ध नामक साधनो की जरूरत होती है। वे ये सेवाएँ लागत के बिना नहीं कर सकते हैं। यदि कृषक वितरण सम्बन्धी सेवा करते हैं तो उन्हें मध्यस्थों की तरह, श्रमिको को मजदूरी मे लगाना पडता है और पूँजी उधार लेनी पडती है। कृषक के समय और पूँजी का एक हिस्सा व्यय होता है। इस प्रकार की क्रियाओ को करने से कृषक की योग्यता मे ह्रास होना निश्चित है।

उपर्युक्त विचार शृंखला से यह स्पष्ट होता है कि "सहकारिता का उद्देश्य मध्यस्थ व्यक्ति का विलोपन करना नहीं होना है।" बल्कि मध्यस्थ की सेवाओ को कम लागत मे प्राप्त करना होना है। सहकारिता के द्वारा वितरण के व्यवसाय मे योग्य कार्यकर्ताओं को आकर्षित करने के लिए यथासम्भव

लाभो को प्राप्त किया जाता है। सहकारिता की सफलता, प्रतिस्पर्धात्मक प्रणाली की कमियो को बिना नये दोष उत्पन्न करते हुए, दूर करने पर निर्भर होती है।

सहकारी विपणन के कुछ महत्त्वपूर्ण लाभ निम्नलिखित हैं :—

(1) सहकारी विपणन सगठन, कृषको को अपने स्वय के माध्यम से बिक्रय करने के लिए अन्य प्रतियोगियो की अपेक्षा ऊँची कीमत देकर आकर्षित करते हैं। कृषक, अपनी सहायता करने वाले सगठन के प्रति वफादारी रखना सीखते है। ये सगठन निजी सस्थानों की अपेक्षा कृषको से लेन देन करने मे सरलता अनुभव करते है और इन लेन-देनो को सफलतापूर्वक करते हैं।

(2) सहकारी विपणन सगठन केवल ग्रामीण व्यापारियो को सँभालते हुए कृषको की मोलभाव करने की स्थिति मे सुधार करते है। ये सगठन थोक व्यापारियो की तुलना मे उनके बराबर या उनसे उच्च आधार पर मोलभाव करने योग्य हो जाते हैं।

(3) ये सगठन कई कृषको से उत्पाद खरीदने के लिए अन्य थोक व्यापारियो से प्रतिस्पर्धा करते हैं। यह कहना उचित नही है कि सहकारी विपणन सगठन थोक व्यापारियो को नियमित और निश्चित पूर्ति प्रदान करते हैं। इन सगठनो के कारण थोक व्यापारी उत्पादको को ऊँची कीमत देते हैं। इससे सहकारी विपणन की लागतो मे कमी आ जाती है। सामान्य व्यवसाय मे यह लाभ किस मात्रा मे प्राप्त किया जा सकता है, कहना कठिन है। सैद्धान्तिक दृष्टि से, सहकारी भण्डार के सदस्यों को अपनी उत्पादें नियमितरूप से अपने सगठन को बेचना चाहिए। बहुत से उत्पादक ऐसा करते भी हैं। परन्तु बहुत से उत्पादक निजी व्यापारियो की ऊँची कीमतो द्वारा आकर्षित होकर, अपनी उत्पादें उन्हे बेच देते हैं। जब सहकारी सस्था थोक व्यापारी के कार्य भी करती है, तब इसे बडे पैमाने के थोक व्यवसाय के लाभ मिलते हैं। ऐसी स्थिति मे एकाधिकार सगठन उत्पादको का शोषण नही कर पाते हैं।

(4) सहकारी समितियो की अधिक सख्या मे स्थापना से उत्पादो द्वारा की जाने वाली पूर्ति की मात्रा मे वृद्धि होती है। इससे उपभोक्ताओ की माँग को पूरा करने का कार्य सरल हो जाता है। सहकारी सगठन उत्पादको को उपभोक्ताओ के कीमत सम्बन्धी अधिमानो (Preferences) से अवगत कराते हैं। इससे उत्पादक उत्पादन की क्रिया मे सतर्क रहते हैं। ये सगठन अपने

सदस्यो को विभिन्न वस्तुओ के उपभोक्ताओं की अभिरुचियो के अनुसार भुगतान करने का प्रबन्ध करते हैं। उदाहरणार्थ—

(i) सयुक्त राज्य अमेरिका मे कई सहकारी दुग्ध विपणन सगठनो मे दूध उत्पादको को दूध मे मक्खन की मात्रा और कभी कभी बेक्टीरिया तत्व की मात्रा के अनुसार भुगतान किया जाता है।

(ii) डेनमार्क मे सूअर के मांस की सहकारी सस्थाऐं उत्पादको को ब्रिटिश बाजार को सतुष्ट करने वाले शुष्क मास व क्षमता के अनुसार भुगतान करती हैं।

सभी निजी फर्मों के इस प्रकार व कार्य न करने का कोई स्पष्ट कारण नही दिखता है। वैसे कुछ निजी फर्में ऐसा करती भी है। अच्छी किस्म व उत्पाद के लिए कई फर्में ऊँची कीमत देती हैं। इनके द्वारा कभी-कभी ग्रेड व अनुसार कीमत का भुगतान किया जाता है। परन्तु इसके कारण उत्पादको का उपभोक्ताओं की माग के अनुसार उत्पादन को सचेत करने के लाभ प्राप्त करने की जानकारी नही मिल पाती है। सहकारी सगठन पूर्ति का उपभोक्ताओं की मॉग के अनुसार सयत करने के लिए एक अतिरिक्त रीति भी अपनाते हैं। इन सगठनो को निजी फर्मों की अपेक्षा अपने उत्पादको को यह शिक्षा देना बडा सरल रहता है कि उपभोक्ता किस उत्पाद को क्य लेना पसन्द करते हैं। ये सगठन उत्पादको को भविष्य की कीमतो की दिशाओ के बारे मे जानकारी देते है और यह सलाह भी देते है कि वे अपने उत्पादन की मात्रा म कब वृद्धि या कमी कर। व अपन उत्पादकों को फुसलाकर सही प्रकार का वस्तुएँ ठीक समय पर बाजारो मे विक्रय के लिए प्रस्तुत करते हैं। कभी कभी उपर्युक्त कार्य के लिए अग्रिम भगतान भी किया जाता है।

(5) सहकारी सगठनो उत्पादो की मात्रा पर नियन्त्रण करके, बाजार म पूर्ति रोककर विद्यमान कीमत स्तर (Price level) को रूपान्तरित करन म सफल हो जाते है। इस प्रकार की रीति की वाछनीयता एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न है। इसके गुण और दोषो के बारे मे विचार "कृषि मे राज्य के हस्तक्षेप नामक अध्याय म किया जायगा।

(6) सहकारी विपणन सगठन कृषक को विपणन प्रणाली समझने और अपनी स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। कृषक मध्यस्थ व्यक्तियो की कठिनाइयो और समस्याओ पर विचार करता है।

वह यह महसूस करना प्रारम्भ कर देता है कि मध्यस्थ कहीं उसका शोषण तो नहीं कर रहे है ।

सहकारी विपणन सगठनो के उपर्युक्त लाभ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं । इनके कारण बडी सख्या मे सफलतापूर्वक सहकारी सगठनो की स्थापना हुई है । उदाहरणार्थ—

(i) डेनमार्क मे सुअर के मांस, मक्खन और अण्डो की सहकारी सस्थाएँ ।

(ii) न्यूजीलैण्ड का डेयरी उत्पाद निर्यात मण्डल (Dairy Produce Export Board)

(iii) केलिफोर्निया मे सन्तरा उत्पादक सस्थाएँ ।

(iv) सम्पूर्ण सयुक्त राज्य अमेरिका मे फैली हुई अनेक महकारी दूध विपणन सस्थाएँ, आदि ।

परन्तु ऐसा भी देखा जाता है कि उत्पादो के सहकारी विपणन सगठन हमेशा सफल नही होते हैं । इग्लैण्ड मे इन सगठनो ने कभी भी उन्नति नही की है । इसका इन सगठनो के लाभो के अतिरिक्त पायी जाने वाली निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं —

(1) महकारी विपणन सगठन की स्थापना मिश्रित फार्मिंग के क्षत्रो मे कठिन होती है । इग्लैण्ड मे ऐसी स्थिति पायी जाती है । सहकारी विपणन सगठन किसी एक या कुछ उत्पादो का विशिष्टीकरण करके सन्तोषप्रद लाभ कमाते हैं । कभी-कभा व्यापारी द्वारा मिश्रित फाम को अपनी उत्पाद बेचने मे अधिक बचत होती है । इसमे विपणन सस्था को एकत्र करने की लागत म कमी होती है । सहकारी सगठन कृषक से अपना व्यापार प्रारम्भ करना चाहते हैं, इसलिए मिश्रित फार्मों द्वारा कृषक का उत्पाद खरीदने का विरोध करते हैं ।

(2) सहकारी सगठन को बडे पैमाने मे उत्पादक स लेकर उपभोक्ता तक लेन-देन करने मे कठिनाई होती है । उत्पादो को बडे पैमाने मे खरीदकर बहुत दूर के बाजारो मे बेचने से ज्यादा लाभ होता है परन्तु ऐसा करने पर उपयुक्त कठिनाइयाँ बढ जाती हैं । आंग्ल परिस्थितियाँ इस व्यवस्था के अनुरूप नही होती हैं क्योकि वहां उत्पादक और उपभोक्ता, हमेशा ऐसे क्षेत्रो और जिलो के

नजदीक पाये जाते हैं, जहाँ उत्पादों को बड़े पैमाने में खरीदकर सुदूर बाजारों में बेचते हैं।

(3) सहकारी विपणन संगठन के सदस्यों के बीच कभी कभी बहुत द्वेष पाया जाता है। ऐसा भी देखा जाता है कि सहकारी संगठन साधारणत "एक व्यक्ति-एक मत" के सिद्धान्त पर ही सफलतापूर्वक चलते हैं। यह व्यवस्था उन क्षेत्रों में सफल होती है जहाँ अधिकांश फार्म एक समान साइज के होते हैं। परन्तु इस व्यवस्था से बड़े पैमाने के फार्म और कृषक फार्म साथ पाये जाने वाले क्षेत्रों में बड़े कृषकों को अधिक सन्तुष्ट नहीं करती है। बड़े कृषक हमेशा अपने व्यवसाय के मान को सबसे ज्यादा लाभप्रद मानते हैं।

(4) सहकारी संस्था को संचालित करने वाले जिम्मेदार व्यक्ति निजी फार्मों को चलाने वाले व्यक्ति की तुलना में तीव्र बुद्धि वाले, ज्ञानयुक्त और लचीले स्वभाव के नहीं होते हैं। सहकारी विपणन संस्था का नियन्त्रण उसके कृषक सदस्यों, वेतनभोगी प्रबन्धकों और प्रतिनिधियों के द्वारा किया जाता है। वेतनभोगी प्रबन्धकों को संगठन द्वारा रोजगार प्राप्त होता है। कृषक सदस्यों में विपणन सम्बन्धी ज्ञान की कमी पायी जाती है। लाभ प्राप्त करने वाले सदस्यों की अपेक्षा पारिश्रमिक पर कार्य करने वाले प्रतिनिधियों में उत्साह की कमी रहती है। इस सन्दर्भ में सहकारी संस्थाओं को संयुक्त पूँजी कम्पनियों (Joint stock companies) से ज्यादा खराब नहीं कहा जा सकता है। परन्तु वे निजी व्यवसायियों से खराब होते हैं।

(5) सहकारी संगठन में कृषक सदस्यों की आय कम तथा उनकी पैदावार बेचने वाले वेतनभोगी प्रबन्धकों की आमदनी अधिक होती है। इसलिए उनमें ईर्ष्या का भाव सहज ही उत्पन्न हो जाता है।

(6) सहकारी संगठन में कृषक की आय इतनी कम होती है कि इसके द्वारा बड़े पैमाने के संस्थान को सफलतापूर्वक चलाने की योग्यता रखने वाले प्रबन्धक आकर्षित नहीं किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त सहकारी संगठनों में अयोग्य प्रबन्धकों का सदैव खतरा रहता है। प्रारम्भ में यह खतरा बहुत वास्तविक था परन्तु अब कृषक सदस्य इस प्रकार की मितव्ययता को हानिकारक समझने लगे हैं। वे योग्य व्यक्तियों को अधिक पारिश्रमिक देकर सेवाओं में रखना पसन्द करने लगे हैं। उदाहरणार्थ—इंग्लैण्ड के दुग्ध उत्पादकों ने अपने प्रमुख प्रबन्धक का ५०० पौण्ड वार्षिक वेतन रखा था।

ऐसा अनुभव किया गया है कि निम्नलिखित दो प्रकार की सहकारी सस्थाएँ प्राय: असफल हो जाती है :—

(i) जो सहकारी सगठन, कृपक या उपभोक्ताओ द्वारा सगठित न होकर, बाहरी व्यक्तियो द्वारा बडे पैमाने के व्यवसाय के लाभो को प्राप्त करने के उद्देश्य से सगठित किये जाते हैं, वे असफल हो जाते हैं। सहकारी सस्थाओ की सफलता सदस्यो की ईमानदारी पर निर्भर होती है। स्थानीय सगठनो मे, स्थानीय कृषको को स्थान देने पर ऐसा सम्भव होता है। इन सगठनो की देखरेख व मार्ग-दर्शन करने के लिए एक केन्द्रीय सगठन बनाया जाता है परन्तु वह बहुत कम सफल होता है।

(ii) ऐसे सहकारी सगठनो को जो किसी बडे बाजार मे उपलब्ध उत्पाद की पूर्ति को बडे अनुपात मे नियत्रण करते हैं, सदैव एकाधिकारी वृत्ति का खतरा रहता है। इस प्रकार के परिचालन प्राय. अफ्सल हो जाते हैं। ऐसे सगठन कभी-कभी उत्पादको की दृष्टि से सफल होने के बावजूद, अपनी गतिविधियो के कारण गैर-सामाजिक कहलाने लगते है। इस विषय का विवेचन अध्याय ९ मे अधिक विस्तार के साथ किया गया है।

● ●

अध्याय 6

पूर्ति और माँग की कीमत पर प्रतिक्रिया

(THE REACTION OF SUPPLY & DEMAND TO PRICE)

1 दीर्घ-काल मे पूर्ति की प्रतिक्रिया

(The Reaction of Supply in the long period)

कृषि-उत्पादन और विपणन की समस्या का विवेचन, कम या अधिक स्थिर परिस्थितियो के अन्तर्गत् गत् 4 अध्यायो म किया गया है। इसके पश्चात यह अध्ययन करना आवश्यक है कि कृषि परिवर्तनशील परिस्थितियो के अन्तर्गत् किस प्रकार अपने को सयन करती है। इसलिए हम कृषि की गतिशीलता (Dynamics of Agriculture) के बारे मे विचार करेंगे। अभी तक मे कीमत के ऐसे प्रभावों पर विशेष बल दिया गया था, जो कृषि उत्पादो की माँग और पूर्ति को एक-समान करने मे सहायक होते थे परन्तु इस अध्याय मे कीमत के परिवर्तन का कृषि-उत्पादन और फार्म उत्पादो पर पडने वाले प्रभावों का विशेष रूप से अध्ययन किया जायगा। इससे कृषि और उद्योग के बीच का अन्तर भी स्पष्ट होगा। इन तथ्यो को समझाने के लिए कृषि वस्तुओं की माँग और पूर्ति की वक्र रेखाओ के आकारो का वर्णन किया जायेगा।

सर्वप्रथम, निम्नलिखित दो समस्याओ पर विचार करना नितान्त आवश्यक है .—

(i) कृषि वस्तुओ के कीमत-स्तर पर होने वाले परिवर्तनो की समस्त कृषि पैदावार और खाद्य सामग्री की माँग पर क्या प्रतिक्रिया होती है ?

(ii) एक कृषि उत्पाद की कीमत अन्य उत्पादो से सापेक्ष रूप मे बदलती है तो उसकी माँग और पैदावार किस प्रकार परिवर्तित होती है ?

कृषि-उत्पादो की कीमतो के परिवर्तनो के अल्पकालीन और दीर्घकालीन प्रभावों का विश्लेषण करने के पूर्व पूर्ति की वक्र रेखा के बारे मे विचार करना आवश्यक है।

सैद्धान्तिक रूप से दीर्घकाल मे प्रत्येक व्यक्ति, को अपनी आवश्यकता और पूर्ववर्ती परिवर्तनो के अनुसार अपने यत्रो को बदलने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। परन्तु कृषि-उत्पादको और उद्योगपतियो की आर्थिक क्रियाओ मे अन्तर होता है। उद्योग मे सन्तुलन (Equilibrium) की स्थिति म पूर्ण प्रतिस्पर्धा (Perfact Competition) की स्थिति के गुणो की कल्पना की जाती है। उत्पादन की एक ही श्रेणी के साधन जैसे भूमि, श्रम, पूँजी और प्रबन्ध इत्यादि की सीमान्त इकाइयो को मिलने वाला प्रतिफल सब व्यवसायो मे एक समान होता है। इसलिए प्रत्येक सीमान्त सस्थान मे प्रत्येक उत्पाद की कीमत, उनके उत्पादन की औसत लागतो (Average cost) के बराबर होती है। इन औसत लागतो मे उत्पादन के लिए आवश्यक साधनों की वर्तमान कीमतें, कृषक की भूमि का लगान, उसकी पूँजी का ब्याज और उसके परिवार के सदस्यो द्वारा किये गये श्रम की सामान्य दर से आय सम्मिलित रहती है। औद्योगिक उत्पादो की माँग की तुलना मे कृषि उत्पादो की सापेक्ष माँग अधिक होने से कृषि की सापेक्ष लाभदेयता (Relative Profitability) मे वृद्धि हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप भूमि, श्रम, पूँजी इत्यादि का उद्योग से कृषि की ओर विपथन (Diversion) होने लगता है। उत्पादन के साधनो का इस प्रकार प्रवाह समस्त व्यवसायो की लाभदेयता के बराबर होने तक होता रहता है। वैसे कृषि-उत्पादो की कीमत मे सापेक्ष रूप से कमी होने पर कृषि-उत्पादन मे कमी होने लगती है।

कृषि और उद्योग के प्रभावो या अनुक्रिया (Response) मे, दीर्घकाल मे भी अन्तर पाया जाता है। सबसे पहले कृषि-पैदावार की वृद्धि ह्रासमान प्रतिफल (Diminishing Returns) की वृत्ति को परिसचालित करती है और कृषि-उत्पादो की लागतें बढती हैं। इसके विपरीत औद्योगिक पैदावार की वृद्धि वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns) की वृत्ति को जन्म देती है और लागतें कम होती हैं। उद्योग की अपेक्षा कृषि-उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए गहन रूप मे खेती करना आवश्यक है। उत्पादन बढाने के लिए कम उपजाऊ और अल्प-सुलभ जमीन मे भी खेती करनी चाहिए। साधारणत: उद्योग द्वारा त्याग की गयी भूमि, फार्मिंग के योग्य भूमि नही होती है। वहाँ स्थानान्तरित श्रमिको का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार की भूमि मे ह्रास-

मान प्रतिफल (Law of Diminishing Returns) का नियम शीघ्र लागू हो जाता है। उद्योग मे बडे पैमाने के उत्पादन के द्वारा बहुत अधिक मात्रा मे मितव्ययनाएँ की जाती हैं और कृषि से उद्योग मे श्रमिको का स्थानान्तरण आसानी के साथ होने लगता है। लागत कम होने पर उत्पादन की मात्रा बढना बिल्कुल स्वाभाविक होता है। जब कृषि-उत्पादन मे इसके विपरीत उत्पादन की लागत बढती है तो औद्योगिक उत्पादन मे विस्तार होने लगता है और उत्पादन की लागत कम होने से औद्योगिक वस्तुओ की कीमत कम हो जाती है।

2. अल्पकालीन-पूर्ति-वक्ररेखाएँ (Short Period Supply Curves)

दीर्घकालीन विश्लेषण मे पैदावार और कीमतें काल्पनिक मानी गयी हैं। आर्थिक जीवन मे इनके बीच पूर्ण समजन नही पाया जाता है। पैदावार और कीमतो के बीच लाभदायक समंजन मे लगभग 2 पीढी लग जाती है। इतने अधिक समय तक कीमतें स्थिर नहीं रहती हैं। इसके विपरीत, अल्पकाल मे कुछ समजन सम्भव होते हैं। पूर्ति की वक्र रेखा का दीर्घ-कालीन स्थिति से विपथन हो जाता है। ऐसी स्थिति मे, कृषि और उद्योग के बीच पैदावार और कीमतो की परस्पर प्रतिक्रियाएँ तथा अन्तर के बारे मे अधिक स्पष्टता के साथ ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

कृषि के लिए कोई अल्पकालीन पूर्ति की वक्र नही होती है। कृषक अल्पकाल मे अपनी कुल उत्पाद को अपनी फसलो के अनुपात मे परिवर्तित करते हैं। वे इन फसलो को काट कर बेचते हैं। पशु-धन मे यह परिवर्तन पशुओ के वध के दर को बदल कर किया जाता है। कीमतो के कम होने पर फसलो को काटना लाभदायक नही होता है, उदाहरणाय—स्ट्राबेरी की फसल। परन्तु इन फसलो का भूमि मे नष्ट होने के लिए अधिक समय तक छोडा भी नही जा सकता है। भविष्य म कीमतो मे वृद्धि की आशा से नश्वर फसलो का सग्रह करक उनकी बिक्री को कुछ समय के लिए रोका जा सकता है। कृपक कुछ उत्पादों की पैदावार को अधिक गहनता के साथ पोपक तत्व या उर्वरक का उपयोग करके, दीघ काल मे अधिक मात्रा म पैदा करने मे सफल हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—दूध का उत्पादन, गायो को अधिक आहार देने पर तुरन्त कुछ भाग मे बढ जाता है।

फिर भी हम जिस अल्प काल का प्रमुख रूप से विवेचन करेंगे वह इन कालो से कही बडा है। इसी अल्प काल मे कृपक को अधिक फसलें उगाने

या अधिक पशुधन का प्रजनन करने का समय मिलता है और फलस्वरूप उत्पादन को बडी मात्रा मे परिवर्तित करना इसमे सम्भव होता है। इसी प्रकार, कृषि की पूर्ति को बदलने के लिए किये गये निर्णय और बाजार मे इस बदली हुई पैदावार के वास्तविक रूप मे प्रकट होने के बीच काफी समय व्यतीत होता है। इस समय का अत्यधिक महत्त्व होता है। उपजो के लिए यह विलम्ब बुआई के समय से 6 माह का होता है। अधिकाश देशो मे बुआई वर्ष के एक मौसम मे की जाती है। पशुधन के लिए उपर्युक्त विलम्ब अधिक समय का होता है। सुअर एक बहुप्रजननशील फार्म-पशु होता है। इसकी गर्भावधि (Geslation) अर्थात् समागम से लेकर बच्चे पैदा होने तक का समय, 4 माह का होता है। वध के लिए सुअर की आयु माँस हेतु 4 से 6 माह और शुष्क माँस हेतु 8 माह होती है। अन्य पशुओ के लिए गर्भावधि का समय आठ माह का होता है। मोटे-ताजे पशुओ का वध, दो वर्ष की आयु होने के पूर्व नही किया जाता है क्योकि औसत पशु दो या ढाई वर्ष की आयु होने के पूर्व दूध देना और बच्चे पैदा करना प्रारम्भ नही करते हैं।

कृषि के अतिरिक्त, उद्योग मे भी उपर्युक्त समयान्तराल पाया जाता है। जब किसी कारखाने का प्रबन्धक उत्पादन की मात्रा बढाने का निर्णय लेता है तो अधिक मात्रा मे वस्तुओ के निर्माण मे कुछ अधिक समय व्यतीत होता है। यह विलम्ब उद्योग की तुलना मे कृषि मे अधिक होता है। दीर्घ काल मे यह विलम्ब अप्रत्यक्ष परिवर्तनो के द्वारा विलीन हो जाता है। उदाहरणार्थ—मध्यम लम्बाई की अवधि मे प्रजनन वाले पशु और वृक्षो के द्वारा उपयोग किये जाने वाले अधिकाश पूँजीगत उपकरणो या यन्त्रो की वृद्धि करना सम्भव होता है। कृषि मे उत्पादन की वृद्धि का विलम्ब कभी-कभी औद्योगिक उपकरणो के विस्तार के लिए आवश्यक से अधिक होता है क्योकि पशुओ को प्रजनन के पूर्व परिपक्व होना आवश्यक होता है। यह अवधि सुअर के लिए 6 माह, और घोडी तथा गाय के लिए लगभग 2 वर्ष की होती है। वृक्ष, रोपण के पश्चात् कुछ वर्षों तक फल देने लायक नही होते हैं। सेव का वृक्ष 5 वर्ष मे फल उत्पन्न करता है। यह समय जितना अधिक होता है, पूर्ति के परिवर्तन करने की सम्भावना उतनी ही अधिक रहती है। हम अति-अल्पकाल, अल्पकाल और मध्यम काल मे प्रमुख और उपरि लागत (overhead costs) के बीच अन्तर करते समय पूर्ति के परिवर्तनो से होने वाले लाभो पर विचार करेंगे। इस सन्दर्भ मे हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि कृषि और

उद्योग मे अल्पकालीन उत्पादन तथा कीमत के बीच प्रतिक्रियाओ की सवेदनशीलता सम्बन्धी अन्तर पर विशेष ध्यान दिया जाना है।

3 अल्पकाल मे नियन्त्रण की कठिनाइयाँ
(Difficulties of Control in the short period)

कुछ कृषक बाजार के लिए नही, बल्कि अपने स्वय के उपभोग के लिए उत्पादन करते हैं। ऐसे कृषको पर कीमत के परिवर्तनो का कोई प्रभाव नही पडता है। जब ये कृषक बाजार के लिए उत्पादन करते हैं तो इनकी प्रतिक्रियाएँ उद्योगपतियो की प्रतिक्रियाओ से, निम्नलिखित ढग से भिन्न होती हैं :—

(1) कीमत का परिवर्तन कृषक द्वारा उत्पन्न की जाने वाली पैदावार को प्रभावित करता है। कृषि एक जैविक विधि होने से कृषक अपनी इच्छा के अनुसार, उत्पादन को शीघ्र ही कम या अधिक नही कर सकता है। इसके विपरीत उद्योग एक यान्त्रिक विधि है। यहाँ उद्यमी, कीमत के परिवर्तन होने से अपनी इच्छा के अनुसार उत्पादन कम या अधिक कर लेता है। कृषक पैदावार बढाने के लिए अनुकूल मौसम मे, अधिक क्षेत्रफल मे, फसल लगाता है। वह पशु-उत्पादो की वृद्धि के लिए अधिक सख्या मे पशुओ का समागम कराता है। परन्तु कृषक यह नही बतला सकता कि एक एकड मे कितनी फसल होगी। या कितनी सख्या मे पशुओ के बच्चे पैदा होंगे ? या कितने बच्चे जीवित रहेंगे ? गरम जलवायु वाले देशो मे पशु-उत्पादो के अनुमान-सम्बन्धी त्रुटि की सीमा अधिक नही होती है। सेण्ट्रल आस्ट्रेलिया जैसे क्षेत्रो मे पशुओ की मृत्यु बहुत अधिक सख्या मे होती है क्योकि वहाँ थोडे से मध्यान्तर पर अत्यधिक सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उपजो और पशुओ के लिए इस प्रकार की स्थिति हमेशा विचारणीय होती है। कृषक कई उपजो के कुल उत्पाद के प्रति एकड उत्पादन मे होने वाले अत्यधिक परिवर्तनो को नियन्त्रित नही कर सकता है। वैसे उत्पादन पर कृषक का नियन्त्रण, कृषि के क्षेत्रफल को परिवर्तित करने मे हो जाता है। उदाहरणार्थ—ग्रेट ब्रिटेन म युद्ध के लगभग 10 वर्ष पूर्व आलू का क्षेत्रफल एक वर्ष से दूसरे वर्ष मे 6 % मे अधिक और उत्पादन प्रति एकड 9 % कम या अधिक परिवर्तित नही हुआ था। कुल उत्पादन मे 13 % परिवर्तन हुआ था। यह कुल उत्पादन, क्षेत्रफल के परिवर्तन मे कम और उत्पादन की वृद्धि पर अधिक निर्भर था। ग्रेट ब्रिटेन जैसे गरम जलवायु मे आलू का उदाहरण अतिशियोक्तिपूर्ण है। अत्यधिक

सूखाग्रस्त या ठंडे देशो मे उत्पादन अधिक परिवर्तित होता है। उदाहरणार्थ—कनाडा के एक उच्च-सम भूमि वाले प्रदेश सस्केचवान (Saskatchewan) म सन् 1928-37 तक गेहूँ की वार्षिक उपज औसतन 33 % परिवर्तित हुई थी। सन 1937 मे सूखाग्रस्त वर्ष में पूर्व वर्ष की उपज का $\frac{1}{5}$ से अधिक उत्पादन नही हुआ था। सन् 1928 में सबसे अधिक उपज हुई थी। उक्त वर्ष में उपज उपर्युक्त उपज के $\frac{1}{8}$ भाग से अधिक मात्रा मे परिवर्तित नही हुई थी।

(ii) साधारणत कृषक उद्योगपतियो की तुलना में कीमत के परिवर्तनो पर कम ध्यान देते हैं। अधिकाश आर्थिक विश्लेषण के अध्ययन मे यह मान्यता स्वीकार की जाती है कि कृषक या उद्योगपति सबसे अधिक लाभ देने वाली रीति का अनुसरण करते हैं। वह जिन परिस्थितियो के अन्तर्गत उत्पादन करता है और उत्पादो को बेचता है, उनके बारे मे नये किस्म से विचार करता है। वह इन परिस्थितियो के बदलने पर उत्पादो और रीतियों के बारे मे नये प्रकार से निश्चय करता है। यह मान्यता बड़े पैमाने के उद्योग मे भी स्वीकार की जाती है क्योकि उद्यमी, उद्योग के प्रबन्ध मे विशेषज्ञ होता है। उसे लागत लेखा-गणको (Cost-accountants) की सेवाएँ उपलब्ध रहती हैं। परन्तु यह रीति छोटे पैमाने के उद्योग में उपयोगी नही होती है। अपितु केवल एक आदर्श के रूप मे प्रयोग की जाती है। ऐसी स्थिति फार्मिंग मे अधिकतर पायी जाती है, क्योकि फार्म के सगठन मे बहुत से उत्पादो का सयोग होता है और मौसम सबसे अधिक भूमिका निभाता है। लाभ की मात्रा अधिक-से-अधिक करने के लिए बदलती हुई परिस्थितियो मे इतनी अधिक गणनाओ या परिकलनो (Calculations) की आवश्यकता होती है कि सबसे कुशाग्र बुद्धि वाले प्रबन्धक से भी इन समस्त गणनाओ को करने की आशा नही की जा सकती है। इसके अतिरिक्त उद्योग की अपेक्षा कृषि मे बहुत अधिक माना मे आय की गुजाइश नही होती है। कृषि के प्रबन्धको की बुद्धि का औसत स्तर भी कम होता है। इन कारणो से उद्योग की अपेक्षा, कृषि मे उत्पादन मे रूढ़िवादी रीतियो का ज्यादा महत्त्व होता है। वास्तव मे, सबसे अधिक योग्य कृपक अपनी पैदावार को सबसे अधिक लाभदायक बनाने की चेष्टा करते हैं, परन्तु ऐसे कृपक कम सख्या मे पाये जाते हैं।

कीमतो के परिवर्तन और कृषि-पैदावार के बीच होने वाली प्रतिक्रिया के कारण कृषक को, उद्योगपति से अधिक रूढ़िवादी कहना अनुचित है। ऐसे विचार से आर्थिक चिन्तन मे गम्भीर दोष उत्पन्न हो जाता है। कृषि और

उद्योग म कीमत के परिवर्तन-सम्बन्धी अन्तर के कई आर्थिक कारण हैं। जब कोई कृषक अपनी आय को अधिकतम करने के लिए उत्पादन की नयी रीतियों को अपनाता है, तब उसे रूढ़िवादिता के स्थान पर अपनी कुशाग्र बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है। इसके बावजूद, कृषक की परिलक्षित कृषि पैदावार मे कीमतो की प्रतिक्रिया उद्योग की पैदावार मे होने वाली प्रतिक्रिया से भिन्न होती है। इसका कारण रूढ़िवादिता कदापि नही है।

4 मूल (प्राथमिक) और उपरि लागतें
(Prime and Overhead Costs)

कृषि मे प्राथमिक और उपरि लागतो के बीच पाये जाने वाले अन्तर का कारण उत्पादन का कम अनुपात (Low ratio) है, दीर्घकाल मे, सीमान्त फार्म (Marginal farm) मे कीमत को औसत लागत (Average cost) के बराबर होना चाहिए। कृषक या उद्योगपति, अपनी कुल लागत का प्रयोग न कर सकने की स्थिति मे, अपनी इच्छा से उत्पादन के साधनो की कुछ मात्रा का त्याग करते हैं। कभी-कभी वे अपना व्यवसाय भी बदल लेते है। यह परिवर्तन अल्पकाल मे सम्भव नही होता है। उत्पादन की कुछ लागतो का व्यय भूतकाल मे या कुछ का व्यय वर्तमान में करना जरूरी होता है, परन्तु कृषक दिवालिया होने की स्थिति मे ऐसा नही करता है। सामान्यत कृषक वर्तमान पैदावार के सम्बन्ध मे निर्णय लेते समय कुछ उत्पादो का उत्पादन बन्द करने और कुछ को परिवर्तित करने के बारे मे विचार करता है। ऐसे अवसरो पर कृषक उपरि लागतो का रूपान्तरण या पूर्ण उपेक्षा नही कर पाता है। कृषक की पैदावार को परिवर्तित करने वाली लागत, मूल या प्राथमिक लागत (Prime costs) कहलाती है। प्राथमिक लागत, उत्पन्न की जाने वाली पैदावार पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर होती है। कृषक द्वारा पैदावार की मात्रा कम करने पर प्राथमिक लागत कम हो जाती है। यदि किसी विशेष उपज का उत्पादन बन्द करना पड़े तो उसकी प्राथमिक लागत शून्य हो जाती है अर्थात् प्राथमिक लागत की पूर्ण रूप से उपेक्षा की जा सकती है।

मूल लागत और उपरि लागत के बीच का विभाजन उपयोग मे आने वाले समय की अवधि पर निर्भर होता है। अल्पकाल मे इन लागतो की उपेक्षा कई प्रकार से की जा सकती है। उदाहरणार्थ—

(1) उत्पाद को बाजार मे बेचने के लिए आवश्यक खर्च मे कमी करना,

(ii) उत्पादों को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने का यातायात खर्च कम करना,

(iii) मध्यस्थ का कमीशन कम करना, और

(iv) उपज की कटाई के लिए अनियत श्रमिकों की सख्या में कमी करके कुल *पारिश्रमिक को कम करना इत्यादि। इसलिए ये लागतें केवल* मूल लागतें होती है। इसके अतिरिक्त अन्य लागतो का भुगतान या तो कर दिया जाता है या फिर भविष्य मे करना पडता है। इन लागतो पर पैदावार की मात्रा का कोई प्रभाव नही पडता है। इसलिए इन्हें उपरि लागतें (Overhead costs) कहते हैं।

सामान्य अल्पकाल मे अधिकाश मजदूरो को हटाया जा सकता है। पशुओ को तन्दुरुस्त बनाने के लिए, खरीदे जाने वाले आहार की मात्रा कम की जा सकती है। उर्वरकों की मात्रा और शक्ति से चलने वाली मशीनो के ईंधन की मात्रा मे कटौती की जा सकती है। व्यय की उपर्युक्त मदें, मूल लागत के महत्वपूर्ण भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं। साधारणत इन मदो का प्रयोग उपज उत्पन्न करने या पशुओ का झुण्ड बेचने मे किया जाता है। ये मदें उत्पादन की मात्रा पर निर्भर होती है। उत्पादन की मात्रा कम करके इन्हे कम किया जा सकता है।

मध्यम काल मे कुछ मदो का गुण बदल जाता है। वे अल्पकाल की भाँति स्वतन्त्र न होकर, पैदावार की मात्रा मे कमी के अनुसार कम की जा सकती हैं। ऐसी मदो को मूल लागत मे सम्मिलित कर लिया जाता है। इन लागतो का उपयोग निम्नलिखित कार्यों मे किया जाता है—

(i) प्रजनन करने वाले पशुओ को खरीदना (ii) पशुओ के पालन-पोषण *मे खर्च करना, (iii) श्रमिको को मजदूरी देना, (iv) खाद्य-सामग्री खरीदना,* और (vi) मशीनो का व्यय करना। इन लागतो के अतिरिक्त शेष लागतें, दीर्घकाल को छोड कर, सभी समयो मे उपरि लागतें होती हैं। ये ऐसे खर्च होते हैं, जिन्हें कृषक अपनी भूमि मे नाली बनाने, बाडी लगाने, और फार्म की इमारतें तैयार करने के लिए व्यय करता है।

कृषक और उसके परिवार की आय आशा के अनुकूल ही होनी है। उद्योगो की आय और इस आय मे एक महत्वपूर्ण अन्तर रहता है। फार्मिंग को ठीक तरह से चलाने के लिए, फार्म मे कृषक का मौजद होना अनिवार्य होता है। कृषक की आय, दीर्घकाल को छोड कर, शेष अवधि के लिए उपरि लागत जैसी

होती है। कृषक के परिवार के सदस्यों को अन्यत्र कार्य मिलने पर, और दीर्घकाल म वैकल्पिक व्यवसाय करने से य लागतें मूल लागतें हो जाती है। वैसे कृषक के परिवार की आय का आधार अल्पकाल म भी पूर्ण रूप स उपरि लागतों जैसा नही रहता है, क्योंकि कृषक अपना और अपने परिवार के सदस्यों के श्रम का त्याग करके अपने खर्च को कम नही कर सकता है। कृषक अपने परिवार के सदस्यों के कार्यों को बदल कर पैदावार की मात्रा मे कमी या वृद्धि कर सकता है।

लागत का एक विशेष प्रकार का मद है, जिसका विवेचन महत्त्वपूर्ण है। जब कोई कृषक अपनी जमीन मे खेती करने का काम बन्द कर देता है तो वहाँ कई प्रकार की जड़ें और झाड़ियाँ उग आती हैं। कुछ समय उपरान्त यदि कृषक पुन उस जमीन मे खेती करने की इच्छा करता है तो जड़ें और झाड़ियो को साफ करने के लिए अतिरिक्त लागत की आवश्यकता होती है। इस व्यय से जुड़ा हुआ महत्व, भविष्य मे प्राप्त होने वाले लाभ की आशा पर निर्भर रहता है। भविष्य म उपजो के लिए अधिक कीमत प्राप्त करने की आशा होने से कृषक अपनी मूल लागत मे कटौती करके पैसा बचाता है तथा इस पैसे का प्रयोग गैर कृषि योग्य भूमि को कृषि योग्य भूमि बनाने मे करता है। इस सन्दर्भ मे कृषि कार्य उद्योग से बहुत भिन्न है। उद्योग मे मशीनो से काम लेने पर घिसती हैं। अत उद्योगपति पूँजी की घिसावट के मूल्य को मूल लागत मे से घटाता नही है, बल्कि उसमे जोड़ता है।

लागत के विभिन्न मदो के इस सापेक्ष महत्व का मूल्यांकन करना कठिन होता है क्योंकि ये मदें, एक स्थान से दूसरे स्थान मे और एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय मे बहुत ज्यादा अन्तर रखती हैं। सामान्यत ऐसा कहा जाता है कि उपक्रम जितना बड़ा और विशिष्टीकृत होता है, मूल लागत को उतना ही अधिक महत्व प्राप्त होता है। छोटे फर्मों की तुलना म बड़े फम अधिक श्रमिकों को काम मे लगाते हैं, क्योंकि छोटे फर्मों मे मालिक स्वयं अधिक काम करता है। उन फर्मों की तुलना मे, जो किसी उत्पाद की प्रत्येक अवस्था का निर्माण करती हैं, विशिष्टीकृत फर्में कच्चा माल अधिक कीमत पर खरीदती हैं। इससे मूल लागत का बढ़ना स्वाभाविक होता है। फार्मिंग एक छोटे पैमाने का उपक्रम माना जाता है। इसमे श्रमिक उद्योग की अपेक्षा कम सख्या मे काम करते हैं। चूंकि उद्योग की एक फर्म सभी अवस्थाओं का कार्य करती है, अत उनके लिए मूल लागतें बहुत महत्त्वपूर्ण नही होती हैं। फार्मिंग म

श्रमिको को अधिक सख्या मे काम मे लगाने, अधिक मात्रा मे आहार, सामग्री और खाद खरीदने मे, अधिक कम करने पर मूल लागतो का महत्त्व बढ जाता है। उपर्युक्त दोनो कारणो से, अन्य देशो की अपेक्षा आग्ल-कृषि मे मूल लागतें अधिक होती हैं। आग्ल-कृषि मे, कृषको की तुलना मे फार्म के कार्य-कर्त्ताओ का अनुपात अधिक रहता है। पशुपालन करने वाले कृषक, पशुओ को दिये जाने वाले आहार की बहुत कम मात्रा खरीदतें हैं और शेष मात्रा को स्वय उत्पन्न करते हैं।

इसके पश्चात् मूल लागतो और उपरि लागतो के सापेक्षिक महत्त्व की परिमाणात्मक गणना करने का प्रयत्न किया जायेगा। (i) इग्लैण्ड और वेल्स की डेयरी फार्मिंग मे युद्ध के पूर्व, काम मे लगाये गये श्रमिको पर किया जाने वाला खर्च औसत लागतो का लगभग 14% था। खाद्य सामग्री पर किया गया खर्च 24% था। इसके अतिरिक्त अल्पकालीन मूल लागत के कुछ थोडे से अन्य मद भी होते हैं। इन समस्त मदो पर किया गया खर्च निश्चित रूप से कुल लागतो के आधे से भी कम था। (ii) मिचिगन की डेयरी फार्मिग मे श्रमिको पर किया गया खर्च कुल व्यय का केवल 6% था। खाद और बीज पर किया गया खर्च लगभग 20% था। अन्य वर्तमान लागतो पर किया गया व्यय भी लगभग 20% था। इस प्रकार, इन लागतों पर कुल व्यय समस्त व्यय के आधे से कम था। इसके विपरीत मुर्गीपालन और सुअर-पालन ऐसे उद्योग हैं, जिनमे मूलत एक सम्पूर्ण प्रक्रम (Process) होता है। इग्लैण्ड मे पशुओ का आहार अधिकतर खरीदा जाता है। सुअर-उत्पादन की कुल लागत का 70% भाग सुअर का आहार खरीदने मे व्यय होता है। चूंकि कृषि-क्षेत्रो मे प्राय: सभी श्रमिक पारिवारिक होते हैं, और फार्म एक दूसरे से लगे हुए या समाकलित रहते हैं, इसलिए कृषि-फार्मों की मूल लागतें, कुल लागत के आधे से कम होती हैं। ये मूल लागते कभी कभी कुल लागत के $\frac{1}{4}$ भाग से भी कम होती हैं। उद्योग के उदाहरण मे स्थिति बिलकुल विपरीत है। *ग्रेट ब्रिटेन मे कुल औद्योगिक पैदावार के मूल्य का 60% भाग कच्चे* सामान को खरीदने के लिए और 20% भाग मजदूरी के भुगतान के लिए उपयोग किया जाता है। इस प्रकार, मूल लागत की कुल मात्रा 80% होती है और उपरि *लागत केवल 20% रहती है। इसके अतिरिक्त कोयला या* तांबा-खनन जैसे उद्योगो मे कच्चे माल की लागत बहुत कम होती है। परन्तु इन उद्योगो मे श्रमिको को अधिक सख्या मे काम पर लगाये जाने से मूल

लागत बढ़ जाती है। कृषि में मूल लागत पारिवारिक श्रमिकों के कारण कम और कच्चे माल की खरीद के कारण अधिक होती है।

मूल और कुल लागतों के अनुपात में परिवर्तन करने से, निम्नलिखित दो प्रकार से, कृषि उत्पादन को प्रभावित किया जा सकता है—

(i) मूल और कुल लागत-सम्बन्धी परिवर्तन, ऐसे कृषकों की संख्या को बदल देते हैं, जो कृषि-उपजों की कीमतें कम होने में कृषि का कार्य छोड़ कर अन्य कार्य करने की इच्छा रखते हैं।

(ii) मूल और कुल लागत के अनुपात के परिवर्तन से कृषक द्वारा की जाने वाली कुल पैदावार की मात्रा निर्धारित होती है। कोई भी उद्यमी, चाहे वह उद्योगपति हो या कृषक, कीमतों के गिरने से अपने व्यवसाय में उस समय तक रहता है, जब तक कुल प्रतिफल की मात्रा मूल लागतों से इतनी मात्रा में अधिक होता है, जितनी मात्रा का धन वह उद्यमी अपने स्वयं के श्रम और अपने स्वत के उपकरणों की सहायता से अन्य कार्य को करके अर्जित कर सकता है। प्रत्येक स्थिति में, प्राप्त होने वाले प्रतिफल की मात्रा वस्तुओं को उत्पन्न करने पर किये गये व्यय से अधिक होनी आवश्यक है। वैसे कीमतों में गिरावट, समस्त कृषि-उत्पादों को प्रभावित करती है। अभी इसी स्थिति के बारे में विचार किया जा रहा है। कृषकों के कृषि-उपकरणों का कृषि के बाहर कोई विशेष उपयोग नहीं होने से कृषि में वैकल्पिक व्यवसाय के अवसर कम होते हैं। अल्पकाल में कुछ मात्रा की भूमि और भूमि पर किये गये कुछ सुधार शामिल कर लिये जाते हैं। जैसे—(i) नालों का निर्माण, (ii) फार्म गृह का निर्माण, (iii) फेंसिंग, (iv) खाद डालना, (v) फार्म की कुछ अन्य इमारतों का निर्माण, (vi) कृषि मशीनें खरीदना, और (vii) पशुओं को खरीदना इत्यादि। इन कार्यों में से कोई भी कार्य, कृषि के अतिरिक्त, और कहीं भी उपयोगी नहीं होता है। इसके सिवाय कृषक और उसके परिवार के सदस्य कृषि के अनुभव के कारण कृषि कार्य में प्रशिक्षित हो जाते हैं। उनकी इस निपुणता का भी अन्य कार्यों में कोई उपयोग नहीं हो सकता है। कीमतों की गिरावट, कृषि के साथ-साथ सामान्य औद्योगिक मन्दी से भी सम्बन्धित रहती है। ऐसी दशा में कृषक और उसके परिवार के सदस्यों को अन्य कार्य मिलना मुश्किल हो जाता है। कृषक को यदि कोई कार्य मिल जाता है, तो भी वह मूल लागत से अधिक मात्रा में प्रतिफल मिलने वाले कार्यों को करना पसन्द करता है। कृषकों द्वारा अपने फार्मों का त्याग करने

की सम्भावना बहुत कम होती है, क्योकि इसके लिए कीमतो मे अधिक गिरावट होनी आवश्यक है। अल्पकाल की अवधि मे मूल लागतो मे बहुत कम मदें सम्मिलित होने से वे अधिक न बदल कर, कुल लागतो का एक हिस्सा मात्र रहती हैं।

अन्य वस्तुओ की अपेक्षा कृषि-उपजो की कीमतो मे वृद्धि होने से, कृषको की सख्या बढनी स्वाभाविक है, परन्तु कृषको की सख्या अधिक नही हो पाती है। इसमे कई प्रकार के अवरोध होते हैं। एक व्यक्ति, कुछ भूमि और आवश्यक मात्रा की पूंजी एकत्रित करके कृषक बन सकता है, परन्तु वह कृषि-सम्बन्धी अपनी कई आवश्यकताओ को पूरा करने मे सफल नही हो पाता है। जैसे, एक नये कृषक को सरलता के साथ पैसा उधार नही मिलता है। कृषि मे लाभदायक भूमि के बाद की भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए कठोर श्रम व योग्यता की आवश्यकता होती है, जिनका नये व्यक्ति मे अभाव होता है। इसके विपरीत कृषि की अपेक्षा उद्योग मे कम भूमि की आवश्यकता होने से, नये उद्योग की स्थापना मे कृषि की भूमि को परिवर्तित करना सरल होता है। इस प्रकार, *कीमत की वृद्धि और कीमत की कमी,* दोनो स्थितियो मे कृषक प्रभावित होता है, परन्तु कृषको की सख्या बढनी कठिन होती है। यह उसकी धीमी गति बहुत धीमी होती है।

कृषको के द्वारा किये गये उत्पादन की वर्तमान मात्रा को परिवर्तित करने से कृषि-उत्पाद की पूर्ति तेजी के साथ बदलती है। कृषको के लिए, कृषि-सम्बन्धी निर्णय लेने मे उपरि लागत अधिक आवश्यक नही होती है। साधारणतः कृषक उत्पादन की मात्रा, मूल लागत और अपने तथा अपने परिवार के सदस्यो के द्वारा किये जाने वाले श्रम की मात्रा के बारे में विचार करते हैं। वस्तुओ की कीमत गिरने पर, उद्यमी उत्पादन के साधनो की ऐसी सीमान्त इकाइयो का परित्याग कर देता है, जिनका उत्पादन सबसे कम होता है। इस स्थिति मे मूल साधन नही खरीदे जाते हैं। इन साधनो को कोई भी व्यक्ति किराये पर नही लेता है, क्योकि ये कुल-पैदावार मे योगदान देने वाली उत्पाद की सीमान्त इकाई से अधिक मँहगे होते हैं। कृषि के खाद्य-सामग्री और खादो पर आश्रित होने के कारण, इन साधनो को, ऐसी स्थिति मे कम मात्रा मे खरीदा जाता है अर्थात् इनका कम मात्रा मे उपयोग होता है। कृषक कृषि-उपजो का उत्पादन *कम गहनता* के साथ करता है। कृषि-उत्पादन के लिए *श्रमिको को अधिक* सख्या मे लगाने के बाद भी उत्पादन की मात्रा अनिश्चित रहती है। साधारणत एक श्रमिक फार्म के समस्त श्रमिको का $\frac{1}{3}$ या $\frac{1}{2}$ प्रतिनिधित्व करता है।

उत्पादन की कमी के लिए कीमतो के परिवर्तन की अपेक्षा श्रमिको को सेवाओ से निष्कासित करने से होने वाले प्रतिफल अधिक घातक होते हैं।

फार्मिग की कुल लागतो के एक अश मात्र का प्रतिनिधित्व मूल लागतो द्वारा होता है। उत्पादन की कमी से कृषक की बचत-क्षमता कम हो जाती है। परन्तु उसमे अधिक सकुचन नही होता है। इस प्रकार की स्थिति फार्मिग मे गहन खेती की कमी के कारण, मूल लागतो मे तेजी से प्रति इकाई घटने से उत्पादन होती है। इसके परिणामस्वरूप बचत के विकास की गति कम हो जाती है। मूल लागतो का महत्व दीर्घकाल मे बढ जाता है, क्योकि कीमतो की गिरावट के कारण उत्पादन कम होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

कीमतो के बढने से, मूल साधनो के अधिक मात्रा मे उपयोग के कारण उत्पादन मे विस्तार होता है। कृषि मे श्रम, खाद्य सामग्री या उर्वरक अधिक गहनता के साथ उपयोग मे लाने से उत्पादन का विस्तार बढ जाता है। कृषक के लिए लागतें स्थिर रहने पर उत्पादन को अपनी क्षमता के अनुसार बढ़ाना लाभप्रद नही होता है, क्योकि ह्रासमान प्रतिफल (Law of Diminishing Returns) लागू हो जाता है।

उद्योग मे स्थिति भिन्न होती है। वहाँ उद्यमी, लागतो की उत्पादन की मात्रा कम करके घटा सकते हैं। इसके लिए श्रमिको को कम सख्या मे कम पारिश्रमिक की दर पर लगाया जाता है और कच्चे माल की कम मात्रा मे खरीदा जाता है। चूंकि उत्पादन की मात्रा, अल्पकाल में किराये पर लिये गये मूल साधनो की मात्रा पर निर्भर होती है, इसलिए समस्त पैदावार मे उद्यमी के कार्यों का बहुत कम प्रभाव पडता है।

5 उत्पादन मे कृषक का हिस्सा (The Farmer's Share in Out put)

फार्मिग मे कृषक और उसके परिवार के सदस्यो के द्वारा किया गया कार्य बहुत महत्वपूर्ण होता है। कृषक-फार्मिग का प्रचलन चीन मे अधिक है। इस पद्धति मे कुल उत्पादन, कृषक और उसके परिवार के सदस्यो द्वारा किये गय श्रम की मात्रा म परिवतन स प्रभावित होता है। कृषक के श्रम की सीमा होती है। वह इतनी मात्रा मे श्रम करता है कि प्राप्त होने वाली आय की सीमान्त इकाई से मिलने वाला सन्तोष, किय गये प्रयत्नो की सीमान्त मात्रा की सम्पूर्ति करे। कृषक द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओ की कीमत कम हो जाने से उसकी आय की सीमान्त इकाई की मात्रा कम हो जाती है और परिणाम-

स्वरूप कृषक की कुल आय घट जाती है। इससे कृषक को अपने उपयोग मे कटौती करना आवश्यक हो जाता है। कृषक अपनी आय की अन्तिम इकाई की सीमान्त उपयोगिता बढाने का प्रयत्न करता है। कृषक की आवश्यकताओ के बढने से खर्च की मात्रा पहले की अपेक्षा अधिक हो जाती है, इसलिए वह अधिक आय प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम करने को तैयार हो जाता है। यह भी सम्भव है कि कृषक अपनी अधिक मात्रा की अत्यन्त आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने के लिए सीमान्त आय कम होने पर भी कठिन श्रम करे। वह भविष्य मे अपनी कुल आय को घटने से रोकने का प्रयत्न करता है।

एक परिवारिक फार्म, कीमत के गिरने पर पहले की अपेक्षा अधिक उत्पादन करता है, जिससे कुल आय मे कमी न आ सके। जितना अधिक गरीब परिवार होता है, वह अपनी आय को गिरने से रोकने के लिए कठिन परिश्रम करता है। प्रारम्भ मे गरीब होने के कारण इस परिवार को अधिक समय तक कार्य करना स्वाभाविक होता है। परन्तु अब इससे भी अधिक कार्य करने के लिए उसके काम के घण्टे बढ जाते हैं। काम के घण्टो की वृद्धि से थकावट आती है, जो कष्टप्रद होती है। उपर्युक्त दोनो प्रवृत्तियो मे विरोध होने के कारण यह कहना कठिन हो जाता है कि एक धनिक या गरीब कृषक परिवार कीमतो के कम होने पर वास्तव मे कुल पैदावार को बढायेगा या नही बढायेगा।

इसी प्रकार, कृषक परिवार कीमतो के बढने पर पहले की अपेक्षा कम प्रयत्न करके उत्पादन की कम मात्रा स उतनी ही मात्रा की आय प्राप्त कर सकते हैं। *उन्हे अधिक परिश्रम करने की अर्थात् कुल पैदावार मे वृद्धि करने* की आवश्यकता नही होती है।

6 लागतो की प्रतिक्रिया (Reaction on Costs)

कीमतो के गिरने पर, पारिवरिक फार्म मे उत्पादन की वृद्धि का कारण, आय मे होने वाला परिवर्तन है। उत्पादन की वृद्धि से कृषक परिवार की सीमान्त आय मे रूपान्तरण होना है और परिवार को विभिन्न अवधियो तक कार्य करने के लिए प्रेरणा मिलती है। कीमत मे होने वाली कमी उपर्युक्त लागतो को *गिराती हैं। जब लागतो की कमी, कीमत मे होने वाली कमी से* अधिक मात्रा मे होती है, तो उत्पादन मे विस्तार होता है। कीमतो की गिरा-वट का प्रभाव मूल साधनो को किराये पर लेने वाले फार्म के उत्पादन पर क्या

पड़ता है, इस पर विचार करने के लिए यह मान लिया गया है कि इन मूल साधनों की लागत अपरिवर्तित रहती है। थोड़े से मूल साधनों से युक्त पारिवारिक फार्म और मजदूरी पर लगाये श्रमिकों का उपयोग करने वाले फार्म में जो अन्तर पाया जाता है, वह भी उपर्युक्त मान्यता पर आधारित है। जब कीमतों म कमी से मूल लागतों मे होने वाली कमी की मात्रा और पारिवारिक श्रमिकों के द्वारा की गयी मूल लागतों में कमी की मात्रा बराबर होती है, तब दोनों प्रकार के फार्मों में कीमत की गिरावट से होने वाली प्रतिक्रियाओं मे कोई अन्तर नहीं पाया जाता है।

अधिकांश परिस्थितियों म यह मान लेना अधिक वितर्कपूर्ण होता है कि कृषक की सीमान्त आय प्राप्त करने की इच्छा मे समस्त कृषि-उत्पादों की कीमतों का परिवर्तन अधिक रूपान्तरण करता है। कीमतों क परिवर्तन द्वारा मूल लागतों में अधिक परिवर्तन होने पर उसस कृषकों की सीमान्त आय प्राप्त करन की इच्छा अधिक परिवर्तित होती है। कृषि उत्पादों की कीमतों मे गिरावट होन से मूल लागतें अप्रभावित नही रहती हैं। यदि कीमत की गिरावट को कृषि की माँग से उद्योग की माँग के स्थानान्तर का परिणाम मान लिया जाय और कृषि म उपयोग आने वाले साधनों को, कृषि और उद्योग के बीच विशिष्टीकृत की संज्ञा दी जाय, तो मूल लागतों मे महत्त्वपूर्ण मात्रा मे परिवर्तन नही हो सकता है। कृषि से निष्कासित साधनों का उपयोग उद्योग मे होने लगता है। जैसे कृषि का कुछ कच्चा माल उद्योग मे उपयोगी नहीं होता है, जैसे उर्वरक। मूल साधनों की माँग मे कमी होने के कारण इन साधनों की कीमत म अन्य उपयोगों मे, स्थानान्तरण के पूर्व कमी आ जाती है। उवरकों की कीमत की यह कमी कृषक के उत्पादन के मूल्य म हुई कमी के बराबर या अधिक हो सकती है। परन्तु मजदूरी के लिए ऐसा नही होता है।

कीमतों की कमी, कवल कृषि उत्पादों तक सीमित न होकर, समस्त वस्तुओं के लिए सामान्यरूप म होने स उत्पादन के किसी भी साधन को अन्यत्र कार्य-रत होना कठिन होता है। ऐसी स्थिति मे उत्पादन के साधनों की कीमतें निश्चित रूप से गिरती हैं। परन्तु कृषि-लागतें, मजदूरी की अस्थिरता के कारण, कृषि-कीमतों के समान नही गिरती हैं। सामान्य मजदूरी सामान्यत धन की उस मात्रा से अधिक रहती है, जो प्रत्येक श्रमिक व्यवसाय मे न रह कर बेरोजगारी वेतन या गरीब सहायता के रूप में पाता है। फार्मिंग म इस प्रकार की स्थिति विशेषकर पायी जाती है। उद्योग में मजदूर अपनी मजदूरी को कम होने स रोकने के लिए सगठित हो जाते हैं। उपर्युक्त दोनों कारणों से मन्दी के

समय लागतें घटती हैं, परन्तु कीमतों की अपेक्षा कम मात्रा में कम होती हैं।

मजदूरी के सम्बन्ध मे अध्ययन करते समय कृषि और उद्योग के बीच के अन्तर का अध्ययन महत्त्वपूर्ण होता है। मजदूरी, कृषि की अपेक्षा उद्योग मे कम गतिशील होती है। इसलिए मन्दी के दौरान कृषि की मूल लागतो की अपेक्षा उद्योग मे मूल लागतें अधिक गिरती हैं। यह वह कारण है जिससे कीमतें गिरने पर कृषि-पैदावार मे कमी होने लगती है, लेकिन यह कमी औद्योगिक क्षेत्र मे इस प्रकार की कमी से कम होती है।

अभी तक समस्त कृषि उत्पादो की कीमतो के परिवर्तन और समस्त कृषि-उत्पादन के बीच समजन या सहयोग के बारे मे विचार करने से यह ज्ञात होता है कि अल्पकाल मे भी कीमतो की गिरावट के कारण औद्योगिक वस्तुओ के कुल उत्पादन मे कमी आ जाती है, परन्तु कृषि मे ऐसा सदैव नही होता है। कृषि मे किराये के साधनो की मूल लागतें कुल लागत का छोटा-सा भाग होती हैं। मन्दी के समय, उद्योग की मूल लागतो की अपेक्षा ये लागतें तेजी के साथ घटती हैं। अधिकाश फार्मों मे कृषि-उत्पादन कृषक और उसके परिवार के सदस्यो द्वारा किये गये श्रम की मात्रा पर निर्भर होता है, जिसे कीमतो के गिरते समय बढाया जा सकता है। इस तरह, कृषि-उत्पादन कीमतो के परिवर्तनो के साथ समजन बनाये रखने के लिए अधिक क्रियाशील नही रहता है। उदाहरणार्थ—सन् 1929 से 1932 तक की विश्वव्यापी मन्दी के काल मे लीग ऑफ नेशन्स के द्वारा की गयी गणना के अनुसार विश्व के निर्माण सम्बन्धी उत्पादन मे 37% गिरावट हुई थी और गैर-कृषि प्राथमिक उत्पादन 31% गिरा था। परन्तु कृषि-उत्पादन केवल 1% कम हुआ था। इससे यह प्रमाणित होता है कि कीमतें अल्पकाल मे कृषि-उत्पादन को प्रभावित नही कर पाती हैं।

7. कृषि मे पूर्ति की पारियाँ

(Shifts of Supply within Agriculture)

कृषि-उत्पादो के उत्पादन पर कृषि-उत्पादो की कीमतो मे वृद्धि और पतन के प्रभावों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण होता है। किसी भी उत्पाद की कीमत मे वृद्धि या पतन उस उत्पाद के कुल उत्पादन को दीर्घकाल में अधिक या कम करता है। उत्पादो की कीमतो मे परिवर्तन की सीमा, उत्पादो के उत्पादन के

मान और लागतो मे होने वाले परिवर्तन की गति पर निर्भर होती है। साधारणत प्रत्येक वस्तु का उत्पादन अनुकूल परिस्थितियों के अतर्गत सर्वोत्तम स्थानो मे किया जाता है। परन्तु कृषि उत्पादन बढाने के लिए कृषक को जल वायु मृदा या बाजार से दूरी इत्यादि की दृष्टि से कम योग्य भूमि मे कृषि उत्पाद को पदा करने मे लाभ मिलता है। ऐसा अनुभव किया जाता है कि वतमान कृषि को विविधीकरण (Diversification) की पद्धति के लाभ कम मात्रा म मिलते हैं।[1] इसलिए कृषि के काय को अधिक गहनता के साथ करना अत्यत आवश्यक है। सामायत कृषि उत्पाद के उत्पादन मे वृद्धि से ऊँची लागतें उत्पन्न होती हैं परन्तु किसी एक कृषि उत्पाद के उत्पादन म एक विशेष प्रति शत वृद्धि होने पर उसकी लागतें तेजी के साथ नहीं बढती हैं। समस्त कृषि पैदावार की वृद्धि मे लागतें तेजी के साथ ऊँची होती हैं।

समस्त कृषि-वस्तुओ के कुल उत्पादन की अपेक्षा अल्पकाल मे व्यक्तिगत कृषि वस्तु का उत्पादन कीमत के साथ भिन्न प्रकार से अनुक्रिया करता है। इस अतर का कारण यह है कि अधिकाश कृषि उत्पाद एक साथ उत्पन्न किये जात हैं। साधारणत ये उत्पाद सयुक्त उत्पाद होते हैं। ये उत्पादें उत्पादन के साधनो की सम्मिश्र माँग का प्रतिनिधित्व करती हैं।[2] प्रारम्भिक स्थिति मे कृषको के निणयो को उत्पादन का उपयुक्त अतमिश्रण जटिल बना देता है। कृषक के लिए यह बतलाना अत्यत कठिन हो जाता है कि उसके द्वारा उत्पन्न की गयी उत्पादो म स किसी विशेष उत्पाद की सीमात लागत क्या है? उदाहरणाथ—

मान लीजिये गोमास की कीमत गिरती है। अब एक प्रश्न यह होता है कि क्या कृषक को उत्पादन बढाना चाहिए? दूसरे यदि वह एसा करता है तो क्या उसके पास अपने आलू के फाम म डालने के लिए आवश्यक मात्रा मे उव रक है या नहीं? ऐसा भी सम्भव हो सकता है कि इस काल म आलू की कीमत भी बढ जायें। कृषक को इन समस्त प्रश्नो पर विचार करना पडता है। इगलैण्ड मे युद्ध के पूव सुअरो की कीमत म 10% वृद्धि से सुअरो की सख्या म, 21 माह बाद लगभग 6% वृद्धि हुई थी। इसी तरह गेहू की कीमतो म वृद्धि से गेहू उत्पादन करने वाले क्षेत्रों म 1 वष बाद इस प्रकार के प्रभाव हुए थे।

1 अध्याय 3 देखिए।

2 अध्याय 2 उपशीपक 4 देखिए।

कृषि-उत्पादन कीमतो के परिवतनों के प्रति पूर्णरूप से सवेदनशील नहीं होता है। अल्पकाल मे विशेषकर ऐसी ही स्थिति रहती है। इसके विपरीत उद्योग मे उत्पादन के लिए भूमि, पूँजीगत उपकरण और कृषि के निपुण श्रम का बहुत कम महत्व होता है। इसलिए उद्योग मे कीमतो के परिवतन का उत्पादन पर शीघ्रता से असर पडता है। इसी तरह, व्यक्तिगत फार्म-उत्पाद की पैदावार कीमतो के प्रति इसलिए अधिक मात्रा मे सवेदनशील होती है, क्योकि इनके उत्पादन मे उपयोग आने वाले उत्पादन के साधनो का उपयोग अन्यत्र भी हो सकता है। मिश्रित फार्म मे ऐसी स्थिति स्पष्टत पायी जाती है। मिश्रित फार्मिग मे कृषक और उसके कुछ कार्यकर्ताओ को कई उत्पादें उत्पन्न करने का अनुभव रहता है। वे लोग उत्पन्न होने वाली उत्पादो के अनुपात मे बडी आसानी से हेर-फेर कर लेते हैं। मिश्रित फार्मिग मे, एक से अधिक उत्पादो के उत्पादन मे कई उपकरणो का उपयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ—

(1) गेहूँ के उत्पादन मे उपयोग की जाने वाली अधिकाश मशीनो का उपयोग कई प्रकार की दालो के उत्पादन मे किया जा सकता है। हेर-फर की पद्धति के अन्तर्गत ये दाले गेहूँ का स्थान ले सकती हैं।

(11) गौमास देने वाले पशुओ को रखने का सावधान थोडा अतिरिक्त खर्च करने पर डेयरी के उपयोग मे लिया जा सकता है।

इस सन्दर्भ मे ऐसा अनुभव होता है कि एक ही उपकरण का प्रयोग कई वस्तुओ के उत्पादन मे किया जा सकता है। ऐसी वस्तुओ की कीमतो के परिवतन की अपेक्षा कुछ अन्य वस्तुओ की कीमतो मे परिवतन के कारण वस्तुओं की पूर्ति मे अधिक परिवतन होता है। परन्तु दोनो प्रकार के उत्पादो की कीमतें एक साथ बदलने पर वस्तुओ की पूर्ति कम मात्रा मे परिवर्तित होती है। ग्रेट ब्रिटेन मे गेहूँ और बार्ली की कीमतो के परिवतन के अनुसार गेहूँ का उत्पादन करने वाले क्षेत्रफल मे परिवर्तन होता है। वैसे कृषि उपजो के क्षेत्रफल मे अन्य कई वैयक्तिक उत्पादो की कीमत मे परिवर्तन का प्रभाव पडता है और उनकी पूर्ति की मात्रा बदलती है।

कुछ फार्म उत्पादें इस प्रकार की होती हैं, जिन्हे किसी विशेष क्षेत्र मे ही उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरणार्थ—

(1) ब्राजील मे कॉफी, और (11) सयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणी प्रदेशो मे कपास। यह एकाधिकारी स्थिति है। इसमे वैयक्तिक कृषि-उत्पादो की पैदावार मे

उनकी कीमतों के परिवर्तन की अनुक्रिया विविधीकृत फार्मिंग वाले प्रदेश में कुल कृषि-पैदावार के द्वारा की जाने वाली अनुक्रिया के समान होती है। कृषक, एक विशिष्ट फार्म में, एक नयी उत्पाद को उत्पन्न करने की क्रिया को, उद्योग में जाने की अपनी इच्छा के अतिरिक्त बड़े चाव और सरलता के साथ सीखता है। इस फार्म के अधिकांश उपकरण एक उत्पाद में दूसरे उत्पाद के उत्पादन में काम आ जाते हैं। ऐसे फार्म में किसी विशिष्ट उत्पाद की कीमत में कमी होने पर कृषक फार्म की अन्य उत्पादों को उत्पन्न करने की चेष्टा करता है अर्थात उत्पादन का अन्य उत्पादों की ओर विपथन होता है।

इन उपायों के अतिरिक्त अन्य वैयक्तिक उत्पादें, अपनी कीमत में परिवर्तन होने से, औद्योगिक उत्पादों की कीमतों के परिवर्तन से होने वाली अनुक्रिया के समान कम या अधिक मात्रा में अनुक्रिया करती हैं। कृषि के पूँजीगत उपकरण एक उत्पाद के उत्पादन से दूसरे उत्पाद के उत्पादन के लिए औद्योगिक उपकरणों की अपेक्षा ज्यादा अनुकूल होते हैं। इस प्रकार के उपकरण कृषि की मूल लागतों के निचले स्तर के कारण उत्पन्न हुई अनुकूलनीयता की सम्पूर्ति करते हैं।

8 माँग वक्र (The Demand Curve)

कृषि उत्पादों की माँग वक्र को निर्धारित करने वाली आर्थिक परिस्थितियाँ, अन्य उत्पादों की माँग-वक्र को निर्धारित करने वाली परिस्थितियों से मूलतः भिन्न नहीं होती हैं। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य कृषि और उद्योग के अर्थशास्त्र के बीच अन्तर दर्शाना होने के कारण यहाँ माँग-वक्र के बारे में अधिक विचार करना उचित नहीं है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि माँग वक्र का जो विवरण यहाँ दिया जा रहा है, वह कम महत्त्वपूर्ण है।

कृषि और औद्योगिक उत्पादों की माँग के बीच एक मूलभूत अन्तर यह है कि कृषि के द्वारा अधिकांश मात्रा में खाद्य सामग्री उत्पन्न की जाती है।[1] ये खाद्य-सामग्री मनुष्य जीवन की एक प्रमुख आवश्यकता होती हैं। इसलिए समस्त कृषि-उत्पादों की माँग (यदि सबको मिलाकर अध्ययन किया जाए) लोचहीन (Inelastic) होती है। समस्त खाद्य-पदार्थों की कीमतों के गिरने पर भी उनके उपयोग की मात्रा में अधिक वृद्धि नहीं होती है और न खाद्य-

1. अध्याय 2, उप-शीर्षक 1 देखिए।

सामग्री की कीमतें बढने पर, उनके उपयोग की मात्रा में अधिक कमी हो होती है।

कीमतो के परिवर्तन से खाद्य-सामग्री की माँग मे कुछ रूपान्तरण अवश्य होता है क्योकि उपभोक्ता अपनी आय की एक विशेष मात्रा से पहले की अपेक्षा अधिक खाद्य वस्तुएं खरीदता है। सामान्यत उपभोक्ता की वास्तविक आय बढने से खाद्य-पदार्थों की मांग म विस्तार होता है। माँग पर हाने वाले इस प्रभाव पर आगामी अध्याय मे विस्तृत रूप से विचार किया गया है।[1]

खाद्य पदाथ की मांग का रूपान्तरण एकमात्र प्रभाव नही होता है। खाद्य-पदार्थों की कीमत मे गिरावट होने से वास्तविक आय मे परिवर्तन के अतिरिक्त औद्योगिक वस्तुओ की अपेक्षा खाद्य-वस्तुएँ अधिक सस्ती होती है क्योकि कुछ उपभोक्ता अधिक आकर्षक वस्त्र खरीदने या फिल्मो को देखने पर किय जाने वाले खर्च को बचा कर, अच्छे किस्म के खाद्य पदार्थ खरीदते हैं। इससे औद्योगिक उत्पादो की मांग के स्थान पर कृषि-उत्पादो की माँग की स्थानापत्ति होती है। चूंकि खाद्य सामग्री अन्य वस्तुओ की अपेक्षा एक भिन्न किस्म की आवश्यकता को सन्तुष्ट करती है इसलिए उपर्युक्त स्थानापत्ति का अधिक महत्त्व नही होता है। खाद्य पदार्थों की माँग अपनी पूर्ति के समान प्राय लोचहीन रहती है।

परन्तु समस्त कृषि-उत्पादन की पूर्ति की अपेक्षा वैयक्तिक फार्म उत्पादो की पूर्ति अधिक लोचदार होती है। इस विशेष स्थिति मे किसी एक खाद्य पदार्थ की कीमत बदलने से वास्तविक आय पर पडने वाले प्रभाव की उपेक्षा इसलिए की जा सकती है कि वास्तविक आय का थोडा-सा हिस्सा इस खाद्य-पदार्थ को खरीदने मे खर्च किया जाता है। एक खाद्य-पदार्थ की कीमत बदलने मे स्थानापन्न होने वाली अन्य वस्तुओं की गणना सरलता से की जा सकती है। उदाहरणार्थ—

(i) एक खाद्य-वस्तु की कीमत बदलने पर उपभोक्ता फूल गोभी, या बन्द गोभी, या ब्रुसेल्स की कोपल की अपेक्षा अन्य शाक-भाजी की माँग करते हैं।

(ii) वे सुअर की चर्बी (शूकर वसा) या ओलियो मारगेरिन या जैतून के तेल की अपेक्षा खाना पकाने की चर्बी की माँग करते हैं।

(iii) वे गोमास, भेड या बकरी का मास या सुअर के मास की अपेक्षा अन्य पशुओ के मास की मांग करते हैं।

---

1 अध्याय 7, उप-शीर्षक 3 देखिए।

ऐसा भी देखा जाता है कि उपभोक्ता एक उत्पाद के स्थान पर दूसरे उत्पाद का उपभोग करना अधिक पसन्द करते हैं। वे इस पसन्दगी के लिए एक वस्तु पर किये जाने वाले खर्च को दूसरी वस्तु को खरीदने मे खर्च करते हैं। उदाहरणार्थ—

(i) कमर के मास के स्थान पर सिर लायन की माँग करना।

(ii) ठण्डे के स्थान पर ताजा और बर्फीले के स्थान पर ठण्डा गौमास या ऑग्ल अथवा डेनिश सुअर का भुना हुआ नमकीन मास खरीदना।

उपर्युक्त विभिन्न उत्पादो की माँग लोचदार होती है। परन्तु इस माँग को पूर्ण लोचदार नही कहा जाता है क्योकि कुछ संयुक्त पूर्ति वाली वस्तुओं की कीमतें एक साथ परिवर्तित होने से इनकी माँग की लोच कम हो जाती है। जैसे—भेड-बकरी का मास, गौमास और सुअर के मास की कीमतो मे एक साथ परिवर्तन होना। इसी प्रकार की प्रतिक्रिया गौमास और दूध जैसे सयुक्त पूर्ति वाले उत्पादो की पूर्ति की लोच म होती है, क्योकि इन्हे उत्पन्न करने वाले साधनो के विशेष भाग की सयुक्त माँग होती है।

इसके अतिरिक्त ऐसे कई खाद्य पदार्थ हैं, जिनकी माँग बहुत लोचहीन होती है। जैसे रोटी, आलू या तरल दूध। इन उत्पादो के लिए हमेशा कोई हाजिर स्थानापन्न की वस्तुएँ नही होती हैं। इन वस्तुओ की कीमतो मे परिवर्तन होन से इनकी माँग की मात्रा बहुत ज्यादा नही बदलती है।

जब कोई वस्तु, अन्य वस्तु के द्वारा सरलता से स्थानापन्न की जा सकती है, तब कीमत की कमी के कारण वस्तु को अधिक मात्रा मे खरीदा जाता है। परन्तु जब किसी वस्तु की स्थानापत्ति नही की जा सकती है, तब कीमत के गिरने पर भी उपयोग की मात्रा कम रहती है। यहाँ माँग के नियम का अपवाद मिलता है। ऐसी स्थिति के लिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ता अपनी आय का अधिकाश भाग इस वस्तु पर व्यय करे। इस वस्तु की कीमत का परिवर्तन, उपभोक्ता की वास्तविक आय का रूपान्तरण कर देता है, अर्थात् उपभोक्ताओ द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओ और सेवाओ की कुल मात्रा बदल जाती है। इस वस्तु की कीमत मे कमी आने से वास्तविक आय बढ जाती है। आगामी अध्याया म हम यह अनुभव होगा कि वास्तविक आय की वृद्धि से अधिकाश खाद्य पदार्थों के उपयोग मे वृद्धि होती है। इसी तरह कीमत की कमी भी उपभोग म स्थानापन्न क्रिया और आय के प्रभाव, दोनो तरीको से वृद्धि करती है। इसके अतिरिक्त कुछ वस्तुएँ घटिया किस्म की खाद्य-

वस्तुएँ कहलाती हैं। ऐसी वस्तुओ का उपभोग आय मे वृद्धि होने के बावजूद कम हो जाता है। इस प्रकार की उत्पादो पर कीमत की गिरावट के कारण आय-प्रभाव जो उपभोग को कम करने की प्रवृत्ति दर्शाते हैं) स्थानापत्ति के प्रभाव (जो उपभोग को बढाने की प्रवृत्ति दर्शाते हैं) की अपेक्षा अधिक क्रियाशील होते हैं। इसके परिणामस्वरूप इन वस्तुओं की कीमतें कम होने पर उपभोग मे वृद्धि न हो कर कमी होती है। उदाहरणार्थ—

(1) आयरलैण्ड मे 19वी शताब्दी के प्रारम्भ मे ग्रामीण क्षत्रो के निवासियो का प्रमुख भोजन आलू था। उन्हें आलू सबसे सस्ती कीमत मे मिलता था। चूंकि आलू बहुत अधिक मात्रा में सस्ती कीमत मे पाया जाता था, इसलिए ये लोग अपनी क्षुधा का अधिकाश भाग आलू के उपयोग से तृप्त किया करते थे। इस तरह, इन लोगो के द्वारा अन्य वस्तुओ को खरीदने हेतु अधिक मात्रा मे मुद्रा की बचत की जाती थी। ऐसी स्थिति मे आलू की कीमत मे कमी होने से अन्य खाद्य वस्तुओ की स्थानापत्ति की जाती थी। जैसे—आलू के अतिरिक्त भाग पर व्यय की जाने वाली मुद्रा से गेहूँ या गोमास खरीदना।

उपर्युक्त उदाहरण के आर्थिक परिणाम बहुत दुर्लभ होते हैं। ये परिणाम ऐसी स्थिति मे पाये जाते हैं, जब उपभोक्ता खाद्य-सामग्री के विभिन्न प्रकारो को खरीदने के लिए बहुत गरीब होते हैं या एक खाद्य-सामग्री अन्य खाद्य-सामग्रियो की अपेक्षा अधिक सस्ती होती है। सामान्य नियम तो यह है कि एक उत्पाद की कीमत मे कमी होने से उस उत्पाद के उपभोग मे महत्वपूर्ण वृद्धि होती है।

अध्याय 7

कृषि सम्बन्धी उपार्जनों की प्रवृत्ति

(THE TREND OF AGRICULTURAL EARNINGS)

1. कृषि और उद्योग का परस्परावलम्बन

कृषि की उन्नति मे मांग और पूर्ति के प्रभावो की महत्त्वपूर्ण जांच करने के लिए मांग और पूर्ति के भविष्य की स्थितियो के बारे मे अध्ययन करना आवश्यक होता है। हम अब इस स्थिति मे आ गये है कि मांग और पूर्ति मे अन्तर्निहित एव सम्भावित स्थितियो का कृषि की उन्नति पर पडने वाले प्रभावो का परीक्षण कर सकें। कृषि मे आर्थिक समृद्धि को उत्पादन के साधनो के वास्तविक उपार्जनो द्वारा नापा जाता है। दूसरे शब्दो मे, कृषि के कार्य द्वारा मिलने वाली मजदूरी, ब्याज, लगान और लाभ के द्वारा जितनी मात्रा में वस्तुओ और सेवाओ को खरीदा जा सकता है, कृषि की उन्नति भी उतनी ही मात्रा मे मानी जाती है। इस अध्याय मे दीर्घकालीन और आगामी अध्यायों मे अल्पकालीन प्रवृत्तियो तथा उपार्जन के उच्चावचनो के बारे में विचार किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन मे सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह है कि सामान्यत दीर्घकाल मे कृषि और उद्योग की उन्नति साथ-साथ होती है। श्रमिक और अन्य कार्यकर्त्ता अपने जीविकोपार्जन के लिए सर्वाधिक लाभप्रद व्यवसायो का चुनाव करते हैं। इसलिए मुद्रानिवेश सबसे अधिक ब्याज मिलने वाले व्यवसायो मे और भूमि का उपयोग सबसे अधिक लगान देने वाले कार्यों मे किया जाता है। उत्पादन के सभी साधनो मे यह प्रवृत्ति पायी जाती है। प्रारम्भ मे कुछ परिवर्तन औद्योगिक कार्यकर्त्ताओ को लाभ और फार्म के कार्यकर्त्ताओ को हानि भी पहुंचा देते हैं। परन्तु कृषि और उद्योग के बीच यह अन्तर हमेशा नही रहता है। किसी भी व्यवसाय के द्वारा हुई आमदनी मे वृद्धि अपने लाभ

को अन्य सभी व्यवसायो मे फैला देती है। उत्पादन के साधन परस्पर एक उद्योग मे दूसरे उद्योग में परिवर्तन करते समय जिस गति से समजन करते हैं आय का फैलाव उसी गति से होता है।

उत्पादन के साधन गतिशील होने पर, उनका उपार्जन राष्ट्रीय आय के वितरण और प्रकार को निर्धारित करने वाली परिस्थितियो पर निर्भर रहता है। परन्तु इन परिस्थितियो के बारे मे अधिक विस्तार के साथ इसलिए विचार नही किया जा रहा है कि इस पुस्तक मे आर्थिक सिद्धान्तो की व्यावहारिकता के सम्बन्ध मे सिद्धान्तो पर अधिक विवेचन न करते हुए अध्ययन किया जाता है। इसके बावजूद कृषि से सम्बन्धित रोजगार, जीवन स्तर, अन्य अधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो और कीमतो के विषय को सक्षेप मे दर्शाना अत्यन्त आवश्यक है। इस अध्ययन के प्रारम्भ मे, उत्पादन के एक साधन की विभिन्न इकाइयो की कृषि-उत्पादन क्षमता मे पायी जाने वाली भिन्नता की उपेक्षा करके, उसको एकरूप मानने मे कोई विशेष हानि नही है।

2 बढती हुई जनसंख्या का प्रभाव
(The Effect of Increasing Population)

उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध मे ले कर वतमान शताब्दी तक बढती हुई जनसख्या के जीवन-स्तर पर पडने वाले प्रभावो का विशेष चिन्ता के साथ मनन किया गया है। माल्थस महोदय की प्रसिद्ध पुस्तक 'जनसख्या के सिद्धान्तो पर निबन्ध' के द्वारा इस विषय मे अधिक रुचि उत्पन्न की गयी है। माल्थस के द्वारा अपनाये गये तर्कों के आधार भूत तत्त्वों को बडी सरलता के साथ समझा जा सकता है। चूँकि माल्थस ने एक भिन्न पथ अपनाया है, इसलिए यहाँ जनसख्या के बढने के उन कारणो पर विचार करना आवश्यक नही है। यह सत्य है कि भविष्य मे श्रम और पूंजी अधिक मात्रा मे रोजगार की तलाश करते हैं। जनसख्या की वृद्धि से कृषको को पहले की अपेक्षा कम मात्रा की भूमि मे खेती करने के लिए विवश होना पडता है, भूमि की कुल-राशि म परिवर्तन नहीं होता है। कृषक की व्यक्तिगत पूंजी भी अपरिवर्तित रहती है। सामान्यत: फार्मिंग मे अधिक सख्या के श्रमिको द्वारा कार्य किये जाने से कृषि-उत्पादन मे स्वाभाविक रूप से वद्धि होती है। परन्तु श्रमिको की सख्या को, ह्रासमान प्रतिफल नियम लागू होने से, एक सीमा से अधिक नहीं बढाया जा सकता है। श्रमिको की सख्या मे जनसख्या की वृद्धि के अनुपात मे वृद्धि नही की जा सकती है। इसके विपरीत उद्योग मे श्रमिको को अधिक सख्या मे कार्य मे लगाने पर

वर्द्धमान प्रतिफल का नियम (Law of increasing returns) लागू होने से औद्योगिक उत्पादन अधिक अनुपात में बढ़ता है। विरल जनसंख्या वाले देशों को छोड़ कर शेष देशों में यह भी सम्भव होता है कि कृषि में ह्रासमान प्रतिफल नियम उद्योग के वर्द्धमान प्रतिफल नियम से आगे हो जाये। दूसरे शब्दों में, जनसंख्या की वृद्धि की अपेक्षा वस्तुओं और सेवाओं के कुल उत्पादन में कम मात्रा में विस्तार हो सकता है। इसमें प्रति व्यक्ति, वास्तविक आय कम हो जाती है। दीर्घकाल में केवल भू स्वामी इस परिवर्तन से लाभ उठा पाते हैं, क्योंकि कीमतों की वृद्धि की अपेक्षा भूमि की बढ़ती हुई माँग लगान को अधिक मात्रा में बढ़ाती है और भू-स्वामियों की वास्तविक आय बढ़ जाती है।

उपर्युक्त परिवर्तन उत्पाद की पूर्ति और माँग को प्रभावित करता है। उपभोक्ता वस्तुओं की माँग अधिक संख्या में करते हैं। परन्तु प्रति व्यक्ति आय कम होने से वस्तुओं की माँग आनुपातिक रूप से अधिक नहीं बढ़ती है। चूँकि लोग अपनी कम आय का अधिक हिस्सा खाद्य आवश्यकताओं पर खर्च करते हैं, इसलिए अन्य वस्तुओं की तुलना में खाद्य-पदार्थों की माँग अधिक बढ़ती है। इसका अर्थ यह है कि कृषि में उद्योग की अपेक्षा श्रम-शक्ति की आवश्यकता अधिक होती है। फार्म-उत्पादों की कीमतें औद्योगिक वस्तुओं की कीमतों से सापेक्ष रूप से अधिक होती हैं, क्योंकि कृषि में ह्रासमान प्रतिफल का नियम लागू होता है।

इसके विपरीत जनसंख्या की कमी से, अन्ततोगत्वा वास्तविक आय बढ़ जाती है। वैसे जनसंख्या अधिक विरली न होने और उद्योग में वर्द्धमान प्रतिफल तेजी से लागू न होने के कारण भी कृषि-सम्बन्धी कीमतें बढ़ जाती हैं। यह एक अकाट्य तर्क है। परन्तु शर्त यह है कि अर्थ व्यवस्था में, जनसंख्या की वृद्धि या कमी ही एकमात्र परिवर्तन होना चाहिए।

कृषि में ह्रासमान प्रतिफल की प्रवृत्ति एक स्थापित सत्य है। इसे स्वकार कर लेने के पश्चात दूसरे कृषि-सम्बन्धी सिद्धान्त अपने आप व्याख्यायित हो जाते हैं। अन्य बातें यथावत् रहने पर, जनसंख्या की वृद्धि से जीवन-स्तर (Standard of living) कम होता है। उद्योग में वर्द्धमान प्रतिफल का नियम अधिक प्रभावशील नहीं रहने से कृषि में रोजगार पाने वाले लोगों की संख्या का अनुपात बढ़ जाता है। 19वीं शताब्दी में, इंग्लैण्ड की जनसंख्या की वृद्धि का सम्बन्ध जीवन-स्तर के कम होने के स्थान पर बढ़ने से था। जीवन-स्तर की वृद्धि को उद्योग में कम हुई लागतों का परिणाम नहीं कहा जा सकता है।

उस समय उद्योग मे उत्पादन का पैमाना बडा हो गया था। जीवन-स्तर की वृद्धि का एक कारण 'अन्य वातो का यथावत् न रहना' था। अनुसन्धानो और उनके उपयोग से उत्पादन मे सुधार करने से आर्थिक स्थिति का आधारभूत रूपान्तरण होता है।

3 वास्तविक आय और मांग (Real Income & Demand)

कृषि मे तकनीकी योग्यता की वृद्धि से होने वाले प्रभाव महत्त्वपूर्ण होते हैं। तकनीकी प्रगति का प्रथम लक्षण (चाहे वह किसी भी उद्योग मे की जाय) समाज की वास्तविक आय की वृद्धि के रूप मे प्रकट होता है। तकनीकी प्रगति के कारण, उत्पादन के साधनो की कम मात्रा द्वारा वस्तुओ की एक विशेष मात्रा को उत्पन्न किया जा सकता है। इससे उत्पादन की कुल मात्रा मे वृद्धि होने से उपभोग की मात्रा बढती है। फार्म के उत्पादो की मांग पर वास्तविक आय की वृद्धि के प्रभावो का अत्यधिक महत्त्व होने के कारण इसका कई बार उल्लेख किया गया है। इसका विस्तृत रूप मे विश्लेषण आवश्यक है।

खाद्य-पदार्थों की मांग को निर्धारित करने वाला एकमात्र महत्त्वपूर्ण कारण वास्तविक आय का स्तर है। वास्तविक आय के स्तर के कम होने पर लोग केवल अपनी मूल आवश्यकताओ की पूर्ति करने की आर्थिक योग्यता रखते हैं। *मनुष्य के जीवन की बुनियादी आवश्यकता होने के कारण खाद्य-पदार्थ* की कुछ मात्रा का उपभोग मनुष्य को जीवित रखने के लिए नितान्त अनिवार्य होता है। इन अनिवार्यताओ के अतिरिक्त मनुष्य की कुछ अन्य आवश्यकताएँ भी होती हैं, जैसे—*(i) आवास की आवश्यकता, (ii) जलवायु, और (iii) कपडे* (इनका गर्म देशो की अपेक्षा ठण्डे देशो मे ज्यादा महत्त्व होता है)। आय की मात्रा कम होने पर इन वस्तुओ को कम मात्रा मे खरीदा जाता है। ऐसे समय मांग किये गये खाद्य-पदार्थों की किस्म हल्की होती है, क्योकि ये पदार्थ मनुष्य को जीवित रखने के लिए आवश्यक कैलोरी शक्ति को कम-से-कम लागत मे उपलब्ध कराते हैं।

आय मे वृद्धि होने से अधिकाश खाद्य-सामग्री की मांग मे विस्तार होता है। परन्तु उपभोक्ता खाद्य-सामग्री की मांग इतनी मात्रा मे ही करते हैं, जो उन्हे भूखो मरने से रोकने म समर्थ होती है। जब उपभोक्ताओ की आय इस बढी हुई आय से अधिक होती है, तो वे अपनी बढी हुई आय का कुछ भाग अधिक मात्रा की खाद्य-सामग्री को खरीदने मे व्यय करते हैं। सरल शब्दो मे, समस्त खाद्य-सामग्री का मांग-विस्तार होता है। परन्तु यह विस्तार सब खाद्य-सामग्री

की मांगों में एक समान नही होता है। उपभोक्ता ऐसी खाद्य-सामग्री खरीदते है, जो कैलारी शक्ति प्राप्त करने के साधन के रूप में महँगी होती हैं। साधारणत इन खाद्य-सामग्री के पसन्द करने का कारण उनका स्वाद, पशुओं में पाया जाने वाला प्रोटीन या विटामिनो की मात्रा होती है।

आय की एक विशेष सीमा के पश्चात् उपभोक्ता पेट (मानवीय भूख) की क्षमता सीमित होने से, खाद्य पदार्थों की अधिक मात्रा मे मांग नही करते हैं। अब वे घटिया किस्म के खाद्य-पदार्थों के स्थान पर ऊँचे किस्म के खाद्य पदार्थों का खरीदने मे अधिक मुद्रा को खर्च करते हैं।

आय की वृद्धि होने से रोगो से बचाने वाले खाद्य पदार्थों की मांग मे वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ—(i) फल, (ii) शाकभाजी (iii) तरल दूध, और (iv) अण्डे इत्यादि। यद्यपि अन्य पदार्थों की तुलना मे ये खाद्य पदार्थ प्रति कैलारी महँगे पडते हैं, परन्तु इनमे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए आवश्यक प्रोटीन, लवण और विटामिन का अनुपात अधिक होता है। उदाहरणार्थ—

(i) आय की वृद्धि होने से मक्खन और मास की मांग पहले समूह की वस्तुओं की अपेक्षा कम मात्रा मे बढती है।

(ii) शक्कर की मांग मे भी थोडा-सा विस्तार होता है।

(iii) इग्लैण्ड मे पनीर, सुअर की चर्बी (Lard) पशुओं की गाढी चर्बी (Suet) और भूने हुए मास की टपकती चर्बी इत्यादि की मांग, आय क निचले स्तर से मध्यम स्तर पर पहुँचने से बढती है। परन्तु इसके पश्चात् आय के अधिक बढन स इस मांग मे कमी होना प्रारम्भ हो जाता है। बहुत कम आय वाले उपभोक्ता सस्ती खाद्य-सामग्री म भी मितव्ययता करते पाये जाते हैं। परन्तु आय की वृद्धि से जैसे-जैसे उनकी गरीबी दूर होती है, वे खाद्य-पदार्थों को अधिक मात्रा मे खरीदने की योग्यता रखते है। ये उपभोक्ता, तुलनात्मक दृष्टि से अच्छी आर्थिक स्थिति मे पहुंचने पर, खर्चीले खाद्य-पदार्थों को खरीदने का रुझान दर्शाते है, जैसे—पनीर के स्थान पर मास और सस्ती चर्बी के स्थान पर मक्खन खरीदते हैं।

कई सस्ते खाद्य पदार्थों का उपयोग, आय की वृद्धि या पतन के द्वारा बहुत कम अवसरो पर प्रभावित होता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे खाद्य-पदार्थ होते हैं जिनका उपयोग नीचे स्तर म आय क बढने पर भी, बढने के स्थान पर घट जाता है, जैसे—आय कम हो या अधिक, रोटी और आलू उतनी ही मात्रा मे खरीदे जाते हैं। इसी प्रकार, बहुत अधिक सस्ते उत्पादो की मांग मे, आय की वृद्धि होने पर, कम होने की प्रवृत्ति हो जाती

है। कुछ उत्पादो के लिए घटिया किस्म की स्थानापन्न वस्तुएँ उपयोग की जाती हैं, जैसे—(मलाई निकाला गया) सघनित दूध और मार्गरीन। इन वस्तुओं का प्रयोग बहुत अधिक गरीब व्यक्तियो द्वारा तरल दूध और मक्खन के स्थान पर किया जाता है। ये उपभोक्ता, आय की वृद्धि होने से, कीमती उत्पादो को खरीदने की ओर आकर्षित होते हैं।

एक ही वस्तु की विभिन्न प्रकारो की मांगो मे भी विभिन्नता पायी जाती है। उपभोक्ता अपने द्वारा खरीदे गये उत्पादो[1] के प्रति उदासीन नही होते हैं। ये लोग अपनी आय मे वृद्धि होने पर अधिक खर्चीली वस्तुओ की ओर अपनी माँग को विवर्तित करते हैं। जैसे—(i) बर्फीले के स्थान पर ठण्डा तथा ठण्डे के स्थान पर ताजे गोमास की माँग (ii) सग्रहित अण्डो के स्थान पर ताजे अण्डो की माँग, और (iii) आयात किये गये उत्पादो के स्थान पर स्वदेश मे उत्पन्न किये गये उत्पादो की माँग। इग्लैण्ड जैसे देश मे कृषि के लिए आय बढने पर माँग का उपर्युक्त विवर्तन बहुत महत्वपूर्ण है क्योकि यहाँ कृषि शहरी बाजारो के समीप स्थित है तथा समस्त आवश्यकताओ के स्थान पर कुछ आवश्यकताओ की पूर्ति करती है। इस प्रकार की कृषि मे ताजे उत्पादो के लिए एकाधिकार प्राप्त होता है ताजे उत्पादो की माँग शहरो मे होती है। शहरो की समृद्धि का लाभ कृषि को प्राप्त होता है।

आय की वृद्धि से अधिकाश खाद्य-सामग्रियो की माँग मे विस्तार होता है। खाद्य-पदार्थों की समस्त माँग निश्चित रूप से बढती है, परन्तु कभी-कभी खाद्य-पदार्थों पर किया जाने वाला व्यय, एक बिन्दु के बाद, आय के समान तेजी से नही बढता है। आय की वृद्धि से उपभोक्ताओ को अपनी बुनियादी आवश्यकताओ को पूर्ण करने के लिए आवश्यक धनराशि से ज्यादा धनराशि प्राप्त होती है। इनके पास अपनी अतिरिक्त आय को खर्च करने के लिए, विस्तृत सीमा के अन्तर्गत अधिक सुख देने वाले खाद्य-पदार्थों, गैर-कृषि-उत्पादो तथा सेवाओ को खरीदने का विकल्प होता है। इस दृष्टिकोण को, उपलब्ध-आँकडो के द्वारा समर्थन प्राप्त है कि लोग अपनी मौलिक आय की स्थिति की तुलना मे आय-वृद्धि की स्थिति का छोटा भाग खाद्य-पदार्थों मे खर्च करते हैं। इसमे समस्त खाद्य-सामग्री की माँग आय बढने से बढती है, परन्तु माँग की यह वृद्धि आय की वृद्धि के अनुपात मे कम होती है।

कुछ अन्य कृषि उत्पाद खाद्य-पदार्थ नही होते हैं।[2] इनकी माँग अन्य

---

1. अध्याय 6, उप-शीर्षक 8 देखिए।
2. अध्याय 2, उप-शीर्षक 1 देखिए।

औद्योगिक वस्तुओं की मांग के समान बढ़ती है और अधिक गतिशील होती है। कृषि पैदावार में खाद्य-पदार्थों की तुलना में ऐसे उत्पादों का महत्व कम होता है। कृषक की आय बढ़ने से कृषि-उत्पादों की मांग में वृद्धि होती है, परन्तु उपर्युक्त कृषि-उत्पादों की मांग इतनी कम गति से बढ़ती है कि समस्त कृषि-उत्पाद की कुल मांग में कमी का अनुभव होने लगता है।

एक समाज के प्रगतिशील ढंग से धनवान् होने पर उसकी खाद्य-सामग्री की मांग में वृद्धि होती है। पिछली शताब्दी में इंग्लैण्ड में इसी प्रकार समृद्धि हुई थी। ऐसी स्थिति में औद्योगिक उत्पादों की मांग का खाद्य-पदार्थों की मांग की अपेक्षा अधिक तेजी से विस्तार होता है। परन्तु खाद्य-सामग्रियों की परस्पर सापेक्षिक मांग घटती है। इसके विपरीत किसी समाज के क्रमशः गरीब होने पर अन्य उत्पादों की मांग की तुलना में खाद्य-सामग्री की मांग कम तेजी से गिरती है। यह स्थिति सामान्यतः निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की कीमतों की अपेक्षा आयात की जाने वाली वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि तथा राष्ट्रीय आय के एक बड़े अनुपात का, राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अर्थात् अस्त्र शस्त्र खरीदने में व्यय किये जाने से उत्पन्न हो जाती है।

किसी समाज में खाद्य-सामग्री की मांग उसकी वास्तविक आय और वितरण की साइज के द्वारा प्रभावित होती है। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि दो समाजों में वास्तविक आय बराबर होने के बाद भी खाद्य-सामग्री की मांग भिन्न रूप से पायी जाती है, क्योंकि इनमें से एक समाज में करोड़पति और गरीब एक साथ रहते हैं और दूसरे समाज में सभी नागरिकों की आय एक बराबर है। इसके निम्नलिखित 2 कारण हैं—

(1) असमान आय वाले समाज में आय का वितरण समस्त उत्पादों के बीच एक समान नहीं होता है। गरीब लोग केवल सस्ती खाद्य सामग्री और अमीर लोग विलासिता की वस्तुओं की मांग करते हैं। इसलिए इस समाज में आलू, रोटी, फ्रांस की प्रसिद्ध मदिरा शेम्पेन, लवा या बटेर और अत्यधिक आकर्षक सुगन्ध वाले पदार्थों की मांग अधिक मात्रा में होती है।

(2) समान आय वाले समाज में आय का स्थानान्तर अमीरों से गरीबों के पास होता है। इससे जो लोग पहले अमीर थे, वे अब खाद्य-सामग्री पर किये जाने वाले व्यय में कमी करते हैं और जो पहले गरीब थे, अब उनके व्यय में उपर्युक्त कमी से अधिक मात्रा में वृद्धि होती है। इस तरह, ऐसे समाज में कृषि-उत्पादों की मांग अधिक होती है।

4. वास्तविक आय और विपणन लागतें
(Real Income and Marketing Costs)

अभी तक उपभोक्ताओं को फुटकर बेची जाने वाली खाद्य-सामग्री की माँग के बारे में विचार किया गया है। आय में वृद्धि होने से, माँग में होने वाली कुछ वृद्धि को, अधिक विपणन लागतें अपने में समाहित कर लेती हैं अर्थात् कृषकों को भुगतान की जाने वाली धनराशि की मात्रा, उपभोक्ताओं के द्वारा कृषि उत्पादों के लिए भुगतान की गयी राशि की मात्रा के बराबर नहीं होती है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(1) उपभोक्ताओं की अधिक माँग को सन्तुष्ट करने के लिए पैदावार में वृद्धि करना आवश्यक होता है। इसके लिए वर्तमान खेती की भूमि से दूरवर्ती भूमि में खेती करके उत्पादन को बढ़ाना जरूरी होता है। तकनीकी सुधारों के अभाव में, दूरवर्ती भूमि में खेती करने का महत्व बढ़ जाता है। परन्तु कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धानों की मदद से बाजार के पास की भूमि में खेती द्वारा अधिक उत्पादन सम्भव होने पर दूरवर्ती भूमि का महत्व कम हो जाता है, क्योंकि कृषि के विस्तार के कारण बाजार तक कृषि-उपजों के ढोने में अतिरिक्त यातायात-खर्च की आवश्यकता पड़ती है और विपणन-लागतें बढ़ जाती हैं।

(2) उपभोक्ताओं की आय बढ़ने से विभिन्न प्रकार की खाद्य-सामग्री की माँग बढ़ती है। वस्तुओं के अधिक संख्या में क्रय होने के कारण वितरण की लागतें कम हो जाती हैं। परन्तु ऐसा कभी-कभी ही होता है। आय की वृद्धि के कारण अधिक संख्या में वस्तुओं के बिकने में वितरण की लागत निश्चित रूप से सदैव कम नहीं होती है। अतः इस प्रकार के प्रतितोलन की सम्भावना हमेशा नहीं रहती है।

(3) अधिक धनवान् उपभोक्ता वितरक की सेवाओं की आवश्यकता को अधिक मात्रा में अनुभव करते हैं। वे अपने द्वारा खरीदी गयी वस्तुओं को स्वयं घर ले जाना पसन्द नहीं करते हैं बल्कि यह कहते हैं कि खरीदी हुई वस्तुएँ उनके घर पहुँचा दी जायें। वे नकद पैसा देने की चिन्ता न करके साप्ताहिक या मासिक हिसाब किताब रखते हैं। इसमें हिसाब रखने का खर्च और उधार देने का कार्य दोनों बातें सन्निहित रहती हैं। ऐसे खरीदार यह भी पसन्द करते हैं कि जो वस्तुएँ उन्होंने खरीदी हैं, वे सुविधाजनक आकार

व पैकेज म कम समय म भी जायें। ये उपभोक्ता प्रत्येक वस्तु की विशय मात्रा को अपन सामने तौल कर लना पसन्द नहीं करते हैं क्योंकि इसम ज्यादा समय नष्ट होता है। इन समस्त सेवाओं के कारण वितरण की लागत बढ जाती है। इस प्रकार क उपभोक्ता फुटकर विक्रेता द्वारा क्रेताओं को मार्केटिंग करने वाली कीमतों के प्रभाव से पृथक कारणों से बाजार को अपूर्ण बनाते हैं और मध्यस्थ की सेवाओं क चार्जों म वृद्धि करते हैं।

(4) वास्तविक आय म वृद्धि का सम्बन्ध उद्योग की वृद्धि और शहरों की वृद्धि से रहता है। इससे उत्पादन और उपभोक्ता क बीच की दूरी बढ जाती है और वितरण का कार्य अधिक खर्चीला हो जाता है। उदाहरणार्थ— 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ म इंग्लैण्ड की $\frac{3}{4}$ जनसंख्या भूमि पर आश्रित थी और खेती करके अपना जीवन यापन करती थी। उस स्थिति मे किसी प्रकार क जटिल वितरण-पद्धति की आवश्यकता न थी। परंतु औद्योगिक विकास क परिणामस्वरूप आजकल केवल $\frac{1}{5}$ जनसंख्या खेतों पर आश्रित है। इस लिए ऊपर वर्णन की गयी समस्त सेवाओं का निर्वाह अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

वास्तविक आय म तकनीकी सुधार के कारण वृद्धि होने से फार्म उत्पादों की माँग फार्म के उपभोक्ताओं की उस माँग से कम अनुपात म बढती है जो फार्म उपभोक्ताओं का आय म (अपनी पारी म) कम आनुपातिक वृद्धि क कारण उत्पन्न होती है।

5 तकनीक की प्रगति के प्रभाव

उत्पादन की लागत को कम करन म कृषि-सम्बन्धी उत्पादों की माँग और पूर्ति-सम्बन्धी परिस्थितियों म परिवर्तन होता है। पूर्ति पर पड़न वाले प्रभाव और अन्ततोगत्वा उपार्जन पर होन वाली प्रतिक्रियाएं उस आविष्कार के स्वरूप पर निर्भर होता है जिसके कारण उत्पादन की लागत घटती है।

अब कृषि के क्षेत्र स बाहर किसी ऐसे उद्योग म किये गये तकनीकी सुधारों क बारे म विचार करना आवश्यक है जो कृषक का किसी भी प्रकार का कच्चा माल या मशीनों की पूर्ति नहीं करता है और उसके कृषि उत्पादों क बेचने म सहयोग नहीं देता है। इस प्रकार क आविष्कार स जिन लोगों की वास्तविक आय बढती है उनकी कृषि-सम्बन्धी माँग प्रभावित होती है। य लोग अपनी वास्तविक आय का व्यय केवल उन वस्तुओं को खरीदने में नहीं करते हैं जो सस्ती हो गयी हैं बल्कि खाद्य-सामग्री को अधिक मात्रा म खरी

दना पसन्द करते हैं। इससे आविष्कार के कारण कम हुई औद्योगिक वस्तुओं की कीमतों की अपेक्षा खाद्य-सामग्री की कीमतें सापेक्ष रूप में अधिक हो जाती हैं। *इसका परिणाम यह होता है कि उद्योग की तुलना में कृषि में आय* उस समय तक अधिक होती है, जब तक कि कृषि-उत्पादन के विस्तार के लिए तकनीकी सुधार के कारण भूमि, श्रम और पूँजी का विपथन उद्योग से कृषि की ओर नहीं होता है। औद्योगिक उत्पादन कुछ लोगों की सहायता से अधिक मात्रा में किया जा सकता है, क्योंकि इसके पहले तकनीक में सुधार हो चुका है। परन्तु कृषि-पैदावार को अधिक मात्रा में बढ़ाने के लिए ज्यादा लोगों की आवश्यकता होती है। यह विशेषकर इसलिए होता है कि हम पहले ही मान चुके हैं कि फार्मिंग की तकनीक में कोई सुधार नहीं हुआ है।

साम्य की अवस्था में, उद्योग और कृषि में श्रम और पूँजी एक समान *मात्रा में उपार्जन करते हैं (जैसा कि उन्हें करना चाहिए)।* यदि सचमुच साम्य की स्थिति है तो कृषि में उद्योग की अपेक्षा कीमतें अधिक होने के निम्नलिखित 2 कारण होते हैं :—

(1) उद्योग में लागतें कम होती हैं जबकि कृषि में नहीं होती है।

(2) खाद्य-सामग्री की बढ़ी हुई माँग की *अनुक्रिया के कारण* कृषि में विस्तार होता है और ह्रासमान प्रतिफल की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है। इससे सीमान्त लागत अधिक हो जाती है।

जब कृषि क्षेत्र के बाहर यातायात के साधनों वितरण की पद्धतियों, और कृषकों को कच्चा माल तथा कृषि मशीनों के देने वाले उद्योगों में तकनीकी सुधार होता है, तो इन सेवाओं और औद्योगिक उत्पादों की कीमतें कम होती हैं। उपर्युक्त लागतों के कम होने पर, वितरण की लागत भी कम हो जाती है। इससे कृषि-उत्पाद की माँग और कीमत अधिक हो जाती है। जब कच्चे माल की कीमत कम होती है, तो कृषक की कुल आय और प्रारम्भिक लागत के बीच का अन्तर अधिक हो जाता है, *अर्थात् कृषक को होने वाले लाभ की मात्रा* अधिक हो जाती है। उपर्युक्त दोनों परिस्थितियों में नये लोग फार्मिंग की ओर आकर्षित होते हैं। इसमें कृषि-उत्पादन में वृद्धि होती है और कृषि-उत्पादों की फुटकर कीमतें कम होती हैं। इस तरह फार्मिंग में अधिक लोगों के रहते हुए भी सन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, परन्तु जिन व्यवसायों में सुधार होता है उनमें कार्य करने वाले लोगों की संख्या कम ही रहती है। पहले किये जाने वाले कार्य को कम श्रमिकों की सहायता से करने के कारण उत्पादन-

लागत मे कमी होना स्वाभाविक होता है। ऐसे व्यवसायों में खाद्य-सामग्री की माँग लोचहीन (Inelastic) होने के कारण खाद्य-सामग्री के उपभोग मे ज्यादा वृद्धि नही होनी है।

उपर्युक्त परिणामो को यथावत् रखने के लिए केवल कृषि के बाहर के उद्योगो की लागतो मे कमी होने की आवश्यकता नही होती है, बल्कि कृषि-क्रियाओ को करने के लिए श्रमिको के समान आवश्यक कृषि-मशीनो तथा अन्य आवश्यक वस्तुओ की कीमतो मे भी कमी करना आवश्यक होता है। कृषि मे आवश्यकता पडने पर मशीनों को श्रमिकों के स्थान पर स्थानापन्न किया जाता है। इसके लिए उत्पादन की रीतियो के पुनर्गठन करने के लिए आवश्यक समय का होना जरूरी होता है। अभी हम लोग केवल दीर्घकाल की प्रतिक्रियाओ का अध्ययन कर रहे हैं। स्थानापत्ति के कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

(i) कम्बाइन हारवेस्टर का उपयोग फसल की कटाई करने वाले श्रमिको की स्थानापत्ति के लिए होता है।

(ii) फार्म मे उपयोग किये जाने वाले प्राकृतिक खादो का स्थानापन्न कृत्रिम उर्वरक के द्वारा किया जाता है।

जब कोई आविष्कार उपर्युक्त प्रकार की उत्पादो को सस्ती कीमत मे उपलब्ध कराता है तो इसके परिणाम, कृषि मे किये गये तकनीकी सुधारो के परिणाम जैसे होते हैं।

कृषि मे किसी आविष्कार के होने से सबसे पहला प्रभाव यह होता है कि प्रभावित उत्पादो की कीमतें कम होती हैं। उदाहरणार्थ—मान लीजिये, कोई वैज्ञानिक घास की दो फालें (Blades) तैयार करता है, जबकि पहले घास की केवल एक फाल होती थी। इसका परिणाम घास की कीमतो में कमी होगा, क्योंकि हम यह मान लेते हैं कि उपर्युक्त आविष्कार का उपयोग कृषि के समस्त क्षेत्र मे होता है। इसके अतिरिक्त समस्त कृषि-उत्पादो की माँग (समस्त उत्पादो को एक इकाई मानने पर) लोचहीन होने के कारण उत्पादक कम पैदावार के लिए प्राप्त होने वाली अधिक धनराशि की अपेक्षा अधिक पैदावार के लिए प्राप्त होने वाली कम धनराशि प्राप्त करना पसन्द करते हैं। अन्य शब्दो मे, कृषि में निवेशित पूँजी की धनराशि और श्रमिको की सख्या अपरिवर्तित रहने से सापेक्षिक रूप मे कृषि उपार्जन धीमे रहते हैं। यह स्थिति उत्पादन के साधनो का कृषि के बाहर स्थानान्तरण होने से बदलती है। ऐसा होने पर उद्योग की अपेक्षा कृषि की कीमतें अधिक मात्रा मे कम हो जाती हैं, क्योंकि कृषि-उत्पादो

की लागत कम हो जाती है। परन्तु कृषि और उद्योग दोनों व्यवसायों में उपार्जन की गति एक समान रहती है।

कृषि और उद्योग के सम्पूर्ण क्षेत्र में तकनीक के सुधार सामान्य होने पर भी उत्पादन के साधनों को कृषि के बाहर विपथन होने की आवश्यकता इसलिए होती है कि उद्योग में वास्तविक आय अधिक होती है। कृषि-उत्पादों की माँग की तुलना में औद्योगिक उत्पादों की माँग तेजी से बढ़ने के कारण, हमारी मान्यता के अनुसार प्रति व्यक्ति उत्पादन दोनों व्यवसायों में एक समान अनुपात में अधिक होता है। इस दशा में श्रम और पूँजी, दोनों साधन कृषि से उद्योग की ओर स्थानान्तरित होते हैं। श्रम और पूँजी के उपर्युक्त समजन के कारण कृषि में सीमान्त लागतें कम हो जाती हैं और कृषि भूमि कम गहनता के साथ जोती जाती है। उद्योग में भी वर्द्धमान प्रतिफल का नियम लागू होने से सीमान्त लागतें कम हो जाती हैं।

कृषि और उद्योग दोनों व्यवसायों के उत्पादन के समस्त साधनों की वास्तविक आय में दीर्घकाल में तकनीक के सुधार के कारण वृद्धि होती है। वैसे *उपसंहारस्वरूप किया गया उपर्युक्त सामान्यीकरण, समस्या को जरूरत से* ज्यादा सरल बना देता है क्योंकि यह सामान्यीकरण एक साधन की विभिन्न इकाइयों के बीच पाये जाने वाले अन्तर की उपेक्षा करता है। भूमि की विभिन्न इकाइयों के बीच यह अन्तर सबसे अधिक स्पष्ट दिखता है। जैसे—एक एकड़ भूमि का एक टुकड़ा अधिक उपजाऊ और दूसरा कम उपजाऊ होता है। इस प्रश्न पर आर्थिक उन्नति में विभागीय अन्तरों के बारे में विवेचन करते समय अधिक विचार किया गया है।

6 उत्पादन के साधनों की अचलता
(The Immobility of Factors of Production)

अभी तक हमने यह मान्यता स्वीकार की है कि एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में, उत्पादन के साधन उस समय तक स्थानान्तरित होते रहते हैं, जब तक कि दोनों व्यवसायों में उपार्जन की मात्रा बराबर नहीं हो जाती है और दोनों व्यवसायों में वर्णन की गयी सन्तुलन की स्थिति उत्पन्न नहीं हो जाती है। *वास्तव में यह मान्यता बहुत अधिक दोषपूर्ण है। उदाहरणार्थ—यदि* पूँजी का निवेश पूँजीगत वस्तुएँ जैसे इमारतें, मशीनें, या भूमि की नालियों को बनाने में किया गया है तो यह निवेश उपर्युक्त वस्तुओं के टूटने तक स्थानान्त-

रित नहीं हो सकता है। उपर्युक्त वस्तुओं की पुनर्स्थापना के समय इन निवेशों की आवश्यकता होगी। इसी तरह श्रमिक, एक व्यवसाय या स्थान में निपुणता प्राप्त करने के पश्चात् गतिशील होने के अयोग्य या अनिच्छुक हो जाते हैं। केवल नवीन पीढ़ी ही ऐसी होती है जो आरम्भ में कार्य करते समय स्वेच्छा से एक कार्य से दूसरे कार्य में गतिशील होती है। परन्तु इस गतिशीलता को पूर्ण गतिशीलता नहीं माना जाता है, क्योंकि एक पुत्र दूसरे इलाके में रह कर भी अन्य व्यवसायों की अपेक्षा अपने पिता के व्यवसाय के बारे में अधिक जानता है। यह बात कृषि और उद्योग दोनों के लिए सही है। पुत्र को अन्य स्थान में रहने की अपेक्षा अपने माता पिता के साथ रहने में सस्ता पड़ता है। परन्तु इस विचार को ही सम्पूर्ण विचार नहीं समझना चाहिए। कुछ लोग स्वाभाविक झुकाव, अनभिज्ञता या शिक्षा और साहस की कमी के कारण जिस इलाके में उनका जन्म होता है, उससे गतिवान् हो कर अन्य किसी स्थान में कार्य करने नहीं जाते हैं। कृषि के श्रमिकों के बारे में यह बात बिलकुल सही होती है। साधारणतः समाज से श्रमिकों के अधिकांश भाग का सम्बन्ध नहीं रहता है। इसलिए श्रमिकों की प्रत्येक पीढ़ी का केवल कुछ हिस्सा, बढ़ती हुई आय और पहली स्थिति की आय के अन्तर की असुविधा के कारण गतिशील होता है। कृषि और उद्योग में श्रम और पूंजी की पर्याप्त मात्रा के स्थानान्तर के बिना भी एक सीमा तक यह अन्तर पाया जाता है।

अभी तक यह ज्ञात किया गया है कि उद्योग से कृषि की ओर, श्रमिकों और पूंजी के स्थानान्तरण की प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाले कारणों में जनसंख्या की वृद्धि, कृषि-सम्बन्धी तकनीकों की अपेक्षा औद्योगिक तकनीक में तीव्रगति से सुधार और कृषि लागतों में वृद्धि, प्रमुख कारण हैं। कृषि में यह गतिशीलता, अधिक मात्रा के उपार्जन के कारण उत्पन्न होती है। कृषि-क्षेत्र से बाहर की दिशा में होने वाली उत्पादन के साधनों की गतिशीलता को जन्म देने वाले प्रमुख कारण, कृषि करने की योग्यता में सामान्य सुधार और कृषि की लागतों में गिरावट हैं। इसलिए कृषि में अधिक तकनीकी सुधार होने तक कृषि में कम मात्रा का उपार्जन पाया जाता है। उत्पादन के साधनों में मात्रा-गति धीमी होने से उपार्जन कम होने का दोष अधिक समय तक बना रहता है।

पिछली डेढ़ शताब्दी में विश्व तकनीक की बड़ी तेज प्रगति के कारण धनवान् होता रहा है। उद्योग, यातायात और कृषि तीनों की रीतियों में बहुत सुधार किया गया था। तकनीकी सुधारों के प्रभावों ने बढ़ती हुई जनसंख्या-

के प्रभावों का अधिक मात्रा में प्रतितोलन (Counter-balance) किया है। ऐसी दशा में उद्योग के उपार्जन की अपेक्षा कृषि के उपार्जनों के कम रहने की प्रवृत्ति दिखती रही है क्योंकि जीवन-स्तर की उन्नति से लोग आरामदेह और विलासता की वस्तुएँ, अधिक संख्या में उत्पन्न करने वाले व्यवसायों की मांग करते थे। आवश्यकताओं के निर्माण करने वाले व्यवसायों में काम करने वाले लोगों की संख्या कम पायी जाती थी। कृषकों को अपने व्यवसाय तेजी से बदलने की आवश्यकता नहीं थी, इसलिए औद्योगिक आय की अपेक्षा फार्म की आय को कम रहने से रोका जा सका था।

इस प्रकार के विकास का, बिना किसी अवरोध के आर्थिक समृद्धि के साथ सम्बन्धित रहना आवश्यक होता है। खाद्य-पदार्थों के उत्पादन से मनुष्य की जितनी अधिक शक्ति का विपथन होता है, मनुष्य अपनी आदिम स्थिति से उतना ही अधिक आगे बढ़ता है। विश्व में यह स्थानान्तरण, विशिष्ट श्रम की अत्यधिक मात्रा और समस्त व्यवसायों में उपार्जन की अधिक मात्रा की स्थिति में पाया जाता है। लोग जितनी धीमी गति से उन्नति करते हैं व्यवसायों के उपार्जन का अन्तर उतना ही अधिक होता है। लगातार तकनीकी सुधार होने से प्रत्येक पीढ़ी का केवल एक अनुपात ही गतिशील होता है। इससे व्यवसायों के उपार्जनों के बीच एक स्थायी अन्तर हो जाता है। एक आविष्कार के द्वारा उत्पन्न की गयी असंगति उत्पादन के साधनों के स्थानान्तर द्वारा कम हो भी नहीं पाती है कि तकनीक का दूसरा परिवर्तन उपार्जनों की इस असंगति को बढ़ा देता है। वास्तव में, पिछली शताब्दी में औद्योगिक प्रगति के कारण कृषि-सम्बन्धी उपार्जन बहुत मन्द हो गये थे। यद्यपि इस सम्बन्ध में बहुमत मिलता है कि क्या सारे विश्व को एक इकाई मानने पर उपार्जनों की यही स्थिति रहने की सम्भावना थी या नहीं? ब्रिटेन में प्रबल आर्थिक शक्तियाँ पायी गयी थीं, जो उपार्जनों के अन्तर को निर्मूल करने की क्षमता न रखते हुए भी उन्हें घटाने के लिए सतत् प्रयत्नशील थीं।[1]

7. प्रादेशिक अन्तर (Regional Difference)

ब्रिटिश कृषि में सन 1870 से सापेक्ष रूप में पायी जाने वाली मन्दी का एकमात्र कारण तकनीक में तेजी के साथ किया गया सुधार नहीं था। इसके अन्य महत्वपूर्ण कारणों को भली-भाँति समझने के लिए अपनी इस

---

1. अध्याय 9, उप-शीर्षक 2 देखिए।

मान्यता का परित्याग करना आवश्यक है कि "प्रत्येक प्रकार की कृषि के लिए उत्पादन के साधनों में एक समान क्षमता रहती है"। वैसे उत्पादन के साधनों में कृषि के लिए, उद्योग के विपरीत, उपयुक्तता (Suitability) का अल्पकालीन अन्तर पाया जाता है। उपर्युक्त मान्यता सही स्थिति का बहुत उपयोगी मान प्रस्तुत नहीं करती है।

भूमि की विभिन्न इकाइयाँ अपनी उत्पादकता और बाजार से समीपता के बारे में आपस में अन्तर रखती हैं। कई प्रकार की भूमि में, किसी एक उत्पाद की खेती के लिए अन्य रीतियों की अपेक्षा एक रीति भी उपयोगी पायी जाती है। सामान्यतः पूँजी को दीर्घकाल में पूर्णरूप से गतिशील होना चाहिए परन्तु ऐसा देखा जाता है कि वह एक विशिष्ट रूप में कई वर्षों के लिए विराजमान है। यह पूँजी कभी-कभी कृषि के ऐसे कार्य में निवेशित रहती है कि इसका वहाँ से निकलना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार, श्रम भी विभिन्न व्यवसायों में उत्तराधिकार-स्वरूप प्राप्त क्षमता के अनुसार भिन्नता रखता है। श्रम अत्यन्त दीर्घकाल के सिवाय हमेशा उत्पादन के अनुभव से प्राप्त निपुणता में पाया जाता है। किसी भू भाग के साथ श्रम भी पूँजी के समान दृढ़ता के साथ संलग्न होता है। यदि समस्त भू भागों को एक-देश मान लिया जाय तो हमें यह ज्ञात होता है कि एक देश के नागरिक एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में, अन्य देश में श्रम की गतिशीलता से कम गतिशील होते हैं। इस प्रकार के क्षेत्र में कई परिवर्तन सम्पूर्ण समाज को लाभ पहुँचाते हैं, परन्तु कुछ लोगों की आय को घटाते हैं। ऐसे परिवर्तनों के कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(1) वास्तविक आय में वृद्धि होने से सुरक्षात्मक (रोगों से बचाने वाली) सामग्री उत्पन्न करने वाले लोगों का उपार्जन बढ़ जाता है क्योंकि ऐसी खाद्य-सामग्री की माँग सबसे अधिक होती है, परन्तु अन्य सस्ते उत्पादों का उत्पादन करने वाली भूमि वहाँ उपयोग आने वाले उपकरणों के स्वामी को नुकसान पहुँचाती है क्योंकि लोग जैसे-जैसे धनवान् होते हैं, सस्ती वस्तुओं की माँग कम होती जाती है। उदाहरणार्थ—राई जैसी सस्ती वस्तु के उत्पादकों का नुकसान होता है।

(2) एक नयी कृषि मशीन या फार्मिंग की नयी पद्धति के आविष्कार से वर्तमान में घटिया कहलाने वाले उपकरणों के मालिकों, विशिष्टीकृत फार्मिंग के कार्यकर्त्ताओं और ऐसे फार्मों में खेती करने वाले कृषकों को हानि होती है

क्योकि यह भूमि नयी रीतियो के लिए उपयुक्त नही रह जाती है। परन्तु उपर्युक्त आविष्कार से नयी सुविधाओ से सम्पन्न लोगो को लाभ होता है। उदाहरणार्थ—(i) सन् 1830-31 ई० के दगो म फार्म के श्रमिको द्वारा गाहनी करने की मशीनो को नष्ट किया गया था। वे श्रमिक यह सोचते थे कि गाहनी करने वाली मशीनें उनकी तत्कालीन आय को कम कर देती हैं। (ii) इसी तरह कम्बाइन हारवेस्टर के आविष्कार और सूखी भूमि मे खेती करने की नयी पद्धति से ऐसे कृषको की आय कम हो गयी थी, जो बड़ पैमाने मे कृषि करते थे या गीली जलवायु मे खेती करने के लिए कम उपयुक्त जिलो मे गेहूँ पैदा करते थे।

(3) यातायात की लागतो मे कमी होने से बडे बाजारो से दूर कृषि करने वाले लोगो को सहायता मिलती है, परन्तु इन बाजारो के समीप ऊँची उत्पादन लागत से खेती करने वालो को हानि होती है। उदाहरणार्थ—(i) ब्रिटेन मे रेल यातायात और समुद्री यातायात के विकास के कारण सन् 1870 मे आग्ल-बाजारो मे सस्ते गेहूँ का ढेर लग गया था। इसी तरह सन् 1800 मे शीतगृह प्रणाली के आविष्कार ने मांस और डेयरी उत्पादो की कीमत कम कर दी थी। उपर्युक्त दोनो तकनीक सम्बन्धी परिवर्तनो से इग्लैण्ड की कृषि से सम्बन्धित जनसख्या को एक विशेष अवधि के लिए आर्थिक हानि पहुँचती थी पर इसी समय इन परिवर्तनो से अमेरिका और आस्ट्रेलिया को सहायता मिली थी। (ii) सडक यातायात मे तेजी से सुधार के कारण दूध जैसी नाशवान् वस्तुओ को शहरी बाजारो मे ले जाने की यातायात-लागतो को कम कर दिया गया था और दक्षिण-पश्चिम स्काटलैण्ड जैसे डेयरी वाले जिलो से तरल दूध की पूर्ति शहरो मे की गयी थी। परन्तु शहरी बाजारो से नजदीक क्षेत्रो की लाभप्रद स्थिति कम हो गयी थी।

इस प्रकार के परिवर्तन सम्पूर्ण देश के विभिन्न क्षेत्रो मे तत्कालीन हितो को ध्यान मे रख कर उस समय लाभप्रद माने जाते हैं, जब हम जमीदारो के हितो को अधिक महत्व नही देते हैं। विभिन्न देशों के बीच दीर्घकाल मे श्रम गतिशील नहीं होता है। यह प्रभाव, हमारे द्वारा उल्लेख किये गये अधिकाश आर्थिक विकास मे पाया जाता है। उपर्युक्त किस्म का मशीनीकरण बडे फार्मों वाले क्षेत्र मे उपयोगी होता है। परन्तु इन रीतियो से उत्पन्न प्रतिस्पर्धा द्वारा छोटे फार्मों के कृषको को हानि पहुँचती है। इस सन्दभ मे तीसरा परिवर्तन सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यातायात की लागतो में कमी होने से बडे बाजार

के क्षेत्रो के कृषकों की आय कम हो जाती है। 19वी शताब्दी के अन्त में, ब्रिटिश कृषि में पायी जाने वाली मन्दी का यह दूसरा कारण था।

किसी देश को इस प्रकार के विकास उस समय स्थायी रूप से नुकसान पहुँचाते हैं, जब अन्य देशो को बेची जाने वाली वस्तुओं को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ—(i) इजिप्ट म लम्बे रेशे वाले कपास के सृजन से उसके प्रतिस्पर्धी दक्षिण संयुक्त राज्य अमेरिका की आय म स्थायी कमी हो गयी थी। (ii) आस्ट्रेलिया का ठंडा माँस का प्रचलन, जिसे कार्बन-डाय-आक्साइड के वातावरण मे रखा गया था, दक्षिण अमेरिका के लिए हानिप्रद सिद्ध हुआ था क्योंकि इसके पूर्व-दक्षिण अमेरिका को ब्रिटिश बाजारो म इस उत्पाद को निर्यात करने का एकाधिकार प्राप्त था।

एक देश के द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं की उत्पादन लागत मे कमी से, इन्हें उत्पन्न करने वाले भू-स्वामियो को छोड कर, शेष सभी लोगो को लाभ होता है। इससे देश के अन्दर कृषक और श्रमिक तुलनात्मक रूप से अधिक लाभ प्रदान करने वाले अन्य व्यवसायो की ओर उन्मुख होते हैं।[1] 19वी और 20वी शताब्दियो के मध्य इंग्लैण्ड मे यही हुआ था। सन् 1870 स देश की वास्तविक आय मे जनसख्या की गति की तुलना में तेज गति से वृद्धि हुई। फार्मिग करने वाले लोगा की आर्थिक स्थिति मे सुधार हुआ। यद्यपि यह उन्नति अन्य लोगो की तुलना मे कम थी क्योंकि उपर्युक्त विकास क लिए सस्ती खाद्य-सामग्री अनिवार्य थी।

आधुनिक ह्रासवाद (Decadence) के चिह्न के रूप म फार्म जनसख्या मे कमी होने पर यह प्रचलित विचार विमर्श रुक जाता है। दीर्घकाल म इस प्रकार के विचार आर्थिक दृष्टिकोण से मेल-जोल नही रख पाते हैं, क्योंकि ये विचार आर्थिक प्रगति की विपरीत दिशा के सूचक कहलाते हैं। हमारी यह अभिवृत्ति (Attitude) अल्पकालीन विचारो के सूक्ष्म निरीक्षण की कमी और दीर्घकालीन सरलता को न समझने के परिणामो के बहिष्कार से उत्पन्न होती है। 'कृषि म राज्य द्वारा हस्तक्षेप' विषय का वर्णन करते समय इस अभिवृत्ति के अन्य आर्थिक आधारो पर विचार किया गया है।

• •

1 आर० एफ० हेराड द्वारा लिखित—अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, अध्याय 2 देखिए।

अध्याय 8

कृषि की अस्थिरता

(THE INSTABILITY OF AGRICULTURE)

1 उच्चावचन के प्रकार (Types of Fluctuations)

गत अध्याय में, माँग और पूर्ति की अवस्थाओं के लगातार परिवर्तनों द्वारा कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया था। इस अध्याय में इन प्रवृत्तियों के उच्चावचन के बारे में विचार किया जा रहा है। कृषि में उद्योगों की अपेक्षा अल्पकालीन विघ्नों (Disturbances) का प्रभाव अधिक होता है। वैयक्तिक कृषि-उत्पादों में कीमत-सम्बन्धी उच्चावचन वार्षिक, चक्रीय या मौसमी आधार पर की गयी बिक्री की मात्रा और उनके परिवर्तनों के कारण प्रारम्भ होते हैं। किसी उत्पाद की माँग लोचहीन होने पर, उसकी फुटकर कीमतें, कुल पैदावार के रूपान्तर में अधिक अनुपात में बदलती हैं। इससे कृषक के द्वारा प्राप्त की जाने वाली कुल धनराशि और आय की मात्रा में उच्चावचन होता है। उत्पादक को, मध्यस्थ द्वारा ली गयी राशि के प्रति इकाई स्थिर होने के कारण, अधिक लोचहीन माँग का सामना करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि उत्पादक हमेशा बड़े पैमाने की उपज की अपेक्षा छोटे पैमाने की उपज से कुल धनराशि अधिक मात्रा में प्राप्त करता है।

कृषि पर, वैयक्तिक उपजों के प्रतिफल और उनकी कीमतों के उच्चावचनों के प्रभावों के अतिरिक्त, अन्य कीमतों तथा आर्थिक समृद्धि से सम्बन्धित चक्रों का प्रभाव भी पड़ता है। कुछ लोगों का मत है कि यह प्रभाव स्वयं कृषि के रूप में प्रकट होता है।

2 विपणन चार्जों की स्थिरता (The Stability of Marketing Charges)

फुटकर कीमतों के परिवर्तनों के प्रभाव कृषक द्वारा प्राप्त की जाने वाली कीमतों में एक समान परिवर्तनों के रूप में प्रतिफलित होते हैं। फुटकर और

फार्म कीमतो के बीच की दूरी, विपणन विधि में, धनराशि के पूर्ण उपयोग तक स्थिर रहती है। इन पर फार्म कीमतो के अल्पकालीन उच्चावचन की मात्रा का कोई प्रभाव नही पडता है। यह रूपान्तर कृषकों के द्वारा की जाने वाली पूर्ति या उपभोक्ताओ की माँग मे होने वाले परिवर्तनो के कारण उत्पन्न होता है। इसके कारण फुटकर कीमतो की अपेक्षा कृषकों को प्राप्त होने वाली कीमतें अधिक अनुपात मे बदलती हैं। उदाहरणार्थ—मान लो, प्रारम्भिक स्थिति मे कृषकों को फुटकर कीमत का 50 % प्राप्त करना है। यदि फुटकर कीमत 100 से 95 अर्थात् 5 % कम हो जाती है तो फार्म की कीमत भी 50 से 45 हो जाती है अर्थात् 5 % कम हो जाती है। परन्तु वास्तव मे, इसका अर्थ 10 % की ऐसी कमी होगा, जो फुटकर कीमत के प्रतिशत पतन का दुगुने के बराबर है।

उपभोक्ताओ की आय, और इसलिए खाद्य की माँग, मे अल्प-अवधि मे घट-बढ होने के बावजूद विपणन चार्जों की तुलनात्मक स्थिरता की आशा करने के तीन कारण हैं—

(1) समस्त कृषि-उत्पादो की पूर्ति (एक इकाई के रूप में) लोचहीन होती है परन्तु वैयक्तिक कृषि-उत्पाद की पैदावार, एक महत्वपूर्ण सीमा तक, वाछनीय लम्बे मध्यान्तर के बिना परिवर्तित नही होती है। दूसरे शब्दो मे, कृषक अपनी उत्पादो का कम मात्रा म विक्रय पसन्द नही करता है बल्कि कीमत की किसी भी कमी को सहन कर लेता है। इसका अर्थ यह है कि कृपक को मध्यस्थ की सेवाओं की माँग बहुत कम या शून्य के बराबर होती है। अत मध्यस्थ को अपनी सेवाओ के बदले कम मात्रा का प्रतिफल स्वीकार करने का कोई प्रोत्साहन नही मिलता है।

(2) मान लीजिये, कृषको को कीमत की किसी प्रकार की कमी, अपनी उत्पादो को कम मात्रा मे बेचने के लिए सहमत कर लेती है, फिर भी वितरको (मध्यस्थो) के लिए प्रति इकाई कम मात्रा का प्रतिफल स्वीकार करने से कोई लाभ नही होता है। वे जिस वस्तु का व्यापार करते हैं, उन्हें उसकी मात्रा मे कटौती करना आवश्यक हो जाता है। कृषको की अपेक्षा व्यापारियो पर प्राथमिक लागतो का सापेक्ष रूप से अधिक भार पडता है। प्राथमिक लागतो म से कुछ लागतें, विक्रय का परिमाण कम होने पर कम हो जाती हैं और वितरको की सेवाओं की पूर्ति सन्तोषप्रद रूप मे लोचदार रहती है। ये वितरक अपने लाभ (सीमान्त) मे कमी करना पसन्द नहीं करते हैं, बल्कि व्यापार के

परिमाण को घटाना स्वीकार कर लेते हैं। इससे उत्पादकों पर कीमतों के परिवर्तन का प्रत्येक प्रभाव पड़ता है।

(3) विपणन सेवाओं की संख्या एकाधिकार-युक्त संगठनों पर निर्भर होती है। कुछ एकाधिकारी संगठन अपने उत्पाद की प्रति इकाई कीमत लम्बे समय तक एक निश्चित मात्रा में प्राप्त करते हैं। जैसे रेलवे द्वारा लम्बे समय तक निश्चित दर से किराया लिया जाता है। अन्य एकाधिकारी संगठन अपनी सेवाओं के लिए एक स्थिर राशि या कीमत का विशेष प्रतिशत चार्ज करते हैं। इस प्रकार, विपणन की सेवाओं की दरें, उनके परिवर्तन लाभदायक होते हुए भी, कठोर बनी रहती हैं। एकाधिकारी द्वारा अपने चार्जों को यथावत् बनाये रखने की शक्ति, सामान्य अवसाद या मन्दी के समय अधिक महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि असंगठित कृषक, कमजोर स्थिति में रहने से अपने उत्पादों को प्राथमिक लागत प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी भी कीमत में बेचने के लिए तैयार रहते हैं। वैसे सार्वजनिक मत, आवश्यकता से अधिक लाभ को सहन नहीं करता है परन्तु कृषि-उत्पादों की मांग गिरने से कृषकों की आय में होने वाली गिरावट रोकने के लिए मध्यस्थों द्वारा किये गये कार्यों का समर्थन करता है। सार्वजनिक समर्थन के कारण एकाधिकारी, तेजी की अपेक्षा मन्दी के समय अपना आर्थिक नियन्त्रण अधिक शक्ति के साथ कायम रखने में सफल हो जाते हैं।

वितरकों द्वारा प्राप्त किया जाने वाला लाभ, पूर्ति की वृद्धि से कीमतों के गिरने के कारण स्थिर रहने की प्रवृत्ति बतलाता है। उदाहरणार्थ—ग्रेट ब्रिटेन में सन् 1923 से 1932 तक 10 मौसमों में आलू की फुटकर कीमतें सन् 1929-30 के 142 शि० प्रति टन के सबसे नीचे स्तर से सन् 1924-25 के 264 शि० प्रतिटन के सबसे ऊँचे स्तर के बीच परिवर्तित होती रही। आलू की फुटकर कीमतों में वृद्धि 86 % अधिक थी। उत्पादक की कीमतों और फुटकर कीमतों के बीच अन्तर दोनों वर्षों में 97 शि० प्रतिटन था। उत्पादकों की कीमतें फुटकर कीमतों के समान 45 शि० प्रतिटन से 167 शि० तक परिवर्तित हुई थीं। आलू की कीमत का यह परिवर्तन न्यूनतम कीमत से लगभग 3 गुना था।

मध्यस्थों की सेवाओं की मांग कृषि-उत्पादों की पूर्ति में वृद्धि होने से अधिक होती है। इन सेवाओं की प्रति इकाई लागतें व्यवसाय की मात्रा या परिमाण बढ़ने से कम होती हैं। इसका प्रमुख कारण उपरि लागतों का बड़े

परिमाण मे फैले रहना भी है । ये उपरि लागतें अल्पकाल मे लिये जाने वाले चार्जों से असगत होती है । मध्यस्थों के चार्ज माँग के अधिक रहने के बावजूद निम्नलिखित कारणो से स्थिर रहते हैं—

(1) मूल लागतें, व्यापार की मात्रा बढने से थोडी मात्रा मे कम हो जाती हैं क्योंकि कुछ मदें उत्पाद की मात्रा के अनुसार नही बढती हैं । जैसे — (i) पशुओं को रखने के लिए उधार ली गयी पूंजी, और (ii) बीमे की लागत । ये लागतें सामान्यत: मूल्य के अनुपात मे रहती है और उपज की मात्रा बढने पर प्रति इकाई कम होती हैं । इस अन्तर का प्रतितोलन करने के लिए, जैसा कि हम आगे देखेंगे[1] व्यापारी अनुकूल मौसम म उत्पन्न उत्पाद के कुछ भाग का सग्रह कर लेते है । इससे भविष्य मे पूर्ति की कमी या कीमतो मे वृद्धि होने पर, सग्रह की वस्तुओं को अनुकूल मौसम मे बेचा जा सकता है । इस प्रकार सग्रह की अतिरिक्त लागतें वर्षो मे भारी मात्रा मे रखी उपजो पर व्यय की जाती हैं ।

(2) विपणन सेवाओ के कई चार्ज, कृषि-सम्बन्धी उत्पादो का व्यवसाय न करने वाली ऐजेंसियो द्वारा निश्चित किये जाते हैं । उदाहरणार्थ—यातायात की कम्पनियाँ, बैंक और बीमा कम्पनियाँ अपने चार्जों का निर्धारण केवल कृषि उत्पादो के लिए अपनी सेवाओ की माँग के आधार पर न करके सम्पूर्ण माँग द्वारा करते हैं । इन चार्जों को एक या कुछ फर्म-उत्पादो के विक्रय की परिस्थितियाँ प्रभावित नही करती हैं । लकाशायर मे आलू के उत्पादन मे एकदम वृद्धि आने का ब्रिटिश रेलवे के लिए तुलनात्मक रूप से कोई महत्व नही है । विदेशो मे कृषि-उत्पादन में होने वाले सामान्य परिवर्तन से ग्रेट ब्रिटेन को जाने वाले जहाजो म जगह की माँग पर काफी प्रभाव पडेगा । इस कारण से यदि फ़सल बहुत ज्यादा हो गयी है तो नौवहन भाडे की दर मे वृद्धि हो सकती है ।

(3) कई एकाधिकारी कम्पनियाँ, अपने चार्जों को स्थिर रखने की आदत के कारण, विपणन चार्ज को स्थिर रखने की प्रवृत्ति बतलाती हैं ।

उपर्युक्त कारणो से कृषि-उत्पाद की माँग या पैदावार की मात्रा बदलने पर मध्यस्थ व्यापारियो को प्राप्त होने वाला लाभ प्रभावित नही होता है, परन्तु कृषि-उत्पाद की माँग या पैदावार मे परिवर्तन होने से कृषकों को प्राप्त होने वाली कीमत बदलती है । मध्यस्थो के स्थिर लाभ और उपभोक्ताओं को

1 पृ० स० 143-144 देखिए ।

लोचहीन मांग, कृषि-उत्पाद की पूर्ति के उच्चावचन के कारण फार्म कीमतों को अत्यधिक ऊँचा कर देते है।

3 मौसमी परिवर्तन (Seasonal Variations)

एक वर्ष के विभिन्न मौसमों के बीच महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। इनमें खाद्य-सामग्री की मांग में कुछ मात्रा में रूपान्तर होता है। उदाहरणार्थ—(i) ठण्ड के दिनों में गोमांस और सुअर के सूखे मांस की मांग, (ii) गर्मी के दिनों में सलाद और भाजी भूनने के लिए लेटयूस की मांग, और (iii) क्रिसमस के तुरन्त पहले टर्की (अमेरिका का एक खाद्य-पक्षी) की ओर बड़ा दिन (क्रिसमस) मनाने के पूर्व के मंगलवार के दिन डबल रोटी बनाने के लिए दूध की मांग। यह मांग सामान्य मांग से 6% अधिक होती है। ये सभी चरम मांगें, केवल दूध को छोड़ कर चरम-कीमतों को जन्म देती हैं क्योंकि चरम मांगों के साथ इतनी मात्रा में पूर्ति के परिवर्तन नहीं हो पाते हैं। जैसे—क्रिसमस में सुअर का मांस और टर्की बहुत मँहगे होते हैं अर्थात् उनकी कीमतें चरम-कीमतें हो जाती हैं। औद्योगिक उत्पादों की मांग की अपेक्षा कृषि-उत्पादों की मांग सारे वर्ष ज्यादा स्थिर रहती है। पूर्ति पक्ष में स्थिति बिलकुल विपरीत होती है। मौसमी और जैविक साधनों की विभिन्न अवस्थाओं के द्वारा फार्म-उत्पादों की पैदावार बहुत प्रभावित होती है, क्योंकि अधिकांश फार्म-पैदावार मौसमी होती हैं। इसके विपरीत औद्योगिक पैदावार (इमारतों को छोड़ कर) इमारतों के अन्दर उत्पन्न की जाती हैं। औद्योगिक उत्पादों का मौसमी और जैविक साधनों से पृथक्करण (Insulation) पाया जाता है।

कुछ फार्म-उत्पादों का संग्रह नहीं किया जा सकता है। इन उत्पादों की कीमत एक मौसम से दूसरे मौसम में उत्पादन की लागत और विक्रय-योग्य सीमान्त इकाई को बाजार तक ले जाने की यातायात लागत के द्वारा परिवर्तित होती है। एक वर्ष में विभिन्न समयों के अनुसार कम या अधिक प्रभावपूर्ण मात्रा में उपर्युक्त लागतों का अन्तर बदलता है। उदाहरणार्थ—(i) युद्ध के पूर्व उत्पादकों को स्ट्राबेरी की बहुत ऊँची कीमत, 2 शि० प्रति पौण्ड प्राप्त हुई थी। स्ट्राबेरी की घरेलू उपज कुछ सीमित अग्रगामी जिलों से, बाजार में सबसे पहले मई में आयी थी। परन्तु मौसम के बढ़ने के साथ स्ट्राबेरी के देर से पकने के कारण दूर के क्षेत्रों में स्ट्राबेरी की कीमतें क्रमशः कम होती गयीं। ये कीमतें चरम उत्पादन की स्थिति में जून के अन्त से जुलाई के प्रारम्भ तक 3 पें० प्रति पौण्ड हो गयी थीं। कुछ

समय उपरान्त वितरण सेवाओं की कमी के कारण, इन कीमतों मे थोडी सी मात्रा मे वृद्धि हुई। इस मौसम के पश्चात गर्म गृहों (Hot houses) की सेवाओं तथा उत्पादन की अन्य लागतो को पूरा करने के लिए स्ट्रावेरी की कीमत 5 शि० प्रति पौण्ड होनी आवश्यक थी। अधिकाश उपभोक्ताओ के लिए यह कीमत निषेधात्मक थी अर्थात वे इस कीमत पर स्ट्रावेरी का उपभोग नही कर सकते थे। (ii) तरल दूध भी स्टावेरी के वर्ग में आता है। यद्यपि दूध मे उत्पादन की लागतो के परिवर्तन छोटी मात्रा मे होते हैं और तरल दूध का सग्रह नहीं किया जा सकता है। उत्तरी हेमिस्फियर मे तरल दूध, प्रति गैलन, बहुत कम लागत म उत्पन्न किया जाता है। वसन्त ऋतु मे गायें सन्तान उत्पन्न करती हैं। मई और जून मे शरद ऋतु की अपेक्षा घास की बहुलता रहती है। इससे गायें अधिक मात्रा म दूध देती हैं। शरद् ऋतु मे, जनने के बाद, गायो को जडो तथा क्रय किये हुए आहार पर रखना पडता है। इस तरह, प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियो म तरल दूध ठण्ड की अपेक्षा वसन्त ऋतु, म सस्ता रहता है।

मौसमी परिवर्तन के कारण, कृषि उपजो की उत्पादन लागत की अपेक्षा पशु-उत्पादो की उत्पादन लागत मे कम परिवर्तन होता है क्योकि पशु उत्पाद बहुत अधिक मात्रा मे घास पर आश्रित होती है। पशुओ क लिए घास अत्यन्त महत्वपूर्ण उपज है। इसे साधारणत लम्बे समय तक और कुछ देशा म सारे वर्ष पैदा किया जाता है।

पहले उल्लेख किया गया है कि ताजे स्ट्राबेरी और तरल दूध का सग्रह नही हो सकता परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक रीतियो स सबसे अधिक नाशवान वस्तुओ को अपेक्षाकृत अधिक दीर्घजीवी वस्तु के रूप मे बदला जा सकता है। अत इस वैज्ञानिक युग म सग्रह की जाने वाली और न की जाने वाली उत्पादों मे भेद करने की कोई कठोर विभाजन रेखा नही रह गयी है। उदाहरणार्थ—

(i) तरल दूध को कुछ समय तक रखी जा सकने वाली वस्तुओ मे बदला जा सकता है—जैसे पनीर या सघनित दूध,

(ii) ताजे माम को बर्फ मे रखा जा सकता है,

(iii) अण्डो को सुखा कर या अचार बना कर रखा जा सकता है, और

(iv) स्ट्राबेरी का मुरब्बा तैयार किया जा सकता है।

एक उत्पाद के सग्रह करने पर कीमत की स्थिति अधिक जटिल हो जाती है। उत्पादकों को इस प्रकार के मौसम मे उत्पादन करने का विकल्प मिलता है। उत्पादन लागतें कम रहने पर, उत्पाद का कुछ हिस्सा भविष्य मे बेचन के लिए सग्रह किया जाता है। जो उत्पाद साल भर उत्पन्न किया जा सकता है, उसे साल भर सग्रह किया जा सकता है। सग्रह करने मे लागतो मे वृद्धि होती है। सग्रह के कार्य की कुछ प्रमुख लागतें निम्नलिखित हैं—

(1) सग्रह के लिए पूँजी की अवश्यकता होती है क्योंकि अन्तिम उपभोक्ता द्वारा उत्पाद खरीदने के पश्चात् सग्रह का विक्रय बन्द कर देना पडता है।[1]

(2) उत्पादो को एक स्थान से दूसरे स्थान ढोने के लिए विशेष इमारतो और उपकरणो की अवश्यकता होती है। जैसे—(i) गेहूँ उठाने की मशीन, (ii) मक्खन या मास के लिए शीतगृह का यन्त्र, और (iii) फलो के लिए गैस-प्रकोष्ठ (Chambers)। इनके निर्माण एव सचालन मे खर्च की आवश्यकता होती है।

(3) संग्रह करने के पश्चात् उत्पाद का कुछ भाग नष्ट हो कर विक्रय के अयोग्य हो जाता है। जैसे—गड्ढा या कलम्प मे रखा गया आलू।

(4) उत्पाद को सग्रह करते समय पहले एक विशेष प्रक्रिया स गुजरना पडता है, नतीजे मे उसकी लागत को भी वहन करना पडता है। जैसे—स्ट्राबेरी का मुरब्बा या अण्डो का अचार बनाना।

(5) सग्रह के कार्य मे विशेष मात्रा मे जोखिम होती है क्योंकि सग्रह-कर्त्ता भविष्य मे उत्पाद के विक्रय की कीमत के बारे मे निश्चित रूप मे जानकारी नही रख सकता है।

(6) उपभोक्ता सग्रह किये गय उत्पादो की अपेक्षा ताजे उत्पादो को पसन्द करते हैं। अत वे ताजे उत्पादो के लिए अधिक कीमत देने को तैयार रहते हैं। जैसे, ताजे अण्डे अचार के अण्डो मे और ताजे फल बोतलो मे रखे गय फलो से ऊँची कीमत म बिकते हैं। वास्तव मे यह अन्तर लागत पक्ष का न हो कर माँग पक्ष का होता है।

फार्म की उत्पादो का सग्रह केवल ऐसे समय किया जाता है, जब विक्रय के समय की कीमतों और उत्पादन के समय की कीमतो क द्वारा उत्पादन की लागतों और जोखिम के भार को उठान की आशा रहती है। सग्रह की मात्रा एक उत्पाद से दूसरे उत्पाद म उत्पादो की नश्वरता और आयतन के अनुसार परिवर्तित होती है। सग्रह की मात्रा, सग्रह की लागत ज्ञात होने पर, साल

1 अध्याय 5, उप-शीर्षक 3 देखिए।

भर के विभिन्न समयों म उत्पादन की लागतों के अन्तर पर निर्भर होती है। सग्रह की मात्रा अधिक होने पर, उत्पादन नीची लागतो के मौसम पर केन्द्रित किया जाता है। इस मौसम मे किये गये सग्रह के द्वारा वर्ष के शेष भाग मे तत्सम्बन्धित उत्पाद की पूर्ति की जाती है। इस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण वर्ष म किसी जलवायु मे विक्रय के लिए एक बार सरलता के साथ उत्पन्न की जाने वाली उपजो मे मिलता है। इस उपज की कीमत फसल काटने के मौसम म सबसे कम होती है और सारे वर्ष बढती रहती है। इससे सग्रह की लागत आसानी से निकल आती है।

किसी उत्पाद का एक विक्रय-केन्द्र, सग्रह की लागत की अपेक्षा यातायात की लागत सस्ती होने पर, विभिन्न जलवायु वाले ऐसे क्षेत्रों से पूर्ति करने म सफल हो जाता है, जहाँ कृषि-उत्पाद की कटाई भिन्न समयो पर होती है। उदाहरणार्थ—(i) इग्लैण्ड मे गेहूँ की खरीद केवल उत्तरी हेमिस्फियर से (जहाँ गेहूँ जुलाई तथा अगस्त म काटा जाता है) नहीं करता है बल्कि दक्षिणी हेमिस्फियर से भी करता है, जहाँ गेहूँ क्रिसमस के करीब काटा जाता है। (ii) इसी प्रकार, इग्लैण्ड मे मक्खन की पूर्ति केवल अपनी गायो और बाल्टिक देशो (जो सबसे सस्ता दूध मई और जून मे उत्पन्न करते है) स नहीं करता है बल्कि न्यूजीलैण्ड से भी करता है, जहाँ की गायें सस्ता दूध बहुत अधिक मात्रा म आंग्ल शीत के मध्य म देती हैं।

साधारणत उत्पादन के सबसे सस्ते मौसमो मे दो या तीन अवसर सबसे सस्ती कीमतो के पाय जाते हैं। उत्पाद का सग्रह करने से उत्पादन की लागतें बढती हैं और बढी हुई उत्पादन की लागतें दो मौसमो के बीच के काम की कीमतो को बढा देती हैं। उदाहरणार्थ—इग्लैण्ड म न्यूजीलैण्ड के मक्खन की कीमत नवम्बर मे, अर्थात् बाजार में नय मौसम के उत्पाद आन के पूर्व, सबसे ऊँची पायी गयी थी। परन्तु इसके पश्चात् उपर्युक्त मक्खन की कीमत गिरने लगी और फिर मार्च तथा अप्रैल मे पुन बढने लगी। घरेलू तथा बाल्टिक मक्खन बाजार में, बहुत अधिक मात्रा मे मक्खन की पूर्ति होने से मक्खन की कीमत मे थोडे समय के लिए कमी आयी किन्तु कुछ समय उपरान्त मक्खन की कीमत पुन बढने लगी।

अभी तक उत्पादो की सामान्य कीमतो के ऐसे परिवर्तनो के बारे मे विचार किया गया है, जो माँग की स्थिरता, उत्पाद की नश्वरता, संग्रह की अधिक लागत और एक मौसम की अपेक्षा दूसरे मौसम मे प्रचुरता के साथ

उत्पन्न होते हैं। परन्तु व्यापारिक जीवन मे उतारो की वास्तविक कीमत के परिवर्तन, उपर्युक्त परिस्थितियो द्वारा की गयी गणना की मात्रा से अधिक मात्रा मे, अनियत रूप से पाये जाते है। वास्तविक कीमतो के इन अपवादस्वरूप परिवर्तनो के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(i) साधारणतः ऐसा कहा जाता है कि उत्पाद की कटाई के पश्चात् कीमतें गिरती हैं। और काफी समय बाद बढती है। कीमत के बढने मे सग्रह की लागत को पूरा करने के लिए आवश्यक समय से अधिक समय लग जाता है। यह तर्क दिया जाता है कि कृषक विक्रय को टालन के लिए आवश्यक ऋण नही प्राप्त कर सकता है और बिचौलिये उसकी आवश्यकता से लाभ उठा लेते हैं। वास्तव मे, कृषको की फार्मों की सग्रह करने की लागत शून्य के बराबर होती है परन्तु व्यापारियो द्वारा गोदामो मे सग्रह करने से सग्रह-लागत बढ़ जाती है। व्यापारियों की सग्रह की लागत, एक व्यापारी से दूसरे व्यापारी के पास अधिकाश उपज के तेजी से स्थानान्तरण के कारण अधिक बढ जाती है। इस सन्दर्भ मे आँकड यह दर्शाते है कि उपर्युक्त परिवर्तन हमेशा न हो कर कभी-कभी ही होता है।

(ii) कुछ उपजो मे और इसीलिए कीमतो मे भी, एक वर्ष से दूसरे वर्ष बदल जाने की प्रचण्ड प्रवृत्ति पायी जाती है—जैसे आलू। ऐसी उपजो की कीमतें मौसम के प्रारम्भ की नयी परिस्थितियो के साथ समजन नही कर पाती हैं। उपज की बहुत अधिक मात्रा के कारण प्रारम्भ मे कीमतें अधिक होती हैं परन्तु कुछ समय बाद वर्ष भर कम होती रहती हैं, क्योकि उनका पूर्ति-समावेश नही हो पाता है। इसके विपरीत, ऐसी उत्पादो की उपज कम होने पर प्रारम्भ मे कीमतें उस समय तक कम रहती हैं, जब तक कुछ समय बाद बाजार मे उत्पाद की कमी का अनुभव नही होता है। कीमतो मे इस प्रकार की गतिविधि का प्रमुख कारण आवश्ययक सूचनाओ की कमी होती है। यह अभाव विपणन-प्रक्रिया मे राज्य के हस्तक्षेप की अपेक्षा करता है।

4. वार्षिक उच्चावचन (Annual Fluctuation)

साधारणत यह देखा गया है कि कृषक अपने उत्पादन को नियन्त्रित नही कर पाता है। यह नियन्त्रण एक वर्ष से दूसरे वर्ष में मौसम या चित्ती[1] (Blight) इत्यादि के आक्रमण के कारण उपज के रूपान्तरण की स्थिति मे

---

1 अध्याय 6, उप-शीर्षक 3 देखिए।

अधिक कठिन हो जाता है। इससे पशु उत्पादो के लिए छोटे-से छोटा और पौधा-उत्पादो के लिए बड़-से बड़ा उच्चावचन उत्पन्न होता है। इन उत्पादो की पैदावार, किसी वर्ष मे मौसम की विभिन्न अवस्थाओ पर निर्भर करती है अर्थात् देर से पड़ने वाले तुषार के कारण फसल खराब होने पर या ऐसे तुषार की गैरहाजिरी मे फसल के अच्छे होने पर अगले वर्ष भी इनकी पैदावार पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ— इग्लैण्ड मे सन् 1928-37 तक दस वर्ष की अवधि मे सेब की पैदावार बहुत अधिक परिवर्तित हुई। यह फसल सन् 1934 ई० मे एक वृक्ष म 73 पौण्ड और 1935 मे प्रतिवृक्ष 13 पौण्ड रही।

पैदावार मे इस तरह के उच्चावचन अप्रत्याशित होते हैं। ये उच्चावचन कीमतों को अनिवार्य रूप से प्रभावित करते हैं, क्योकि इन्हे उपज के क्षेत्रफल या वृक्षो की सख्या मे परिवर्तन करके प्रतितोलित नही किया जा सकता है। सामान्यत कीमतें किसी एक देश की पैदावार पर प्रमुख रूप से आश्रित न रह कर सम्बन्धित बाजार की पहुँच के अन्तर्गत क्षेत्रो मे उत्पन्न होने वाली कुल पैदावार पर आश्रित होती हैं। यह क्षेत्र जितना बडा होता है, उत्पाद की पूर्ति म उतनी ही कम मात्रा मे उच्चावचन होता है। किसी एक एकाकी फार्म मे पैदावार के समूल नष्ट हो जाने से ले कर, आगामी वर्ष मे जोरदार फसल होने तक स्थिति कई प्रकार से परिवर्तित होती है परन्तु इसका यह अर्थ नही होता कि उस उत्पाद का उत्पादन करने वाले विभिन्न विरले क्षेत्रो मे समस्त अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ समकाल हो जाती हैं। कभी कभी फसल नष्ट होने वाले फार्म का क्षेत्र उन क्षेत्रो के समान हो सकता है, जो एकाकी बाजार मे आलू जैसी उपज की पूर्ति करते हैं।

गेहूँ के लिए विश्व-बाजार सबसे अधिक विकसित होता है, क्योकि गेहूँ की माँग चारो तरफ होती है और गेहूँ का यातायात सरलतापूर्वक हो जाता है। सन् 1927-38 तक की गेहूँ की औसत पैदावार मे उच्चावचन, निम्न-लिखित मात्रा मे पाया गया—(i) ग्रेट ब्रिटेन मे 7%, (ii) सयुक्त राज्य अमेरिका मे 16% और (iii) कनाडा मे 28%। यह उच्चावचन सम्पूर्ण विश्व को एक इकाई मानने पर केवल 5% था। गेहूँ जैसी उपजो का वार्षिक उच्चावचन आलू जैसी उपजो के उच्चावचन से कम होता है, क्योकि आलू जैसी उपजो का बाजार छोटा होता है।

किसी उपज की कीमतें उसके प्रमुख बाजार से सम्बन्धित समस्त क्षेत्र की

कुल उपज पर निर्भर होती हैं अर्थात् स्थानीय पूर्ति का कीमतो पर अधिक अनुपात मे प्रभाव पडता है। एक क्षेत्र की अपेक्षा दूसरे क्षेत्र मे उपज अधिक होने पर वहां कीमतें सापेक्ष रूप मे कम हो जाती है, क्योकि अन्य क्षेत्रो मे उत्पाद प्राप्त करने के लिए यातायात की लागतो (जैसे जहाजरानी की लागतें) पर खर्च होता है। उपभोक्ताओ की पसन्द और विशेष उत्पाद को उपभोग करने की आदत के कारण विभिन्न क्षेत्रो के व्यापारियो के बीच अपूर्ण प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो जाती है। यह प्रभाव इग्लैण्ड मे आलू उत्पन्न करने वाले विभिन्न क्षेत्रो के व्यापारियो के बीच स्पष्टतः ज्ञात होता है।

पैदावार मे वार्षिक परिवर्तन, उत्पाद की मांग के लोचहीन या लोचदार होने के अनुसार, उत्पाद की कीमतो मे, कम या अधिक मात्रा मे उच्चावचन होता है। सामान्यतः पशु-उत्पाद की मांग पौधा-उत्पादो की अपेक्षा अधिक लोचदार होती है, क्योकि फलो का उपभोग अनिवार्य नही होता है और उनके कई स्थानापन्न-उत्पाद (Substitute) उपलब्ध रहते है। इसी प्रकार, पौधा-उत्पाद की अपेक्षा पशु-उत्पादो की कीमत में एक वर्ष से दूसरे वर्ष[1] की पूर्ति के कम मात्रा के परिवर्तन और मांग मे अधिक लोच होने से कम उच्चावचन होता है।

कुछ उत्पादो का संग्रह, एक मौसम से दूसरे मौसम तक किये जा सकने के कारण, उनकी वार्षिक कीमतो मे कम मात्रा मे परिवर्तन होता है। ये परिवर्तन मौसमी कीमतो के परिवर्तन के समान होते हैं। उदाहरणार्थ — कॉफी की जोरदार फसल कॉफी के पेड को इस प्रकार खाली कर देती है कि आगामी दो या तीन फसलें कम हो जाती है। साधारणतः बाद की उपजें जोरदार फसल की आधी होती हैं। जब किसी उपज के पर्याप्त सग्रह के बिना, उसके उपभोक्ताओं की मांग की लोच कम रहती है, तो व्यापारी या उत्पादक भविष्य में कीमतो के बढने की सम्भावना से उस उपज का सग्रह करते है। इससे उस उपज की कीमत जोरदार फसल के बाद भी बढती है। आगामी वर्ष मे उपज की पैदावार कम हुई तो उपर्युक्त रीति से किये गये संग्रह की मात्रा के कारण उपज की कीमत कम हो जाती है। उपज की पैदावार मे अत्यधिक परिवर्तन और उपभोक्ताओं की मांग लोचदार होने से, व्यापारी जोरदार फसल का बहुत बडा हिस्सा सग्रह करते हैं। इससे उन्हे अधिक लाभ होता है। वे आगामी एक, दो या तीन वर्ष तक उपज कम होने पर, उसे पूरा करने की क्षमता रखते

1. अध्याय 6, उप-शीर्षक 3 देखिए।

हैं। साधारणत संग्रह करने की लागत प्रतिवर्ष संग्रह की गयी उपज के मूल्य का लगभग 10% होती है। संग्रह की अवधि के अनुपात मे यह लागत बढ़ती जाती है। संग्रह के समय मे वृद्धि होने से जोखिम की मात्रा अधिक होती जाती है। कॉफी की एक बार जोरदार फसल आ जाने के बाद आगामी वर्ष मे अधिक मात्रा की उपज की सम्भावना नही रहती है। कभी-कभी अनुकूल मौसम के कारण, जोरदार फसल के दो वर्षों के बाद ही (3 या 4 वर्ष के स्थान पर) अधिक मात्रा मे पैदावार हो जाती है। इससे कॉफी के व्यापारी के लिए 1 वर्ष की अवधि की जोखिम से 2 या 3 वर्ष की अवधि की जोखिम दुगुनी या तिगुनी होती है। व्यापारीगण 1 वर्ष के स्थान पर 2 वर्ष के लिए संग्रह करते हैं। परन्तु कीमतो का उच्चावचन व्यापारियो की संग्रह की क्रिया द्वारा नही रोका जा सकता है क्योंकि उपज की कीमतें लागतो और जोखिम का मुआवजा देने के लिए आवश्यक मात्रा मे नही गिरती है।

कॉफी के संग्रह को अबन्ध नीति (Laisser faire) के अन्तर्गत इसलिए उपयुक्त नही माना जाता है कि यहां सन् 1907 से राजकीय सहायता के द्वारा संग्रह करने की कई योजनाएँ क्रियान्वित की गयी थी और केवल व्यापारी ही संग्रह का कार्य नही कर रहे थे। संग्रह करने की योजनाओ की अधिकता के कारण, उनके आँकडे प्राप्त नही हैं। फार्मों से दूर संग्रह किये गये गेहूँ की स्थिति इससे विपरीत है। इसमें सम्बन्धित आँकडो का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि गेहूँ की बडी मात्रा की उपज के बाद, ये संग्रह क्रमश. बढते हैं। परन्तु स्वतन्त्र विपणन की नीति के कारण छोटी मात्रा मे पैदावार होने से ये संग्रह कम हो जाते हैं। सन् 1922-23 से सन् 1923-24 के बीच विश्व की (रूस को छोड कर) सम्पूर्ण उपज मे 310 मिलियन बुशेल की वृद्धि हुई थी। अधिक उपज के वर्ष के अन्त मे संग्रह की 120 मिलियन बुशेल अधिक हो गयी। इसके दूसरे वर्ष सम्पूर्ण पैदावार मे 387 मिलियन बुशेल कमी हो गयी और 158 मिलियन बुशेल का संग्रह निकाल दिया गया। इग्लैण्ड मे लिवरपूल गेहूँ का एक प्रमुख विश्व-बाजार है। यहाँ सन 1922 23 और सन् 1923 24 के बीच गेहूँ की कीमतें 12% गिर गयी थी तथा सन् 1623-24 और सन 1924-25 के बीच लगभग 45% बढ गयी थी। गेहूँ की कीमत मे असम्भावित उच्चावचनो की जोखिम कॉफी की कीमत के उच्चावचनो की जोखिम से अधिक होती है, क्योंकि गेहूँ की उपज मे कॉफी की उपज के समान नियमित चक्र (कॉफी के पौधों के खाली हो जाने से उत्पन्न होने वाला चक्र) नही पाया जाता है। इस-

लिए गेहूँ की कीमतों मे सदैव वार्षिक उच्चावचनों की आशंका बनी रहती है।

उत्पादकों के लिए कीमतों के परिवर्तनों को उपजों के संग्रह द्वारा नहीं रोका जा सकता है परन्तु यह संग्रह कभी-कभी उपभोक्ताओं की कीमतों के उच्चावचनों को दूर कर देता है। जैसा हम देख चुके हैं, भारी उपज के वर्ष में फुटकर और फार्म कीमतों के बीच का लाभ, लागतों और पूर्ति का एक भाग संग्रह करने की जोखिम के कारण बढ़ जाता है। इस प्रकार के वर्ष में उपज की मात्रा दूर स्थानों तक जाती है और फुटकर कीमतें बढ़ जाती हैं। इसके विपरीत कम मात्रा की उपज के वर्ष मे, फुटकर कीमतें संग्रह की गयी मात्रा के कारण कम हो जाती हैं और उच्चावचनों की संख्या घट जाती है।

वार्षिक कीमत-परिवर्तनों से कृषकों की आय में उच्चावचन होता है। कृषकों को प्राप्त होने वाला लाभ व्यापारियों की माँग की लोच की इकाई के अनुसार कम या अधिक होता है, क्योंकि उपज की लागत में परिवर्तनों का कीमत के साथ समंजन नहीं हो पाता है। यह स्थिति बड़ी मात्रा की उपज में अधिकतर पायी जाती है। कई पशु उत्पादों की माँग लोचहीन होने से, कृषक को अधिक की अपेक्षा कम पैदावार में अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है, उदाहरणार्थ—आलू की माँग लोचहीन होती है। कृषक को आलू की अधिक उपज की अपेक्षा कम उपज में अधिक लाभ मिलता है क्योंकि सब प्रकार की उपरि लागतें और पौधा लगाने तथा फसल काटने की लागतें, उपज की पैदावार के परिवर्तन द्वारा प्रभावित नहीं होती है। विक्रेता की माँग की लोच इकाई से अधिक होती है क्योंकि अधिक मात्रा की फसल काटने की लागत, कम मात्रा की फसल काटने की लागत से अधिक होती है। इस स्थिति मे उपभोक्ता की माँग की लोच भी अधिक होनी है। साधारणत उत्पादक फसल अच्छी होने की स्थिति मे जितने सुखी थे, फसल अच्छी आने की स्थिति मे भी उतने ही सुखी रहते है। उत्पादकों की आय एक वर्ष से दूसरे वर्ष उपज की पैदावार के अनुसार इसलिए बदलती है कि माँग लोचदार या बहुत कम लोचदार होती है।

5. व्यक्तिगत उत्पादों के लिए चक्रीय उच्चावचन

(Cyclical Fluctuations for Individual Products)

कुछ विशेष अवसरों पर उपज की पैदावार के वार्षिक परिवर्तन और उनके कीमत-सम्बन्धी उच्चावचन, कम या अधिक नियमित चक्रों मे पाये जाते

है। यह चक्र आलू के लिए 3 या 4 वर्षों मे पाया जाता है। इन चक्रों पर एक वर्ष की सम्भावित और वास्तविक पैदावार की मात्रा के अन्तर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। दूसरे उत्पादो के लिए इतनी ही अवधि के अनियमित चक्र पाये जाते हैं। इनका स्पष्टीकरण मौसम के चक्रीय परिवर्तनो द्वारा करना लाभप्रद है।

उपज और कीमतो के चक्रो को इसलिए अयोजित कहा जाता है कि कृषक का इन चक्रो को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों पर नियन्त्रण नही रहता है। साधारणत. अनियमित चक्र पूर्ण रूप से फसलों तक सीमित रहते हैं। इन चक्रो को फार्म उत्पादो के उत्पादन मे अधिक महत्व नही दिया जाता है। कृषक अपने उत्पादन के मान को बदलने के लिए पैदावार की मात्रा में परिवर्तन करते हैं और पैदावार में उच्चावचन उत्पन्न होता है। सामान्यत: कृषक पैदावार की मात्रा मे नियन्त्रण नही कर पाता है, परन्तु वह अपने द्वारा बोयी जाने वाली फसल के क्षेत्रफल मे तथा पाले जाने वाले पशुओ की सख्या मे सुधार कर सकता है।

कृषक किसी वस्तु की पैदावार की मात्रा निश्चित करते समय उस उपज की भविष्य की लाभदेयता तथा अन्य वस्तुओं (जिन्हे वह उत्पन्न कर सकता है) की सापेक्ष लाभदेयता की तुलना करता है। जिस वस्तु के उत्पादन मे लाभदेयता अधिक होती है, उसे उत्पन्न किया जाता है। कृषक भविष्य की सम्भावनाओ के आधार पर निर्णय नही लेते हैं। इसके अतिरिक्त यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि कृषक अपने निर्णय विद्यमान आयो (कुल प्राप्ति और मूल लागतो का अन्तर) या विद्यमान कीमतो की प्रतिक्रियाओ के अनुसार करते हैं। उपज की मांग लोचहीन होने से आय और कीमतो मे एक साथ उच्चावचन होता है। कृषक की आय और उपज की कीमतें उपज के कम होने से अधिक रहती हैं। परन्तु उत्पादन की मूल लागतें सापेक्ष रूप से कुल लागतो की तुलना मे अधिक होने पर कम मात्रा की पैदावार, कुल लागतो को घटा देती है। ऐसी स्थिति सुअर-पालन मे पायी जाती है। कभी-कभी यह भी सम्भव होता है कि कीमतें और बढ़ी हुई आय दोनों अधिक हो जायें। मांग के लोचहीन होने पर और मूल लागतो का कीमत से सापेक्ष रूप मे कम होने पर, कीमत और आय आपस मे प्रतिलोम दिशा मे सचालित होती हैं।

कृषक भिन्न प्रकार से कार्य करते समय किन तत्वो के द्वारा सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, यह स्पष्ट करने वाला कोई भी प्रमाण उपलब्ध नही है। कुछ कृषक विद्यमान आय के बने रहने और कुछ विद्यमान कीमत के पाये जाने

के बारे मे विचार करते हैं। परन्तु उपज की पैदावार औसत मात्रा के उत्पादन की ओर प्रत्यावर्तित होने से निश्चित चक्र उत्पन्न नही करती है।

कुछ अन्य उत्पादो की कीमतें और आय एक साथ सक्रिय होती हैं। इन उत्पादो को उत्पन्न करने वाले कृषक लागतो की अपेक्षा कीमतो के अधिक होने पर अपनी पैदावार को बढाने का और कीमतो के कम होने पर पैदावार की मात्रा कम करने का निर्णय लेते हैं। ऐसे निर्णयो से बाजार मे पूर्ति अधिक होने पर किसी भी तरह का अनावश्यक विस्तार या सकुचन अपना आर्थिक प्रभाव नही डाल पाते हैं, अपितु उपर्युक्त परिवर्तन तुरन्त प्रतिवर्तित हो जाते हैं। दूसरे शब्दो मे, पूर्ति के परिवर्तन उस वर्ष की उपज की मात्रा को परिवर्तित करते हैं, जिसके बाद इस फसल को बोया जाता है और जिसके पूर्व आगामी फसल को रोपा जाता है। यदि कृषक पहले से यह तय कर लेते हैं कि अगले मौसम म कौन-सी उपज बोना है तथा कीमतो मे उस समय बहुत अधिक परिवर्तन होते हैं, तो वे अपने पूर्व निर्णयो मे सुधार कर लेते हैं। वास्तव में, बोयी गयी उपजो का क्षेत्रफल कटाई के मौसम मे विद्यमान कीमतो से अनुक्रिया करता है। सन् 1914-18 के युद्ध के पूर्व कृषकों ने एक वर्ष पहले निर्णय लिया था। वैयक्तिक उपजो मे पायी जाने वाली चक्रीय गति और अन्य चक्रीय परिवर्तनो की सम्भावना करना आवश्यक नहीं है क्योंकि पैदावार के चक्रो से कीमतो मे चक्रीय परिवर्तन होते हैं।

पशु-उत्पादो और कृषि-उत्पादो की पैदावार में वृद्धि तथा बाजारो मे अधिक मात्रा मे पूर्ति करने के सम्बन्ध मे लिये जाने वाले निर्णयो मे अन्तर होता है।[1] कृषि-पैदावार की वृद्धि करने के लिए एक वर्ष म एक से अधिक बार निर्णय लिया जाता है। परन्तु पशु उत्पाद की वृद्धि करने के लिए 3 वर्ष और कॉफी की पैदावार बढाने के लिए 5 वर्ष मे निर्णय लिया जाता है। जो कृषक बढी हुई कीमतो के प्रति शीघ्र अनुक्रिया करते हैं, वे यह ज्ञात करते हैं कि अन्य कृषको ने उनके समान कार्य किया है या नही। वे यह भी अनुभव नही कर पाते हैं कि उन्होने अनावश्यक मात्रा मे पैदावार बढा ली है या नही। अन्य कृषको के पास दोषपूर्ण गणना के प्रकट होने का समय रहता है। वे गलत निर्णय भी नही लेते हैं। वास्तव मे, उपर्युक्त आर्थिक क्रियाएँ ही समस्त आर्थिक क्रियाएँ नही होती हैं। एक पशु कई वर्षों तक बच्चे पैदा कर सकता है। इग्लैण्ड मे सुअर के लिए औसत समय 3 वर्ष तथा गाय के लिए 5 वर्ष से

---

1. अध्याय 6, उप-शीर्षक 2 देखिए।

अधिक होता है। पशु एक बार बच्चा पैदा करने के बाद वध के लिए सापेक्ष रूप म कम कीमत प्राप्त करते हैं। इसलिए पशुओं से प्रजनन की क्रिया के माध्यम स अधिक मात्रा म धन प्राप्त होता है। पशुओं का पहली बार सहवास कराने मात्र स ही अधिक लाभ नहीं मिलता है। इसी प्रकार वृक्ष एक बार रोपण किये जाने के बाद कई वर्षों तक फल देते रहते हैं। कॉफी का एक वृक्ष लगभग 10 से 12 वर्ष की अवधि म अपनी अधिकतम पैदावार की स्थिति मे पहुचता है। बीस वर्ष से ज्यादा पुराने होने पर ही उसमे पैदावार कम होती है। यहाँ तक कि जब भूलें खोज ली जाती हैं तो उपयुक्त लागत द्वारा परिशोधन कर दिया जाता है।

कीमतो के कम रहने पर पशुओं का पहला सहवास देरी से कराने मे लाभ होता है। ऐसे समय मे उत्पादक पैदावार की मात्रा मे सकुचन करना शुरू कर देते हैं। इसके विपरीत कीमतो के अधिक रहने पर, वे पैदावार की मात्रा मे विस्तार करना शुरू कर देते हैं। एक विशेष अवधि मे आर्थिक दाब प्रकट हो जाने पर पुन पूर्ति कम हो जाती है और उपज की कीमतें अधिक हो जाती हैं।

अति उत्पादन और अव-उत्पादन के चक्र म स्वय शाश्वतत्व गुण रहता है। इसके कारण प्रारम्भिक स्थिति म अनुकूल कीमत से पैदावार की मात्रा मे वृद्धि होती है और बाजार म तत्सम्बन्धित उपज की पूर्ति अधिक होती है। इससे कीमतें कम होती हैं और कृषक पैदावार की मात्रा को कम करने का निर्णय लेते हैं। कुछ समय उपरान्त पूर्ति की कमी के कारण कीमतें पुन बढती हैं। इस प्रकार का स्वय शाश्वत-चक्र मांग और पूर्ति की लोचो म विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को उत्पन्न करता है। परन्तु यहाँ इस सन्दर्भ मे आगे विचार करना आवश्यक नही है। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि कृषकों को अपने अनुभव के द्वारा इस स्वय-शाश्वत आर्थिक चक्र की जानकारी नहीं मिलती है। यह कहना भी अत्यधिक कठिन है कि कृषक ऐसा क्यों नहीं करते हैं। परन्तु यह सत्य है कि आर्थिक चक्र उत्पन्न होते हैं और कृषक उनके अनुभव स नहीं सीख पाते हैं।

आर्थिक चक्र की लम्बाई (अवधि) एक उत्पाद से दूसरे उत्पाद के लिए भिन्न होती है। उदाहरणार्थ—

(1) सुअरो के लिए एक चरम स्थिति स दूसरी चरम स्थिति तक की अवधि लगभग 4 वर्ष होती है।

(ii) चूंकि भेड परिपक्व होने मे अधिक समय लेती है। अत उसकी यह अवधि 6 से 9 वर्ष की होती है।

(iii) गोमास निर्यात करने वाले देशो मे पशुओ के लिए यह अवधि 15 से 18 वर्ष तक होती है। एक देश से दूसरे देश मे पशु पालन की गहनता मे अन्तर होता है।

पशु उत्पाद की पैदावार मे वृद्धि करना जितना सरल होता है, उनकी पूर्ति मे उतने ही अधिक उच्चावचन होते हैं, कोई पशु-उत्पाद बाजार मे जितनी जल्दी बिक जाती है, उसकी मांग उतनी ही अधिक लोचहीन होती है। लोचहीन मांग के कारण कीमतें अधिक मात्रा मे परिवर्तित होती हैं। सुअर के उत्पादन से सम्बन्धित आर्थिक चक्र विशेषकर निश्चित होते हैं क्योकि सुअरो की सख्या 1 वर्ष की अपेक्षा कम अवधि के मध्यान्तर मे रूपान्तरित की जा सकती है। ब्रिटेन मे कई पशुओ के सम्बन्ध मे उपर्युक्त चक्र निश्चित नही है। इसका कारण उन पशुओ की मांग का एक वर्ष मे लोचदार होना है। वैसे इन पशुओ की उत्पाद की निर्यात करने वाले देशो मे विपणन की लागत अधिक होने से व्यापारियो की मांग लोचहीन पायी जाती है।

'नियोजित पैदावार' मे उपर्युक्त उच्चावचन कृषको की आय मे अनियोजित उच्चावचनो के समान परिवर्तन करने मे समर्थ होते हैं। 'नियोजित पैदावार' के किसी एक परिवर्तन के द्वारा पूर्ति अधिक होने से लागतो मे विस्तार होता है। साधारणत लागतो के विस्तार का कारण रोपण या प्रजनन और कटाई की अधिक लागत होती है। इन लागतो मे कमी होने से प्रति इकाई पैदावार का रूपान्तरण अधिक होता है। इसका सरल अर्थ यह है कि व्यापारियो की मांग लोचहीन होने पर कृषक की कुल प्राप्ति और कुल मूल लागतें एक साथ परिवर्तित होती हैं। इन दोनो मे वृद्धि होती है। कृषक की आय, पैदावार मे वृद्धि होने पर नियोजित पैदावार के उच्चावचनो के कारण उस राशि से कम होती है, जो तत्सम्बन्धित अनियोजित पैदावार की स्थिति मे उसे प्राप्त होती है। इसके विपरीत मांग लोचहीन होने से कृषक की कुल प्राप्ति और लागतें आपस मे विशुद्ध दिशा मे सचालित होती हैं और नियोजित पैदावार के परिवर्तन कृषक की आय मे 'अनियोजित पैदावार' के द्वारा आय मे लाये जाने वाले परिवर्तनो की अपेक्षा अधिक मात्रा मे उच्चावचन उत्पन्न करते हैं।

6 सामान्य कृषि चक्र (The General Agricultural Cycle)

कुछ उत्पादो मे, चक्रीय उच्चावचन एक-दूसरे से टकराने के कारण उनकी पैदावार की चरम मन्दी की स्थिति की सम्भावना करने के स्पष्ट कारण नही

मिलते हैं। ऐसी उत्पादों की कीमत और पैदावार के परिवर्तनों के बीच अन्तर भिन्न मात्रा में पाया जाता है, परन्तु समस्त कृषि कीमतों और समृद्धि में सामान्य चक्र (General cycle) के लक्षण स्पष्टतः दिखते हैं। इस सामान्य व्यवसाय चक्र के एक अंश का अनुभव आर्थिक क्रियाओं की समस्त शाखाओं में किया जाता है। कृषि के अध्ययन को इससे पृथक् नहीं किया जा सकता। सन 1914 18 के प्रथम महायुद्ध के पूर्व कृषि चक्र की अवधि एक चरम स्थिति से दूसरी चरम स्थिति के बीच लगभग 7 या 8 वर्ष थी। इस काल में कई देशों में कृषि में चरम या मन्दी की स्थिति उत्पन्न हुई थी। उस महायुद्ध के पश्चात सन् 1920 और सन् 1929 में ग्रेट ब्रिटेन को छोड़ कर शेष कई देशों में चरम स्थिति पायी गयी थी। इसी प्रकार, सन् 1937 में भी हुआ। सन 1921, 1922 1932 और 1933 के लगभग मन्दी अपनी चरम स्थिति तक जा पहुँची।

व्यवसाय चक्र (Trade cycles) की गतिविधि और कारणों के सम्बन्ध में विवेचन इस पुस्तक के विषय क्षेत्र के बाहर है परन्तु इनके अध्ययन की पूर्णरूप से उपेक्षा उचित नहीं है, क्योंकि यह सन्देह हो सकता है कि कृषि की समृद्धि व्यापार चक्रों की अधिक समीपता के कारण अन्य आर्थिक तथ्यों की अपेक्षा व्यापार-चक्रों से अधिक सम्बन्धित है।

कुछ लेखकों के मन में कृषि पैदावार व्यापार चक्रों का उत्पन्न करने वाला या प्रेरणा देने वाला प्रमुख कारण है। इन लेखकों ने उपजों की पैदावार के परिवर्तनों और आर्थिक समृद्धि या मन्दी के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध की खोज की है। वे पैदावार के अन्तर का स्पष्टीकरण ऋतु चक्रों (Weather cycles) की सहायता से करते हैं। यद्यपि यह स्पष्टीकरण अधिक सम्पन्न प्रतीत नहीं होता है। उनके मत में एक अच्छी फसल व्यापार को प्रेरणा देती है और खराब फसल उसे अवरुद्ध करती है।

उपर्युक्त सिद्धान्त के सम्बन्ध में कई निम्नलिखित आपत्तियाँ की गयी हैं—

(1) फसलों के चक्रों की अवधि 6 या 7 वर्ष के स्थान पर लगभग $3\frac{1}{2}$ वर्ष होती है। उपर्युक्त सिद्धान्त में यह बतलाया गया है कि अच्छी फसल, अन्य साधनों के अनुकूल रहने पर आर्थिक क्रियाओं को प्रेरणा देती है परन्तु व्यावहारिक जीवन में सदैव ऐसा नहीं होता है।

(2) अच्छी फसलें कृषक की आय को माँग की लोच कम होने पर घटा देती हैं। सब फसलो को एक साथ लेने पर ऐसा ही होता है। इस प्रकार की स्थिति मे खाद्य-सामग्री सस्ती हो जाती हैं, परन्तु यह सन्देहास्पद है कि सस्ती खाद्य-सामग्री व्यापार को अल्पकाल मे प्रोत्साहन देती है। ऐसी स्थिति मे यातायात की माँग अधिक हो जाती है। उद्योग म कच्चा सामान के रूप में कृषि-उत्पाद के उपयोग से लागतें गिर जाती है और पैदावार बढ जाती है। साधारणत कृषि-उत्पाद तुलनात्मक रूप मे औद्योगिक कच्चे समान[1] के रूप मे ज्यादा महत्त्वपूर्ण नही होते है। एक गणना के अनुसार, यह देखा गया कि सयुक्त राज्य अमेरिका मे औद्योगिक निर्माण के लिए उपयोग की गयी कृषि-पैदावार का मूल्य समस्त पैदावार के मूल्य का लगभग $\frac{1}{8}$ भाग था।

उपर्युक्त विवाद आज भी अनिर्णीत है। इस सन्दर्भ मे यहाँ पूरी तरह से बहस भी नही की जा सकती है। अब ऐसे लोग बहुत कम बचे हैं जो यह दावा करते हैं कि उपजो की पैदावार के उच्चावचनो से समस्त व्यापार चक्र को समझा जा सकता है।

व्यापार चक्र का कारण कृषि पैदावार का स्वभाव हो या न हो; यह सत्य है कि व्यापार-चक्र कृषको को प्रभावित करते हैं। इसके सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण मुद्रा-आय (Money-income) के उच्चावचन, मजदूरी की भुगतान की दरो मे परिवर्तन और कृषि-कार्य करने वाले लोगों की सख्या मे परिवर्तन मे प्रकट होते हैं। उदाहरणार्थ—

(i) सन् 1927-29 और 1933 के बीच ग्रेट ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय, मुद्रा के आधार पर 11 % कम हुई थी और सन् 1933 से सन् 1937 के बीच 29 % बढ गयी थी।

(ii) सयुक्त राज्य अमेरिका मे उपर्युक्त परिवर्तन बहुत गम्भीर थे। प्रथम अवधि मे वहाँ की राष्ट्रीय आय 42% कम हो गयी थी और दूसरी अवधि मे लगभग 50 % बढ गयी थी। पैदावार के उच्चावचन का प्रभाव मुद्रा की माँग पर पडता है।

फार्म के कृषि-उत्पादो की माँग खाद्य-पदार्थों की फुटकर खुदरा माँग की तुलना मे विपणन की लागतें कठोर होने से अधिक मात्रा मे परिवर्तित होती

1. अध्याय 2, उप-शीर्षक 1 देखिए।

हैं। यह अनुभव किया गया है कि जहाँ विपणन लागतें अधिक थी वहाँ माँग म अधिकतम कमी हुई थी। कृषि उत्पाद को अधिक दूरी तक ले जाने वाले स्थानों मे एसी ही स्थिति थी। जैसे—आस्ट्रेलिया या दक्षिण अमेरिका से इग्लैण्ड को कृषि-उत्पादों का यातायात औद्योगिक उत्पादों की माँग की अपेक्षा, खाद्य-सामग्री की माँग म तेजी या मन्दी के समय कम मात्रा म उच्चावचन होता है। इसके कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित है—

(1) आय मे कमी होने के कारण खाद्य-सामग्री के उपभोग मे सबसे अन्त मे कटौती की जाती है।

(2) खाद्य सामग्री न केवल आवश्यकता होती है बल्कि नाशवान् भी होती है। इन वस्तुओं का क्रय न तो द्रुतगति से किया जा सकता है और न विक्रेता की परिस्थितियों को देखन म टाला जा सकता है। लोग अपनी आय मे कमी होने पर कपड़ो की खरीद या घर की मरम्मत तो कुछ समय के लिए रोक लेते हैं परन्तु उनके लिए खाद्य सामग्री खरीदना आवश्यक होता ही है। इसलिए आय मे कमी होने से खाद्य-सामग्री की माँग अन्य वस्तुओं की माँग की अपेक्षा कम मात्रा मे गिरती है और आय मे पुन वृद्धि होने से माँग मे कम तीव्रता म वृद्धि होती है। साधारणत खाद्य सामग्री की कटौती मे कपड़े के उपभोग की कमी के समान बचत करने की अधिक गुजाइश नही रहती है।

कृषि की अपेक्षा उद्योग म माँग के उच्चावचन अधिक होते हैं। सामान्यत पूर्ति के परिवर्तन इन उच्चावचनो को रूपान्तरित करते हैं। कृषि मे पूर्ति, कीमत के परिवर्तनो के साथ निश्चित रूप से अनुक्रिया नही करती है। कृषिप्रधान देशो मे कीमत की कमी से खाद्य-सामग्री की पूर्ति अधिक होती है। खाद्य-सामग्री की माँग मे कमी उद्योग की अपेक्षा कृषि की कीमतो म अधिक मात्रा मे परिवर्तन करती है। यह चक्र, उद्योग के समान, कृषि पैदावार मे नही बन पाता है। बल्कि कृषि-उपज कीमतो और कृषक के लाभो के बीच बनता प्रतीत होता है।

कृषि-उत्पादो की पूर्ति औद्योगिक उत्पादो की पूर्ति के समान अल्पकालीन कीमत परिवर्तनो के साथ अनुक्रिया नही करती है, इसलिए साधारणत कृषकों की आर्थिक स्थिति खराब पायी जाती है। अवसाद (मन्दी) के काल मे औद्योगिक पैदावार मे गिरावट होने से, उद्योगपति उपलब्ध आय का बड़ा हिस्सा

प्राप्त करते हैं, परन्तु कृषक अपनी वास्तविक आय मे कमी होने से कष्ट उठाते हैं। अवसाद (मन्दी) के समय एक कठिनाई यह होती है कि औद्योगिक पैदावार मे सकुचन कृषि-पैदावार को यथावत् रखने के लिए नही बल्कि औद्योगिक परिस्थितियो के कारण होता है।

● ●

अध्याय 9

कृषि में राज्य का हस्तक्षेप

(STATE INTERVENTION IN AGRICULTURE)

1 हस्तक्षेप के कारण (Reasons for Intervention)

गत अध्यायों में आर्थिक विश्लेषण करते समय यह मान्यता स्वीकार की गयी थी कि कृषक खुली प्रतियोगिता (Free competition) के अन्तर्गत कृषि-कार्य और कृषि उपज का विक्रय करते हैं। कृषक या उनके संगठन, कृषि-उपजों में थोड़ा सा रूपान्तरण, एकाधिकार की स्थिति या विपणन के कार्य भी करते हैं। अभी तक हमने कृषि उत्पादन और विक्रय प्रक्रिया के बारे में विचार करते समय राज्य द्वारा हस्तक्षेप या सहायता करने के लिए किये जा सकने वाले उपायों पर ध्यान नहीं दिया है। वास्तव में, कृषि के क्षेत्र में राज्य द्वारा कुछ सीमा के अन्दर सदैव हस्तक्षेप किया गया है। पिछले महायुद्ध के कई वर्ष पूर्व प्राय सभी देशों में राज्य के हस्तक्षेप का महत्त्व इतना अधिक हो गया था कि राज्य कृषि के विकास का एक मुख्य कारण माना जाता था। युद्धकाल में तथा उसके पश्चात् स्थिति अधिक स्पष्ट हो गयी है। अब यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होता है कि राज्य के हस्तक्षेप को कृषि-बाजार पर प्रभुत्व स्थापित हो गया है।

युद्ध के पूर्व फार्मिंग के कार्य में राज्य को विशेष ध्यान देने की प्रेरणा देने वाले कुछ कारण आज भी विद्यमान हैं। ये महत्त्वपूर्ण कारण कृषि और उद्योग के बीच पाये जाने वाले अन्तर के द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस अन्तर को स्पष्ट करने वाले निम्नलिखित विषयों पर पर्याप्त विवेचन किया जा चुका है—

(1) कृषि एक खास तरीके से भूमि पर निर्भर है। भू-स्वामित्व और

उत्तराधिकार दोनो बातें बुनियादी तौर पर महत्त्वपूर्ण होती है। इन बातो का एक सीमा तक राज्य के द्वारा निर्धारण होना लाभप्रद होता है।

(2) फार्मिंग वास्तव मे छोटे पैमाने का उद्योग है। इसलिए कृषक बडे पैमाने के उपक्रमो की उपयोगी सेवाओ का प्रयोग कृषि के उत्पादन उपभोग व सगठन मे नही कर पाते है। कृषि के लिए आवश्यक मात्रा मे पूंजी प्राप्त करना कठिन होता है। कृषक को ये कठिनाइयाँ मध्यस्थ लोगो से मोलभाव करते समय नुकसान की स्थिति मे ला कर खडा कर देती हैं।

(3) सम्पूर्ण विश्व मे कृषि सापेक्षत एक मन्दा उद्योग रहा है। बढती हुई योग्यता और जीवनस्तर ने जनसख्या के एक अपेक्षाकृत छोटे भाग को अत्यन्त आवश्यक अनिवार्यताओ (खाद्य-सामग्री) के उत्पादन मे जुटे रहने के लिए बाध्य कर दिया है। अत उत्पादन के साधन कृषि के बाहर कार्य करने मे धीमे रहते हैं।

(4) कृषि-उत्पादो की कीमतो तथा कृषक के लाभों मे विशेषत बहुत तेज उच्चावचन होता है क्योकि कृषि-उत्पादो की पूर्ति माँग के साथ अल्पकाल मे समजन नही कर पाती है।

(5) कई सामाजिक और राजनैतिक साधनो के सम्बन्ध मे यह स्वीकार कर लिया गया है कि वे फार्मिंग म विशेष उपचार के लिए समाश्वासन करते थे या सहयोग देना आवश्यक समझते थे।

कृषि मे राज्य के हस्तक्षेप के लिए प्ररणा देने वाले कुछ उपर्युक्त कारण, द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अभी भी क्रियाशील हैं। यथा—(i) कृषि अभी भी एक खास तरीके से भूमि पर निर्भर है (ii) अधिकाश फाम छोटे है, और (iii) कृषि की कीमतो और लाभो मे, बाह्य नियन्त्रण की कमी के कारण तेजी से उच्चावचन होता है, सम्भवत युद्ध पूर्व समय से कुछ अधिक ही। परन्तु कम-से-कम वर्तमान मे अमेरिका के अलावा अन्य देशो मे कृषि के विकास के लिए अधिक स्रोतो की आवश्यकता है। खाद्य-सामग्री का उत्पादन युद्ध के कारण यूरोप और पूर्वी देशो मे बहुत कम हो गया है। परन्तु विश्व की जनसख्या तेजी से बढने के कारण निर्माण की गयी वस्तुओ की कीमतो की अपेक्षा खाद्य सामग्री की कीमतें अधिक ऊँची हुई हैं। पहले की अपक्षा रोजगार की स्थिति भी अधिक अच्छी है। खाद्य सामग्री की पूर्ति विशेषकर अमेरिका के द्वारा की जा रही है। यूरोप मे कृषि-उत्पाद बहुत अधिक सीमा तक मार्शल सहायता-योजना (Marshall Aid) के द्वारा प्राप्त हो रहे हैं।

साधारणत कृषि उत्पाद अन्य देशों मे इतनी अधिक मात्रा मे निर्यात करने के लिए उत्पन्न नहीं होते हैं, जिससे अमेरिका की पसन्द के अनुसार भुगतान प्राप्त किया जा सके। अमेरिका मे खाद्य-सामग्री के उत्पादन मे विस्तार उस समय किया गया, जब अन्य देश युद्ध मे सलग्न थे और वहाँ से आयात नहीं किया जा सकता था। खाद्य पदार्थों का वर्तमान उत्पादन युद्ध-पूर्व की स्थिति की तुलना मे आजकल अधिक सन्तोषप्रद स्थिति मे है। परन्तु आजकल बडे पैमाने की कृषि की आवश्यकता सभी देशो मे एक मत से स्वीकार की जा रही है। यूरोपीय तथा पूर्वीय देशों के उत्पादन के क्षति-मुक्त होते ही विश्व म खाद्य सामग्री की कीमतें गिर जाती हैं। परन्तु विश्व की जनसख्या तेजी स बढने, कई देशो मे उद्योगो का विकास किये जाने, और रोजगार की स्थिति अधिक जल्दी खराब होने के कारण अन्य कीमतो की अपेक्षा खाद्य सामग्री की कीमतें अधिक ऊँची हुई हैं। चूंकि इग्लैण्ड की समुद्र पार देशो की परिसम्पत्ति समाप्त हो गयी है, इसलिए वह अपने आयात का भुगतान समुद्र पार की परिसम्पति के ब्याज द्वारा नहीं कर सकता है। फलस्वरूप उसे अपने निर्यात को नये बाजारो मे जबरदस्ती भेजना पडता है और ऐसा करते समय सम्भवत उसे अपनी कीमतो को नीचे रखने की बलि देनी पडती है।

प्रारम्भ मे ऐसा प्रतीत होता था कि इग्लैण्ड मे कृषि के क्षेत्र मे राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता इसलिए नहीं पडेगी कि वहाँ के बाजार की शक्तियाँ (Forces of market) कृषि को सापेक्षत एक मन्दा उद्योग बनाती थी। परन्तु इस स्थिति के बावजूद यहाँ की कृषि के विस्तार के लिए राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है।

युद्ध के दौरान तथा-बाद मे, कृषि के क्षेत्र मे सरकारी हस्तक्षेप का यही मुख्य कारण है। इग्लैण्ड म मुद्रा आय की आवश्यकता से अधिक वृद्धि ने मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिए कुछ आर्थिक उपायो को महत्त्वपूर्ण बना दिया है, क्योंकि अतिरिक्त आय का खर्च करने के लिए तत्सम्बन्धित उपभोग्य वस्तुओं की कमी पायी जा रही थी। ये आर्थिक उपाय निम्नलिखित हैं—

(i) कीमतो पर नियन्त्रण (Price-control),

(ii) जीवनस्तर (Standard of living) की लागत को कम करने के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं को बजाय आर्थिक सहायता,

(iii) वस्तुओं के निर्दिष्ट वितरण के लिए पूर्ति का नियन्त्रण, और

(iv) राशनबन्दी इत्यादि।

इस उपसंहारात्मक अध्याय मे कृषि-क्षेत्र मे राजकीय कार्यों की आर्थिक तर्क-संगति (Economic justification) की रूपरेखा को विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही यहाँ ऐसे अन्य राजकीय हस्तक्षेप का उल्लेख भी किया गया है, जिनके प्रति आर्थिक आपत्तियाँ उठायी जाती है। सरकार द्वारा किये गये इस प्रकार के कार्य अशत आर्थिक माने जाते हैं। जब उपलब्ध पूर्ति से कृषि-उपज की कुल मांग अधिक नहीं होती है, तब ऐसी स्थिति मे कीमतो का समजन करने के लिए आवश्यक सरकारी कार्यों पर इस अध्याय मे विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया है। यहाँ कुछ ऐसे सरकारी नियन्त्रणो के बारे मे भी लिखा गया है, जो कीमत को एक स्तर के नीचे रखे जाने के लिए अत्यन्त उपयोगी होते हैं। इस अध्याय को उपर्युक्त विषयों की एक सामान्य रूपरेखा कहा जा सकता है। चूँकि एक राज्य की कृषि सम्बन्धी नीति के विश्लेषण के लिए एक अध्याय के स्थान पर एक पुस्तक लिखने की आवश्यकता होती है और विभिन्न राज्यो की कृषि-नीति मे भिन्नता के कारण अनेक पुस्तको का लिखना जरूरी होता है, अत. इस अध्याय मे इन कृषि-नीतियो के विवेचन की अपेक्षा करना उचित नहीं है।

2. उत्पादन में राज्य का हस्तक्षेप
(State Intervention in Production)

कृषि के क्षेत्र मे राज्य के हस्तक्षेप का सबसे पहला तरीका फार्म मे उत्पादन की योग्यता सुधारने के लिए बनायी गयी उपयोगी रीतियाँ है।

राज्य की नीति मे भूमिगत सम्पत्ति और भू-स्वामियो द्वारा फार्मिंग मे किये जाने वाले नियन्त्रण पर प्रभाव डालने का गुण होना आवश्यक होता है। इस अध्याय मे सम्पत्ति के स्वामित्व और उत्तराधिकार सम्बन्धी गुणो का विवेचन नहीं किया जा सकता है, परन्तु कृषि पर पडने वाले इनके प्रभावों का संक्षिप्त ज्ञान कराया गया है। राज्य भू स्वामित्व के सबसे फैले हुए वितरण को प्रोत्साहित करता है, जिससे सम्पत्ति का स्वामित्व अधिक मात्रा मे फैल सके। राज्य गैर-आर्थिक छोटे फार्मों की नयी समस्याओ का स्वय सामना करता है। वह ऐसी पद्धति को ढूंढ निकालने की आवश्यकता समझता है ताकि कृषको को पर्याप्त मात्रा मे पूँजी प्राप्त हो सके।[1] जर्मनी मे इसी प्रकार के कदम उठाये गये थे। छोटे फार्मों को भविष्य मे टूटने से बचाने के लिए राज्य को चाहिए कि कुछ मात्रा मे भूमि को अपरिवर्तनीय सम्पत्ति

1. अध्याय 4, उप-शीर्षक 7 देखिए।

बना दे और उसके गिरवीं रखने या विक्रय करने पर प्रतिबन्ध लगा दे। या बड़ी कृषि सम्पदा बनाये रखने के लिए शासन अनुज्ञा और चाहे तो अन्य रूप मे प्रोत्साहन भी दे सकता है। इन फार्मों के भू-स्वामी अपनी जमीन किसानो को किराये पर देते हैं। शासन को पट्टेदारी-प्रणाली के सम्बन्ध मे ऐसी नीति अपनानी चाहिए, जिसमे काश्तकार को पट्टेदारी की सुरक्षा और उद्यम करने की स्वतन्त्रता मिले। इसके अलावा उस नीति में इस प्रकार का प्रावधान भी हो जिससे भू-स्वामी भूमि में लगायी गयी पूंजी के लिए सुरक्षा तथा बुरे पट्टेदारो को हटाने का अधिकार प्राप्त करे। इससे योग्य कृषको द्वारा कृषि की जा सकेगी। इग्लैण्ड मे कृषि-सम्बन्धी नीति का यही उद्देश्य रहा है परन्तु उपर्युक्त दोनो लक्ष्यो को एकीकृत करना सरल काम नही है। इस नीति मे पहला लक्ष्य अर्थात् पट्टेदारी की सुरक्षा पर अधिक-से-अधिक बल देने की प्रवृत्ति रही है।

बडी सम्पदा के प्रावधान और कम ब्याज की दर भू-स्वामी द्वारा पूंजी का प्रबन्ध करने से फार्म का आकार आर्थिक हो जाता है।[1] इन फार्मों के आकार भू-स्वामी-दखलदारी प्रथा के अन्तर्गत पाये जाने वाले फार्मों के आकार से भिन्न होता है। परन्तु सम्पदा की दीर्घकालीन पूंजी का बहुत-सा हिस्सा हानिकारक कारणो के द्वारा नष्ट भी हो जाता है। इससे फार्मों की योग्यता मे ह्रास होता है। उदाहरणार्थ—भू-स्वामी की मृत्यु पर किया गया करारोपण या उसका अतिव्ययी या दानशील स्वभाव दीर्घकालीन पूंजी को नष्ट करता है। सम्पदा-प्रणाली मे एक दोष यह भी पाया जाता है कि कई भू-स्वामी या तो बड़े अन्यमनस्क स्वभाव वाले हैं या फिर मूर्ख होते हैं, सो वे अपनी जागीर का निरीक्षण नही कर पाते हैं। भू-स्वामी कृषक-पद्धति और स्वामी-दखलदारी पद्धति मे उपर्युक्त दोषो के अतिरिक्त निम्नलिखित दो दोष भी पाये जाते हैं।

(1) मृदा की उत्पादन-शक्ति किसी भी हालत मे हमेशा अक्षय नही होती है। यह उत्पादन-शक्ति अनावश्यक उपजो की पैदावार से कम हो जाती है। निजी स्वामी भविष्य के बारे मे विचार नही करते हैं। उदाहरणार्थ—(1) मध्य-पश्चिमी अमेरिका के किसानो ने इतने अधिक सूखे खेतो मे हल चला कर गेहूँ बोया था कि भूमि अच्छी मृदा के उड जाने से प्रायः मरुस्थल बन गयी थी। यदि इस भूमि मे भैंसो को खिलाया जाने वाला घास लगाया गया होता तो

1. अध्याय 4, उप-शीर्षक 2 देखिए।

वहां पशुओं को चराई लगातार की जा सकती थी और भूमि मे नमी का सचय किया जा सकता था।

(2) भू-स्वामी समीप के शहर के विकास या यातायात के साधनो मे सुधार के कारण अपनी भूमि के मूल्य मे अनायास वृद्धि (Unearned-increment) प्राप्त करते हैं, क्योंकि उनकी भूमि की माँग बढ जाती है। आय की इस वृद्धि का वितरण आवश्यकता के अनुसार करना सम्भव नही होता है।

उपर्युक्त दोषो को दूर करने के लिए इग्लैण्ड मे आधुनिक कानून बनाये गये हैं, जैसे—(i) सन् 1947 के कृषि कानून (Agriculture Act of 1947) के अनुसार भू-स्वामी और भू-कृषक, दोनो से भूमि का अधिकार उस समय छीना जा सकता है। यद्यपि पर्याप्त परिवीक्षण के बाद[1] जब वे 'अच्छी सम्पदा' के प्रबन्ध के नियमो का पालन नही करते है या 'सर्वोत्तम कृषि' करने के बतलाये गये स्पष्ट तरीको को नही अपनाते हैं। भू-स्वामी और कृषक का अधिकार छीनने के पूर्व उन्हे अपील करने का अधिकार दिया गया है और विशेष मात्रा मे मुआवजा पाने का प्रावधान किया गया है। इस कानून के प्रावधानो का प्रयोग सदैव नही होता है क्योकि इनका निर्माण चरम अवस्थाओ के लिए किया गया है। (ii) नगर एव ग्रामीण नियोजन कानून (Town & country planning Act) के अन्तर्गत भूमि के स्वामी के स्थान पर समाज को ऐसे समय लाभ पहुँचाया जाता है, जब किसी भूमि का दूसरा उपयोग किया जाता है। कभी-कभी परिस्थितियाँ इस तरह बदल जाती हैं कि भूमि का वर्तमान उपयोग सर्वाधिक लाभप्रद होता है। इस प्रकार की स्थिति म उपर्युक्त विचार लागू नही होता है।

ऐसा सुझाव दिया गया है कि राज्य द्वारा भूमि के स्वामित्व को स्वय ले लेने से उपर्युक्त कठिनाइयाँ बडी सरलता से सुलझायी जा सकती हैं। भूमि का राष्ट्रीयकरण करते समय कृषको का स्वामित्व कायम रखा जा सकता है। बडे सम्भागों का परिवीक्षण पूर्णतया व्यावसायिक प्रबन्धकों द्वारा किया जाना है। फार्मों की स्थापना सबसे योग्य साइज मे करने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य भू-सरक्षण के सम्बन्ध मे किसी दीर्घकालीन

1. अध्याय 9, उप-शीर्षक 3 देखिए।

योजना पर विचार कर सकता है और इस तरह भूमि के मूल्यों में किसी भी प्रकार की वृद्धि प्राप्त कर सकता है।

भूमि के राष्ट्रीयकरण के विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं—

(1) भूमि का राष्ट्रीयकरण लोगों को भूमि के स्वामित्व से मिलने वाले सन्तोष से वंचित करता है। कृषक के लिए सस्ती पूंजी के स्रोतों और सुख के वास्तविक तत्वों का निरसन हो जाता है।

(2) स्वामी के द्वारा किये जाने वाले नियन्त्रण की तुलना में किसी अन्य व्यक्ति को सौंपा गया प्रबन्ध, प्राय यह सुझाया गया है कि कम योग्य होता है।

(3) राज्य फार्मों के साइज निश्चित करते समय आर्थिक उद्देश्यों से तालमेल नहीं बैठा पाते हैं बल्कि फार्मों के साइज की कमी होने की हमेशा सम्भावना बनी रहती है। इसका कारण छोटे पैमाने की कृषि की आर्थिक नीति स्वीकार करना है।

उपर्युक्त विचारों का परस्पर महत्त्व संक्षिप्त तर्कों के माध्यम से अंकित नहीं किया जा सकता है। यह सुझाव भी नहीं दिया जा सकता है कि विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत भू-स्वामित्व का सबसे अच्छा प्रकार कौन-सा हो सकता है? राष्ट्रीयकरण के पक्ष के तर्कों को अत्यधिक बल इसलिए मिला है कि करारोपण और जागीरों के तेजी से टूटने के कारण भूमि स्वामित्व रखने वाले वर्ग की सम्पत्ति में कमी होती है। फार्मिंग में सस्ती पूंजी उपलब्ध होने में कमी का यही कारण है। कृषि को स्थायी रूप से अधिक सहायता देने की रीतियों में उपर्युक्त तर्क अधिक मजबूत होते हैं। इसका विवेचन इसी अध्याय में आगे किया गया है। वैसे राज्य द्वारा भू-स्वामियों को आर्थिक सहायता देने के औचित्य का कोई महत्त्वपूर्ण कारण नहीं है क्योंकि प्रत्येक प्रकार के लाभ में भू स्वामी को एक हिस्सा प्राप्त होता है।

राज्य, फार्मिंग में योग्यता लाने के लिए भू स्वामित्व की प्रणाली का नियमन करने की अपेक्षा अन्य साधनों को सुधारने की दिशा में कार्य करके अधिक सफल हो सकता है। ये अन्य साधन निम्नलिखित हैं—

(1) कुछ कार्य फार्मिंग की योग्यता बढ़ाने के लिए केवल उस समय प्रभावशील होते हैं, जब सम्पूर्ण क्षेत्र को कार्यों के अन्तर्गत रखा जाता है। इसके अतिरिक्त ये कार्य अनिवार्य अधिकारों से युक्त राष्ट्रीय या स्थानीय सत्ता के लिए भी उपयोगी होते हैं। इस सन्दर्भ में संक्रामक रोग, जैसे पैर और मुंह

तब या रोग, मे पीडित एक वैयक्तिक कृषक का उदाहरण बिल्कुल निरर्थक होता है क्योंकि पड़ोसी कृषक इसके समान कार्य नही करते हैं। ऐसी स्थिति मे समस्त सावधानियाँ मूल्यहीन हो जाती हैं। उदाहरणार्थ—एक फार्म मे खेतो से नाली बनाने की योजना उस समय मूल्यहीन हो जाती है, जब उसका पड़ोसी कृषक अपनी जमीन मे पानी इकट्ठा करता है और नालियो को घनी बना लेता है। राज्य, इस तरह के अवसर पर एक क्षेत्र के समस्त कृषको को सब लोगो के हित मे बनाये गये नियमो का पालन करने के लिए बाध्य करता है।

(2) कृषक, राज्य के समान दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपनाने मे समर्थ नहीं होता है, इसलिए ऐसी क्रियाओ के लिए कृषक को सहायता देना आवश्यक होता है, जिनके परिणाम लम्बे समय तक प्रकट नही हो पाते हैं। उदाहरणार्थ—(i) भविष्य के कृषको के लिए कृषि-सम्बन्धी शिक्षा की व्यवस्था, (ii) कृषि-समस्याओ पर अनुसन्धान तथा उनके परिणामो का प्रचार प्रसार, (iii) पानी की निकासी की, अथवा (iv) उर्वरक के उपयोग की दीर्घकालीन योजनाएँ।

(3) उत्पादन से सम्बन्धित कुछ ऐसी सेवाएँ होती हैं, जिन्हें अनावश्यक व्यय के द्वारा या उनके बिना छोटे पैमाने पर अपनाया जा सकता है। कृषक, अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण या अपने व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण इन सेवाओ को, अन्य लोगो के साथ मिल कर करने को तैयार नही होता है और निजी ठेकेदार इन्हे करने के लिए अधिक मात्रा मे शुल्क लेते हैं। इस श्रेणी मे निम्नलिखित कार्य सम्मिलित रहते हैं—

(i) फार्म की मशीनो का प्रावधान करना,

(ii) उर्वरक और खाद्य सामग्री जैसी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को थोक कीमत मे खरीदना, और

(iii) सस्ती शर्तों मे पूँजी प्राप्त करने के लिए उत्पादको की संयुक्त साख को गिरवी रखने हेतु समितियो का सगठन करना।

राज्य इन सेवाओं को या तो स्वत: उपलब्ध करता है, जैसे इग्लैण्ड मे फार्मो की अधिकाश मशीनो के लिए युद्धकाल मे और उसके बाद किया गया था, या इन सेवाओ को करने के लिए सहकारी समितियो को सहायता देता है जैसा कि डेनमार्क मे किया गया था।

(4) अधिकांश कृषक अपने अज्ञान के कारण उत्पादन की कुछ रीतियों को वांछनीय मात्रा में अपनाने में असफल रहे थे, इसलिए युद्ध के पूर्व उन्हें सहायता दी गयी थी। वैसे कृषकों को खाद्य-सामग्री का उत्पादन करने के लिए दी जाने वाली सहायता का एक उद्देश्य मुद्रा स्फीति की स्थिति को रोकना भी था।[1] चूना और इस्पातमल के प्रयोग के लिए दी गयी सहायता नयी रीतियों को अपनाने के लिए थी। राज्य, कुछ उपजों की पैदावार बढ़ाने के लिए हस्तक्षेप करता है। कृषक बड़े चरागाहों में एक उत्पाद लेने के बाद दूसरे वैकल्पिक उत्पादों की उपयोगिता नहीं समझते हैं। कभी-कभी दो उत्पादों के लिए निश्चित की गयी कीमतें, उनमें से एक कम आवश्यक उपज के उत्पादन करने पर अधिक मात्रा में लाभ देती हैं, जैसे—युद्ध के दौरान गेहूँ या जौ का उत्पादन। इन उपजों के उत्पादन सुधारने के लिए राजकीय हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती है। उत्पादन के साधनों का एक उपयोग से दूसरे उपयोग में विपथन के लिए आवश्यक राजकीय क्रियाओं का वर्णन करते समय, इस विषय का विवेचन पुनः किया गया है।[2]

(5) राज्य के अधिकारी या स्थानीय प्रतिनिधि जब यह अनुभव करते हैं कि कृषक लाभप्रद रीतियों को अपनाने में असफल रहे हैं, तो फिर वे कृषि के क्षेत्र में हस्तक्षेप करते हैं। जब अधिकतम उत्पादन की आवश्यकता होती है या कृषि की कीमतें अयोग्य कृषकों को भी कृषि के कार्य में बनाये रखने के लिए अनुकूल होती हैं, तब राजकीय हस्तक्षेप नितान्त आवश्यक हो जाता है। साधारणतः उपर्युक्त दोनों परिस्थितियाँ एक साथ पायी जाती हैं। इस प्रकार की स्थिति अभी हाल के युद्ध (द्वितीय महायुद्ध) में और उसके बाद देखी गयी थी। युद्ध के समय सुरक्षा-अधिनियमों (Defence Regulations) के अन्तर्गत राजकीय हस्तक्षेप को कानूनी बना दिया गया था। इसी तरह सन् 1947 में (युद्ध के पश्चात) कृषि-कानून ने काउण्टी की कृषि-समितियों को यह अधिकार दिया था कि वे भू-स्वामियों और कृषकों को क्रमशः 'सर्वोत्तम जागीर प्रबन्ध' और 'उत्तम कृषि कर्म' के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य कर सकते थे। जब भू-स्वामियों या कृषकों को पर्यवेक्षण के अन्तर्गत रखा जाता है, तो उन्हें यह निर्देश दिया जाता है कि ये लोग कौन-सा कार्य करें या न करें। ऐसे पर्यवेक्षण का उद्देश्य हानिप्रद अयोग्यता को कृषि से दूर

1. अध्याय 9, उप-शीर्षक 8 देखिए।
2. अध्याय 9, उप-शीर्षक 4 देखिए।

करना होता है। इस योजना के अन्तर्गत जिन कृपको या भू स्वामियों की रीतियों मे सुधार नही होता है, उनकी भूमि का कब्जा-हरण[1] करना लाभप्रद होता है।

अभी तक राज्य द्वारा की जाने वाली उस फार्मिग का विवेचन नही किया गया है। जो सामान्य फार्मिंग-पद्धति की योग्यता बढाती है। फार्म का सर्वाधिक लाभप्रद साइज छोटा होता है। उसमे वैयक्तिक रुचि (Initiative) का अत्यधिक महत्त्व होता है। राज्य, फार्म-परिचालनो का राष्ट्रीयकरण करके लागतो मे कमी करने की चेष्टा करता है। परन्तु यह सफलता केवल अपेक्षा-कृत पिछड़े देशो मे मिलती है। इसका अर्थ यह नही है कि राज्य को शेप देशो में प्रयोगात्मक या प्रदशनात्मक फार्मों की वित्तीय सहायता या परिचालन की व्यवस्था नही करनी चाहिए। वास्तव मे, राज्य के लिए अपने कृषि-अनुसन्धान और शिक्षा के कार्यक्रमो मे ऐसा करना बहुत जरूरी होता है।

उत्पादन मे राज्य के हस्तक्षेप के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श का उपसहार, निम्नलिखित दो प्रश्नो के समाधान से करना सबसे उचित है—

(i) वैयक्तिक कृपक की सहायता न देने पर क्या उत्पादन के सगठन मे कमियाँ विद्यमान रहती हैं ?

(ii) क्या राज्य या राज्य की सहायता प्राप्त-सहकारी समितियाँ इन कमियो को मितव्ययता के माध्यम से कम लागत मे दूर कर सकती हैं ?

उपर्युक्त विचारो का सैद्धान्तिक पक्ष बहुत सरल प्रतीत होता है परन्तु व्यावहारिक जीवन मे इनका प्रमाप करना बहुत कठिन होता है।

3. विपणन मे हस्तक्षेप (Intervention in Marketing)

विपणन के क्षेत्र मे उपर्युक्त सामान्य विचार उत्पादन के क्षेत्र के समान लागू होते हैं। यदि राज्य विपणन का कार्य कम लागत मे करने मे समर्थ होता है, तो उसका हस्तक्षेप वाञ्छनीय हो जाता है ताकि वह ऐसा कर सके। इससे कृपको को लाभ होता है। उपभोक्ताओ द्वारा दी जाने वाली राशि मे कमी के कारण विपणन-लागतो की कमी उत्पन्न होती है। अत. कृषि-उपज के फुटकर या खुदरा व्यापारी कीमत कम करते हैं तथा कम कीमतो से फार्म-उत्पादो की माँग मे वृद्धि होती है।

---

1. पृ० स० 159 देखिए।

ऐसा कहा जाता है कि खुदरा या फुटकर वितरण सदैव खर्चीला होता है क्योंकि प्रत्येक दूकान आर्थिक आवर्त (Ecoromic turnover) के लिए बहुत छोटी इकाई होती है और उसकी सेवाएँ मँहगी होती हैं। यह बात केवल फार्म उत्पाद की फुटकर बिक्री तक सीमित न हो कर, फुटकर वितरण के समस्त क्षेत्र मे लागू होती है। इस स्थिति को सुधारने के लिए कई सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(i) कीमतो की उपयुक्त सूचनाओ का प्रावधान या सहकारी विपणन-सगठनो[1] को सहायता देना।

(ii) फुटकर दूकानें जिस क्षेत्र मे सेवारत हैं, उनका मण्डल बनाना।

(iii) उपर्युक्त मण्डलो मे अधिकतम कीमतें निश्चित करना।

(iv) राज्य या नगरपालिका द्वारा फुटकर व्यापार करना।

युद्धकाल मे उपर्युक्त उपायो का प्रयोग एक सीमित क्षेत्र मे किया गया था। कुछ नगरो मे दूध के फुटकर व्यापार का मण्डल बनाया गया था। कुछ फार्मों की उत्पाद के वितरण के लिए अधिकतम लाभ या प्रतिफल की व्यवस्था की गयी थी। उपर्युक्त उपायो के लाभ और हानि के बारे मे विवेचन इस पुस्तक की विषय-सामग्री के बाहर होने से, नही किया गया है।

वितरण की प्रारम्भिक स्थिति मे अपूर्ण प्रतिस्पर्धा के कारण लागतें अधिक रहती हैं। प्रत्येक जिले मे छोटी छोटी कई वधशालाओ की अपेक्षा एक बडी वधशाला सस्ते ढग से परिचालित होती है क्योंकि बडी वधशाला सह-उत्पादो (Bye-products) का सही उपयोग करती है। परन्तु इस प्रकार की बडी वधशाला प्रतिस्पर्धा के कारण सफल नहीं हो सकी। इस सन्दर्भ मे राज्य के हस्तक्षेप को न्यायसगत कहा जाता है क्योंकि लागतो के अधिक होने के कारण लाभ की मात्रा बढ जाती है। थोक या बडे व्यापार की मित-व्ययताओ को प्राप्त करने के लिए थोक व्यापार और खाद्य-निर्माण की कई शाखाएँ बहुत बडी होती हैं। इससे राज्य सस्ती लागत मे इन सेवाओ को बडी इकाई के रूप मे नही कर पाता है और उत्पादक तथा उपभोक्ताओ के लिए एकाधिकारी ढग मे व्यवहार करता है। ऐसी स्थिति मे राज्य के समक्ष यह प्रश्न होता है कि वह बडे पैमाने के व्यापारियो पर नियन्त्रण किस प्रकार करे।

---

1. अध्याय 5, उप-शीर्षक 6 देखिए।

राज्य द्वारा उपर्युक्त नियन्त्रण करने की निम्नलिखित दो रीतियाँ सामान्य समयों पर अपनायी जाती हैं—

(1) कई देशों में सरकारों ने वितरकों के समक्ष उत्पादकों को मोल-भाव करने की स्थिति मे रखने के उद्देश्य से सहकारी विपणन-संघों को प्रोत्साहित किया है। इसके अतिरिक्त अन्य देशों मे सरकारों ने उत्पादकों के संगठनों को उपेक्षा करने वाले अल्प मतों पर अनिवार्य अधिकार दिये हैं। उदाहरणार्थ—सन् 1931 मे इंग्लैण्ड मे कृषकों को यह स्वीकृति दी गयी थी कि यदि किसी भी उत्पाद को उत्पन्न करने वाले ⅔ उत्पादक चाहते हैं तो अपना कृषि-सम्बन्धी विपणन मण्डल (Agricultural Marketing Boards) बना सकते हैं। इन बोर्डों को चाहने या न चाहने वाले सभी उत्पादकों के लिए कीमतें निश्चित करने का अधिकार दिया गया। इन उपायों से यह आशा की गयी थी कि संगठित उत्पादक कुछ शक्तिशाली आर्थिक मितव्ययताओं का दबाव वितरकों पर डालेंगे। वैसे, जैसा हम बाद में देखेंगे कि मात्र य ही उद्देश्य नहीं थे।

(2) सार्वजनिक हितों के विरुद्ध, एकाधिकारी या नियन्त्रण कार्यवाहियों को रोकने के लिए सीधे प्रयत्न किये गये थे। इसलिए विभिन्न देशों न विभिन्न कानून पारित किये थे। इंग्लैण्ड में सन् 1948 मे एकाधिकारी एवं नियन्त्रक कार्यवाई कानून (Monopolies & Restrictive Practices Act of 1948) पारित किया गया था। ऐसे उपायों का स्वरूप केवल कृषि-सम्बन्धी न रह कर सामान्य था। इसलिए यहाँ इनका अधिक विवेचन नहीं किया जा सकता है।

{राज्य ने, उपभोक्ताओं को यह ज्ञात कराने के लिए कि वे क्या पा रहे हैं, कृषि-उत्पाद की विभिन्न प्रकारों के लिए मान स्थापित किये थे। इससे सामान्य काल मे उपभोक्ताओं को अपनी पसन्दगी उत्पादकों को प्रत्यर्पित करने मे मदद मिली थी।[1]}

{युद्धकालीन परिस्थितियों मे राज्य द्वारा विपणन के क्षेत्र में अधिक हस्तक्षेप की आवश्यकता उत्पन्न हो गयी थी। युद्ध-काल में कृषि कीमतों को बिना बदले उपभोक्ता जितनी मात्रा में कृषि-उत्पाद की मांग करते थे और तत्कालीन पूर्ति उससे कम थी। साथ ही मुद्रा-स्फीति का भय था। ऐसी स्थिति मे राज्य ने उचित वितरण करने के लिए खाद्य-सामग्री की

1 अध्याय 5, उप शीर्षक 6 देखिए।

राशनिंग की थी । राज्य पूर्ति के केन्द्रीकरण और राशनिंग की माँग का निर्देशन करता था । ऐसे क्षेत्रो मे, जहाँ खाद्य-सामग्री की राशनिंग नही की गयी थी, वहाँ खाद्य सामग्री के वितरण मे नियन्त्रण आवश्यक हो गया था । खाद्य-मन्त्रालय सबसे महत्त्वपूर्ण खाद्य-सामग्री की खरीद करता था । यह मन्त्रालय, दीर्घकालीन वैदेशिक प्रदायो के द्वारा पूर्ति करता था और विदेशी व्यापार के लिए व्यापारियो का उपयोग एजेन्ट के रूप मे करता था । इस प्रकार के नियन्त्रण और उनमे आर्थिक प्रभावो का विश्लेपण, पुस्तक के विषय के बाहर होने के कारण यहाँ नही किया गया है ।

4. ससाधनो का विपथन (The Diversion of Resources)

कृषि से दूसरे व्यवसायो मे उत्पादन के साधनो का प्रवाह सामान्य व्यापार-प्रणाली द्वारा होता है । इस प्रणाली का निर्धारण, तत्कालीन कीमतो की गति पर निर्भर रहता है । उत्पादन के नये साधनो उत्पादन के विस्तार की आवश्यकता तथा उपभोक्ताओ द्वारा कीमत मे परिवर्तन की उपादेयता के कारण लाये जाते हैं । कृषि-उपज की कीमतो की गति, फार्मिंग को रोजगार के अवसर प्रदान करने वालों, श्रमिको एव कार्यकर्ताओ और पूँजी के निवेशको के लिए आकर्षक बना देती है । कभी-कभी कुछ अन्य कारणो से ऐसे प्रभाव नही हो पाते हैं । साधारणत उत्पादन के साधनो का उपर्युक्त स्थानान्तरण बहुत धीमी गति से होता है । फार्मिंग मे सापेक्ष रूप मे गिरावट होने से, उत्पादन के साधनो का स्थानान्तरण कृषि को अन्य सामाजिक क्रियाओ की तुलना मे अधिक धटिया बना देता है । ऐसी स्थिति सन् 1914-18 के युद्धकाल को छोड कर सन् 1875 से वर्तमान वर्षों की अवधि तक पायी गयी थी । राज्य के द्वारा आय के अन्तर को दूर करने के उद्देश्य से उत्पादन-साधनों का स्थानान्तरण, किसी अन्य वैकल्पिक प्रणाली के अभाव मे विद्यमान व्यापार-प्रणाली को मन्दा (ठण्डा) कर देता है, उपभोक्ताओ को उत्पादन के तकनीक मे किये गये सुधारो से मिलने वाले लाभ प्राप्त नही हो पाते हैं । इस प्रकार की राजकीय नीति से दीर्घकाल मे कृषक और उद्योगपति निश्चित रूप से पीडित होते हैं ।

सामान्य काल मे भी कृषि के अन्तर्गत और कृषि तथा उद्योग के बीच उत्पादन के साधनो का स्थानान्तरण तेज गति से करने के लिए राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक होता है । यह हस्तक्षेप कृषि-उत्पाद की माँग, पूर्ति से अधिक होने पर कीमतो के नियन्त्रण के लिए अधिक अनिवार्य हो जाता है । इस

प्रकार की स्थिति मे राज्य का लक्ष्य कीमतो कोइस तरह से निर्धारित करना होना चाहिए कि कृषक अपनी प्रत्यक्ष प्रकार की उत्पाद से प्राप्त होने वाली कीमत द्वारा प्रोत्साहित हो। यह प्रोत्साहन सबसे अधिक आवश्यक खाद्य-वस्तुओ के लिए ज्यादा जरूरी होता है। अभी हाल के युद्ध के दौरान उपर्युक्त आवश्यकता के कारण कीमतो पर बहुत अधिक दबाव पडा था। इससे इस *प्रकार की प्रोत्साहन की नीति का आर्थिक महत्त्व बढ जाता है।* इस प्रकार की रीति से राजनैतिक दबाव और उत्पादको के हितो की उपेक्षा करके, समस्त कीमतो का नियन्त्रण करना व्यावहारिक नही होता है। उपभोक्ताओ की कीमतो को प्रभावपूर्ण रीति से, केन्द्र के द्वारा उत्पाद का राशन करके सीमित किया जा सकता है और उसकी पूर्ति नियन्त्रित की जा सकती है। वास्तव मे, यह रीति कठिन एव खर्चीली होने से केवल अत्यन्त आवश्यकताओ की वस्तुओ के लिए अपनायी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि कम आवश्यक खाद्य सामग्रियो की कीमतें कानून या काला बाजार के द्वारा ऊँची हो जाती हैं। इन कीमतो से व्यापारियो का सापेक्षत अधिक लाभ होता है। अनिवार्यताओ के लिए आर्थिक सहायता देना उचित माना जाता है। इस तरह का कार्य पहले भी किया गया था और वतमान मे भी किया जा रहा है। अनिवार्य वस्तुओ के उत्पादक और वितरक आर्थिक सहायता के कारण उपभोक्ताओ द्वारा भुगतान की गयी राशि से ज्यादा लाभ प्राप्त करते हैं। अनिवार्यताओ का उत्पादन खाद्य-सामग्री के समान करना चाहिए। इनके नियन्त्रण को कठोरता के साथ करना आवश्यक होता है अन्यथा शिथिल नियन्त्रण मुद्रा-स्फीति उत्पन्न करता है। साधारणत मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिए कीमतों का नियन्त्रण किया जाता है। अत राज्य का हस्तक्षेप सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खाद्य पदार्थों के उत्पादन करने के लिए अधिक मात्रा मे जरूरी होता है।

राज्य के हस्तक्षेप के अन्तर्गत कुछ निम्नलिखित प्रभावशाली कार्य किये जाते हैं—

(1) सरकार उत्पादको से विशेष खाद्य-उपज की पैदावार के विस्तार या सकुचन के लिए आग्रह करती है।

(2) सरकार वैकल्पिक व्यवसायो की सम्भावना की सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए कार्य करती है।

(3) सरकार अधिक मात्रा के उत्पादन करने के आन्दोलन मे प्रत्यक्ष रूप से भाग लेती है।

(4) पूर्ति में सकुचन करने के लिए उत्पादन को अवरुद्ध करती है।

(5) सरकार कुछ वस्तुओं का उत्पादन सीमित या निषिद्ध करती है, इसके कई उदाहरण उपलब्ध हैं।

(6) कृषकों को दूसरी वस्तु का उत्पादन करने का निर्देश देती है।

कभी-कभी एक कृषि-उत्पाद से दूसरे कृषि उत्पाद में उत्पादन के साधनों का स्थानान्तरण जरूरी होता है। कृषि पैदावार के विस्तार के लिए सरकार द्वारा प्रेरित सगठन, उपज लेने की रीतियों का रूपान्तरण करते हैं। इससे अधिक माँग वाली कृषि उत्पादों का उत्पादन किया जाता है। कम माँग वाली उत्पादों के स्थान पर आवश्यक उत्पादों के लिए अनुसन्धान की व्यवस्था की जाती है। युद्ध के पूर्व किये गये इस तरह के प्रयत्नों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(i) वेस्ट इण्डियन आइलैण्ड्स में शक्कर के उत्पादन के स्थान पर सिट्रस (नीबूवंश) फलों के उत्पादन के लिए किये गये प्रयत्न।

(ii) अमेरिकन कॉटन बेल्ट में डेयरी तथा बाजार सम्बन्धी बागों के लिए किये गये कार्य।

युद्धकाल में तथा उसके बाद प्रचार किया गया था। उदाहरणार्थ— कृषकों से उत्पादन बढ़ाने के लिए कहा गया, उन्हें बताया गया कि सबसे अच्छी फसलें तथा पशु-उत्पाद कौन हैं। इसके अतिरिक्त कृषकों को अपने पशुओं को दिये जाने वाले आहार के लिए आत्मनिर्भर होने के लिए प्रयत्न करने को कहा गया था, और अधिक शक्तिशाली प्रोत्साहन भी दिये गये। युद्ध के पूर्व, दूसरी श्रेणी में आने वाले कार्य कृषकों की सहायता या आवश्यक अवरोध के रूप में किये गये थे। उदाहरणार्थ—सयुक्त राज्य अमेरिका के 'कृषि सम्बन्धी समजन प्रशासन' (Agricultural Adjustment Administration) ने आवश्यकता से अधिक पूर्ति वाली फसलों के क्षेत्रफल या पशुओं की सख्या में कटौती करने के लिए भुगतान किया था। इन भुगतानों के पीछे यह मान्यता थी कि कृषक अधिक माँग वाले उत्पादों के उत्पादन की ओर अपना ध्यान देंगे। कृषकों के द्वारा अपने मौलिक उत्पादों को कम मात्रा में उत्पन्न करने की स्थिति में, उपर्युक्त नीति 'उत्पादन के प्रतिबन्ध की नीति' हो जाती है। इस नीति का विवेचन बाद में किया गया है। जब कृषक उपर्युक्त तरीके से कम किये गये क्षेत्रफल में कृषि की गहन पद्धति का प्रयोग करते हैं, तो उत्पादन के प्रतिबन्ध की नीति, कृषि लागतों

के अधिक हो जाने के कारण, असफल हो जाती है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे एक निश्चित सीमा तक ऐसा ही हुआ है।

राज्य के द्वारा यह प्रयत्न भी कभी कभी किया गया कि श्रमिक कृषि से उद्योग म आ जायें। राज्य कृषि श्रमिको के बाहुल्य वाले क्षेत्रो म उद्योगो की स्थापना के लिए सहायता देता है और वहाँ के निवासियो को ग्रामीण-गृहो से शहरी कार्यो के स्थान तक दैनिक यात्रा की सुविधाएं प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार की सहायता फार्म के श्रमिको को औद्योगिक रीतियो मे शिक्षित करने के लिए दी जाती है।

युद्ध-काल मे राज्य द्वारा निम्नलिखित प्रभावशाली रीतियो का उपयोग किया गया था--

(i) युद्ध प्रारम्भ होने के कुछ पूर्व ग्रट ब्रिटेन म राज्य सरकार ने स्थायी चरागाह को जोतने के लिए आर्थिक सहायता दी थी।

(ii) इसके पश्चात् गेहूँ और आल बोयी गयी प्रति एकड भूमि क लिए अनुपूर्ति (Subsidy) दी गयी थी।

(iii) वांछित कृषि-उपज और पशु उत्पाद का उत्पादन करने वाले कृषको को/पशुओ का आहार तथा उर्वरक प्राप्त करने मे प्राथमिकता दी गयी थी।

(iv) कृषि करने के लिए कृषक एव श्रमिको की पूर्ति, बडी सख्या मे सशस्त्र सेना मे की गयी थी। इस सन्दर्भ मे यह ध्यान देने योग्य बात है कि अन्तिम रीति को छोड कर शेष सभी रीतियो मे उत्पादन के साधनो का स्थानान्तर उचित रीति से नही किया गया था। वैसे कीमतो के उत्प्रेरण के गलत होने पर किसी-न किसी रीति का प्रयोग अनिवार्य होता है।

राज्य के द्वारा कृषको और कृषि कार्यकर्त्ताओ को स्पष्ट आदेश दिये गये थे कि उन्हे क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए। युद्ध-काल मे इस प्रकार की कठोर नीति अपनायी गयी थी। उदाहरणाथ—'काउण्टी युद्धकृषि-सम्बन्धी कायकारिणी समिति' (County War Agricultural Executive Committee) ने कृषको को निर्देश दिय थे कि (i) उन्हे कौन सी उपज कितनी मात्रा मे उत्पन्न करनी है। यह नीति गेहूं और आलू के बारे मे विशेष रूप से अपनायी गयी थी। (ii) कृषको को यह भी बतलाया गया था कि उन्हे कितनी भूमि पर चरागाह कितने अशो मे बनाना है। (iii) उन्हे अच्छी किस्म का अपना पूरा गेहूँ बेचने के लिए बाध्य किया गया था। बाद मे जौ को अपने पशुओ को खिलाने के बजाय लोगो के उपयोग के लिए बेचने के लिए बाध्य किया गया। (iv) कृषि-मजदूरो को कृषि का कार्य

छोड़ने से रोका गया था और अवसर मिलने पर अधिक संख्या में लोगों को फार्मिंग के लिए भेजा गया था।

उपर्युक्त रीतियों के विरुद्ध आर्थिक दृष्टि से यह आपत्ति की जा सकती है कि इनके द्वारा वैयक्तिक क्षमताओं और उत्पादक की विभिन्न परिस्थितियों का सही रीति से अकन नहीं हो पाता है। चूंकि ये उपाय कृषक को व्यक्तिगत लगन और इच्छा से दूर रखते हैं, अत इन्हें प्रजातान्त्रिक देश की आर्थिक नीति के स्थायी तत्त्वों के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है।

उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में सापेक्ष उपार्जन गलत हो जाने से सार्वजनिक हित के लिए उत्पादन के साधनों का एक निश्चित रूप से स्थानान्तरण करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति उत्पादन की उन शाखाओं में विशेष रूप से पायी जाती है, जो व्यवसाय का प्रबन्ध करती हैं या उत्पादन के लिए श्रम और पूंजी की व्यवस्था करती हैं। राज्य के द्वारा किये गये अधिकांश उपायों का उद्देश्य सामान्य काल में उपार्जनों के अन्तर के कारण उत्पन्न उत्पादन के साधनों के स्थानान्तरण की गति तेज करना था। उद्यमी, कार्यकर्त्ता, श्रमिक और पूंजी अपनी इच्छा के अनुसार गतिवान होने के लिए स्वतन्त्र रहने पर, उनका एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में स्थानान्तरण प्रमुख रूप से उपार्जन के अन्तर के कारण होता है। इसलिए सबसे पहले उपार्जन के अन्तर की रीति को प्राथमिकता दी जाती है और शेष रीतियों को गौण रूप में उपयोग करना लाभप्रद होता है।

5 कीमतों या आयों का स्थिरीकरण
(Stabilization of Prices or Incomes)

राज्य के द्वारा सामान्य रोजगार और आय के उच्चावचनों को दूर करने के लिए किये गये उपायों का विशद् विवेचन इस पुस्तक की विषय सामग्री के बाहर है। यद्यपि ये उपाय कृषि सम्बन्धी रोजगार[1] को बनाये रखने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसलिए इस अध्याय में कृषकों की आय में अनुपूर्तियों और उगाहियों द्वारा प्रस्तावित मात्रा में रूपान्तर करने वाले उपायों का विवेचन किया गया है। ये उपाय रोजगार के सामान्य स्तर को भी प्रभावित करते हैं।[2]

---

1 अध्याय 8, उप शीर्षक 6 देखिए।

2. वही।

राज्य, कृपको की कुल प्राप्ति को प्रभावित करने के लिए निम्नलिखित दो उद्देश्यो को रख कर हस्तक्षेप करता है—

(1) कीमतो और आयो के उच्चावचनो को पूर्ववत् औसत मे रखते हुए कम करना।

(2) कीमतो और आयो की औसत मे वृद्धि करा।

ये दोनो आर्थिक नीतियाँ कीमतो को स्थिर रखने के लिए बनायी जाती हैं तथा व्यावहारिक जीवन मे एक-दूसरे मे मिल जाती हैं। इनका प्रमुख कार्य, कीमतो के आवश्यकता से अधिक कम होने पर उन्हें तेजी के साथ बढाना होता है। परन्तु ये नीतियाँ कीमतो के ऊँचे होने पर उन्हे घटाने का प्रयत्न नही करती हैं और इस तरह कीमत के औसत स्तर मे वृद्धि सम्भव हो जाती है।

इस अध्याय मे, फार्म-उत्पादो की कीमतो को वैयक्तिक या सामान्य रूप से स्थिर करने की रीतियो तथा उनसे प्राप्त होने वाली आयो के बारे में विवेचन किया गया है। इमके पश्चात् कृषि का सरक्षण करने वाली सम्भावित रीतियो के विषय मे विचार करते समय फार्म-उत्पाद की कीमतो को ऊँचा उठाने के प्रयत्नो का विश्लेषण किया गया है। इस सम्बन्ध मे हमारी सर्व-प्रथम मान्यता यह है कि कृपको को उनकी खाद्य-उपज के लिए उपभोक्ताओ द्वारा भुगतान की गयी राशि मे से विपणन खर्चों को कम करके शेष राशि प्राप्त होती है। इसके बाद हम यह विचार कर सकते हैं कि जब राज्य सरकार उत्पादकों और उपभोक्ताओ को कीमतो के परित्याग के उद्देश्य से आर्थिक सहायता प्रदान करती है या उगाही का प्रावधान करती है, तब इन दो प्रकार की नीतियो के आर्थिक प्रभाव क्या होते हैं। साधारणत आर्थिक सहायता या उगाही का प्रावधान न रहने से बाजार मे पूर्ति अधिक नियमित होती है और उत्पादको की कीमतें स्थिर की जा सकती हैं। इसके विपरीत बाजार मे पूर्ति की वृद्धि को रोकने के लिए किये गये प्रयत्नो से बाजार से पैदावार हट जाती है और ऊँची औसत कीमतें उत्पन्न होती हैं।

उत्पादक और उपभोक्ता दोनो के लिए वैयक्तिक उत्पादो की कीमतो मे अनावश्यक उच्चावचन अवांछनीय होता है। इस प्रकार के उच्चावचन उस समय विशेषकर हानिप्रद होते हैं, जब ये लोग कृपको की अभीष्ट पैदावार के परिवर्तनो को उत्पन्न करने की प्रेरणा देते हैं। वास्तव मे, कीमत का कार्य भावी क्रेताओ के बीच वस्तुओ की उपलब्ध पूर्ति का राशन करना होता है। कीमतें सबसे अधिक माँग वाली वस्तुओं के लिए उत्पादन के साधनों की मात्रा

निश्चित करती हैं या उनका आवण्टन (allocation) करती हैं। किसी उत्पाद का एक समय म उत्पादन के लिए महँग हो जाने पर आर्थिक दृष्टि से यह आवश्यक होता है कि उसकी कीमत अधिक हो। वास्तविक स्थिति के ज्ञान के अभाव म कीमतें अन्य रीति से परिवर्तित हो जाती हैं। ऐसी दशा म राज्य सरकार को उत्पादकों तथा व्यापारियों की अपेक्षा अच्छा दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक होता है तथा कृषि के क्षेत्र म उसका हस्तक्षेप न्यायसगत कहा जाता है।

इस प्रकार का हस्तक्षेप दो रूपो मे क्रियान्वित हो सकता है। पहला, शासन सही स्थिति के सम्बन्ध मे सूचना एकत्र करके प्रचारित कर सकता है दूसरा शासन भरपूर फसलों म से अतिरिक्त हिस्से को रोक रखने के लिए बनायी गयी योजनाओं को सहायता दे सकता है। अन्य दूसरे प्रकार के सभी तरीकों से कीमतें बढ़ानी पडती हैं।

[कीमतो म मौसमी और चक्रीय उच्चावचन-जैसे अनुचित उच्चावचन इसलिए उत्पन्न हो जाते हैं कि उत्पादक माँग और पूर्ति से सम्बन्धित परिस्थितियों का पूर्ण अनुभव नही कर पाते हैं। इन परिस्थितियों का ज्ञान कराने के लिए राज्य या उत्पादकों की कोई सगठित सस्था माध्यकीय सूचनाओं को एकत्रित करके प्रकाशित करती है। उपज के मौसम[1] के प्रारम्भ म उत्पादकों द्वारा कीमतों मे वाछनीय समजन न करने पर सगठित सस्था को सार्वजनिक रूप से अपना यह विचार व्यक्त करना पडता है कि कीमतों का तत्कालीन समजन गलत ढग से किया गया है। ये सस्थाएँ उत्पादकों से अपनी उत्पाद को ऊँची या नीची कीमत मे तुरन्त या देर से बेचने का आग्रह करती हैं] कुछ वर्षों की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि सगठित सस्थाओं ने उत्पादकों को सदैव यह सलाह दी है कि उनकी कीमतें बहुत कम हैं। उदाहरणार्थ—ग्रेट ब्रिटेन के आलू विपणन मण्डल (Potato Marketing Board) ने कई वर्षों तक यह तय किया था कि फसल के बाद भी कीमतें अनावश्यक रूप से मन्दी हैं। इस मण्डल ने उत्पादकों को कीमतों म वृद्धि होने तक फसल को रोकने का आग्रह किया था। फसल को बेचने की सलाह बडी मुश्किल से दी जाती थी क्योंकि बहुत ही कम सगठित सस्थाएँ अपने सदस्यों से यह कहने को तैयार होती हैं कि वे लोग न्यायसगत कीमतों की अपेक्षा अधिक कीमतें ले रही हैं।

---

1 अध्याय 8 उप शीर्षक 4 देखिए।

कृषको की गलत धारणा के कारण पशुओ की सख्या या बोयी गयी पौधा-उपजों के क्षेत्रफल मे चक्रीय उच्चावचन उत्पन्न हो जाते हैं। कृषक एक-दूसरे की क्रियाओ[1] के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं। यदि कृषकों को भूतकाल की घटनाओ के बारे मे सही ज्ञान और बोयी फसल के क्षेत्रफल तथा पशुओ की सख्या के बारे मे सही जानकारी हो तो वे अपनी उपर्युक्त गलतियों को भविष्य में सुधार सकते हैं। इसलिए कृषि के क्षेत्र मे पुन राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता का अनुभव होता है। वैसे भूतकाल मे किये गये व्यावहारिक अनुभवो मे यह ज्ञात होता है कि शैक्षणिक प्रयत्न इस दिशा मे ज्यादा लाभप्रद नही होते हैं। कृषको को केवल सही स्थिति की सूचना देना पर्याप्त नही होता है, बल्कि अनाशवान् उत्पाद की कीमत कम होने पर उन्हे अधिक-से-अधिक मात्रा मे सग्रह करने के लिए आर्थिक सहायता देना भी जरूरी होना है। सग्रह का कार्य करने मे यदि कृषक समर्थ नही हैं तो यह कार्य राज्य को करना चाहिए। (कृषको के समक्ष साख[2] प्राप्त करने की कठिनाई के कारण फार्म के सग्रह के कार्य मे अवरोध हो जाता है) राज्य या उत्पादक-सगठन द्वारा साख की एक उपयुक्त प्रणाली की खोज की जाती है। ऐसे समय मे पैदावार के बाद की भरमार और आवश्यक कीमत-मन्दी को समाप्त[3] करना अत्यन्त आवश्यक होता है। (उपज की बहुलता के अवसर पर कृषको द्वारा वाछनीय मात्रा मे सग्रह न करने की स्थिति पर, राज्य या सगठित संस्थाओ को स्वतः सग्रह करना हितकर होता है।) उदाहरणार्थ—सन् 1937-38 की टण्ड मे ब्रिटिश आलू विपणन मण्डल (British Potato Marketing Board) ने बाद मे बेचने के लिए आलू की खरीद की थी और इस सौदे मे लाभ कमाया था।

कीमतों मे वार्षिक उच्चावचनो को घटाने के लिए तैयार की गयी कीमत-रक्षी (Valorization) योजनाओ का आधार उपर्युक्त नीति ही थी। साधारणत. व्यापारी अनाशवान् उत्पादो की बहुल उपज के एक हिस्से का सग्रह करते हैं और इन्हे बहुत कम मात्रा मे भविष्य के लिए रखते हैं। व्यापारियों द्वारा किये गये सग्रह का उद्देश्य उत्पादकों को भुगतान की जाने वाली कीमतो के हानिप्रद परिवर्तनो को रोकना होता है क्योकि सग्रह करने के कारण सग्रह की लागत और कीमत की जोखिम, अन्त मे कल्पना की गयी मात्रा से भिन्न

1. अध्याय 8, उप-शीर्षक 5 देखिए।
2. अध्याय 4, उप-शीर्षक 6 देखिए।
3. अध्याय 8, उप-शीर्षक 3 देखिए।

रहती है। इसलिए व्यापारियो द्वारा सग्रह[1] किये जाने के पूर्व उपर्युक्त कीमतो म अधिक अन्तर की आवश्यकता होती है।

राज्य या उत्पादको की सगठित सस्थाऍं जब स्वयं सग्रह का कार्य करते हैं, तो वे वास्तविक खर्चों और व्यवसाय की जोखिम से बच नही सकते। ऐसी दशा मे कीमतो की पूर्ण स्थिरता वाछनीय नही होती है और यह मान लिया जाता है कि छोटे व्यापारियो की अपेक्षा सगठित सस्थाऍं इन लागतो को अधिक सस्ते रूप मे सह सकती थी। सगठित सस्थाऍं फार्मों के अन्दर या उत्पादक की परिसीमा मे सग्रह की व्यवस्था करने मे समर्थ होती थी। इसलिए शहरी व्यापारियो की अपेक्षा इन सस्थाओ को लगान तथा इमारतों की लागत कम आती है। एक वडा सगठन अन्य प्रतिस्पर्धा करने वाले व्यापारियो की अपेक्षा सस्ते ब्याज की दर मे उधार ले लेता है। इसी तरह अन्य व्यक्तियो की तुलना मे राज्य भी दीर्घकालीन दृष्टिकोण रखता है। वह सग्रह करने की लागत का अकन कम राशि मे करता है। एक सस्था के द्वारा सग्रह का नियन्त्रण किये जाने पर बाजार की पूर्ति भी नियन्त्रित हो जाती है। राज्य के द्वारा कुछ प्राथमिक वस्तुओ के सग्रह करने के कार्य को उपर्युक्त लाभ न्यायसगत बनाते हैं। इससे सग्रह का कार्य केवल व्यापारियो पर नही छोडा जाता है तथा जोरदार फसल के बडे हिस्से का सग्रह कर लिया जाता है।

उपर्युक्त रीतियों का उपयोग कीमतो को स्थिर बनाये रखने के लिए, औसत स्तर को बगैर नीचा किये, सैद्धान्तिक रूप मे किया जाता है। इनकी सफलता के लिए अधिकारियो का विभिन्न सूचनाओ से युक्त रहना तथा उत्पादको के दबाव को रोकते हुए पूर्ति की माँग से समजन करना आवश्यक होता है। चूँकि अधिकारी साधारणत उत्पादको के प्रतिनिधि होते हैं, अतः उपर्युक्त शर्तों का व्यावहारिक जीवन मे पूरा किया जाना अत्यन्त सन्देहास्पद माना जाता है। गत वर्षों के अनुभव मे ऐसा ज्ञात होता है कि ये सस्थाऍं तत्कालीन परिस्थितियो के लिए नीची कीमतो की आवश्यकता, स्वीकार करने को तैयार नही रहती हैं। वे कीमत की प्रत्येक गिरावट को अस्थायी रूप से लेने की कोशिश करती हैं, भले ही कीमत की गिरावट उत्पादन की लागत जैसे स्थायी परिवर्तन के कारण क्यो न हुई हो। इस प्रकार की गलतियो से उत्पादन मे असंगत वृद्धि होती है और आवश्यकता से अधिक मात्रा मे

---

1. अध्याय 8, उप-शीर्षक 4 देखिए।

कीमतो म गिरावट होती है। यह भी स्वीकार किया जाता है कि उत्पन्न की गयी मात्रा का नियन्त्रण करने स उपभोक्ताओ का शोषण होता है। इस विचार के बारे मे हम बाद म विवेचन करेंग।

इस सन्दम म कनाडा के गेहूँ के निकायो (Canadian wheat pools) स एक व्यावहारिक पाठ प्राप्त होता है। इन निकायो की स्थापना कीमतो के अनावश्यक मौसमी परिवतनो को रोकने के लिए की गयी थी। इन्होंने प्रत्येक वप क्या कीमतें होंगी, इस प्रश्न पर अनुचित रूप से अनुकूल दृष्टिकोण अपनाया था। इससे गेहूँ का आधिक्य उस समय तक बढ़ता गया, जब तक कि सकट की स्थिति उत्पन्न न हो गयी। य निकाय सन् 1928 की जोरदार फसल के कारण हुई कीमतो की भारी गिरावट का अनुभव नही कर सके और बाद के मौसम मे कीमतो के बढने की आशा मे गेहूँ के सग्रह को रोक रखा। इससे उन्होंने अपने अधिकाश बाजार खो दिये।

कुछ अवसरो पर यह अनुभव किया गया है कि एक योजना दुर्भाग्य के कारण भी कुछ अशो मे नष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ—ब्राजील मे काफी की कीमत-रक्षी योजना। यह योजना सन् 1923 ई० की जोरदार फसल का सग्रह आगामी 3 वर्षों तक सफलतापूवक करती रही। परन्तु यह योजना सन् 1927 मे नष्ट हो गयी क्योकि 1929 ई० मे पुन एक बार अप्रत्याशित रूप से जोरदार फसल आयी थी। इसके बावजूद इस योजना ने जोरदार फसल पर अग्रिम देने से आवश्यकता से अधिक मात्रा मे पौधा रोपण को विवेकहीन रूप से प्रोत्साहित किया। फलस्वरूप हर हालत मे शीघ्र ही पूरी हानि होनी ही थी।

वास्तव म, इस प्रकार की कीमत को स्थिर रखने के उद्देश्य से बनायी गयी योजनाओ को ढूंढना बहुत कठिन होता है जो कीमत-वृद्धि की योजनाओ मे परिणत नही हो पायी थी। इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(i) ग्रट ब्रिटेन की सुअर विपणन योजना (Pig Marketing Scheme), और

(ii) मलाया की रबर नियन्त्रण योजना (Rubber Control Scheme)। उपर्युक्त दोनो योजनाओ को स्थिरीकरण योजनाओ के रूप मे विज्ञापित किया गया था, परन्तु प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियो के कारण इन दोनो ही योजनाओ ने कीमतो को दीघकालीन सामान्य कीमत स अधिक ऊँचा उठा दिया था। साधारणत इस प्रकार की योजनाओ म एकाधिकारी शक्तियाँ रहती हैं और

इन शक्तियों के मिलन से योजनाओं या उपयोग कीमत की स्थिरता के लिए मुश्किल में हो पाता है।

उपर्युक्त कारणों से कीमत को स्थिर करने वाले उपाय उत्पादकों के संगठनों के स्थान पर स्वतन्त्र संस्थाओं को सौंप दिये जाते हैं। उत्पादकों के संगठन केवल वर्गीय हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके विपरीत स्वतन्त्र संस्थाओं से सामान्य हित के प्रति ज्यादा सम्मान की आशा की जाती है। इस विचार को व्यापार और अधिक मात्रा में रोजगार नियन्त्रित करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के नवीन प्रस्तावों में रखा गया है।

पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में स्थिरीकरण के विषय में यह मान्यता स्वीकार की गयी है कि किसी भी आर्थिक सहायता का दिया जाना या किसी भी उगाही का भुगतान, उत्पादकों द्वारा फुटकर कीमतों को त्याग देने के लिए नहीं किया जाता है। इस प्रकार की आर्थिक सहायता अथवा उगाहियाँ सामान्य होने के लिए राज्य के हस्तक्षेप को अत्यन्त आवश्यक बना देती हैं। इसके अतिरिक्त कृषकों को प्राप्त होने वाली कीमतों की गारण्टी देने के लिए एक केन्द्रीय संस्था के द्वारा उपज के विक्रय को इच्छित दिशा प्रदान करते रहना आवश्यक होता है। यह केन्द्रीय संस्था कृषि उत्पाद वितरकों को एक कीमत में बेचती है और उत्पादकों को इसका भुगतान भिन्न भिन्न कीमत में करती है। उत्पादकों की आय में वृद्धि करने के लिए कभी-कभी उपर्युक्त कीमत को ऊँचा रखा जाता है परन्तु इसके पूर्व उठायी गयी हानि को पूरा करने के लिए नीचा रखा जाता है। (यहाँ पर केवल आय की स्थिरता के विषय में विवेचन किया जा रहा है न कि आय की वृद्धि करने के उपायों का) उपर्युक्त रीति से किया गया विक्रय का केन्द्रीकरण विपणन की योग्यता बढ़ाने के लिए वांछनीय समझा जाता है। परन्तु इसे सदैव उचित नहीं समझना चाहिए। ऐसा कभी-कभी या शायद अक्सर होता है क्योंकि विक्रय के केन्द्रीकरण से वितरण की लागत में वृद्धि होती है।

कृषकों की आय में एक समय वृद्धि तथा अन्य समय कमी, सैद्धान्तिक रूप से उन्हें प्रति इकाई निश्चित मात्रा में आर्थिक सहायता देकर या उनसे निश्चित मात्रा में उगाही चार्ज करके, की जाती है। इस कार्य के लिए केवल विक्रय का हिसाब रखना पड़ता है। केन्द्रीय नियन्त्रण और वैयक्तिक कृषकों *के प्रतिफलों में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं होती है। कृषकों* की विवरणी उपलब्ध रहने पर आर्थिक सहायता का देना सरल हो जाता है।

युद्ध के पूर्व गेहूँ और पशु-उत्पादों के लिए इसी पद्धति का उपयोग किया गया था। सामान्यत: कृषकों से उगाही करने का कार्य हमेशा कठिन होता है। वैसे यह रीति अन्य रीतियों की भाँति कृषकों के औसत प्रतिफलों में स्थिरता लाने के स्थान में औसत प्रतिफलों में वृद्धि करने के लिए उपयोग की जाती है। इस रीति में कृषकों को, प्रत्येक उपज के क्षेत्रफल या पशुओं की संख्या के अनुसार, भुगतान किया जाता है और कृषकों से की जाने वाली उगाही के निर्धारण का कार्य सरल हो जाता है। परन्तु कृषकों से उगाहियों के एकत्र करने का कार्य यथावत् कठिन रहता है। कृषि के संरक्षण के विषय पर विचार करते समय उगाहियों को एकत्र करने की विभिन्न रीतियों के सापेक्ष गुण दोषों का विवेचन किया गया है।[1]

प्रशासन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर हो जाने पर, आर्थिक सहायता और उगाही की सम्भावनाएँ, उस क्षेत्र की सीमा को बढ़ा देती हैं, जिसमें राज्य, कृषकों के प्रतिफलों को स्थिर करने के उद्देश्य से हस्तक्षेप करता है। इस स्थिति में मन्दी के समय कृषकों द्वारा पूर्ति की जाने वाली खाद्य-सामग्री की कीमत में वृद्धि के बिना, कृषकों की आय को बढ़ाया जा सकता है और तेजी के समय उपभोक्ताओं की कीमतों को कम किये बिना, कृषकों की आय को कम किया जा सकता है।

आर्थिक सहायता और उगाही का उपयोग, कृषकों की आयों और रोजगार के सामान्य स्तर को स्थिर रखने के लिए किया जाता है। मन्दी के समय कृषकों की आयों में वृद्धि करने की नीति आर्थिक सहायता के अभाव में उस समय सफल हो जाती है, जब माँग कम होने पर पूर्ति को सीमित रखा जाता है। इससे व्यापार-चक्र (Trade cycles) अत्यधिक गम्भीर परिणाम देते हैं। वैसे व्यापार-चक्रों के विषय में यह प्रमुख आपत्ति की जाती है कि मन्दी के समय व्यापार-चक्रों के प्रभाव के कारण वस्तु और सेवाओं के माध्यम से राष्ट्रीय आय कम हो जाती है। पैदावार की अधिक कमी से इस स्थिति को सुधारने में असफलता प्राप्त होती है। ऐसे समय में अधिक उपभोग की आवश्यकता होती है। इसके लिए फार्मों की आय में वृद्धि करने के लिए किये गये प्रयत्न (पूर्ति को बगैर सीमित किये) सरलता के साथ सफल हो जाते हैं। इसके विपरीत कृषि पैदावार पर प्रतिबन्ध लगाने की रीति बहुत

1. इसी अध्याय का उप-शीर्षक 8 देखिए।

हानिप्रद होती है। एकमात्र सही अपवाद ऐसे देश के सन्दर्भ मे है, जो कृषि-सम्बन्धी निर्यात् करता है और जिसकी राष्ट्रीय आय अस्थायी अधिपूर्ति के कारण कम हो जाती है। इन देशों मे आर्थिक सहायता के द्वारा लोगो को प्रभावपूर्ण तरीके से सहायता नही दिया जा सकता है। परन्तु कुछ अन्य देश ऐसे होते हैं, जहाँ आर्थिक सहायता का प्रभाव सरकार की करारोपण सीमा के बाहर बहुत अधिक होता है।

कृषकों की आय को मन्दी के समय आर्थिक सहायता से समस्त कृषि-उत्पादो मे और तेजी के समय वसूल की गयी मुद्रा की मात्रा द्वारा ऊँचा उठाने पर कुल माँग अधिक स्थिर होती है। कोई भी अतिरिक्त साधन, अच्छे, या बुरे समय मे कृषि की ओर आकर्षित नहीं होते हैं क्योंकि अल्पकाल[1] मे कृषि-सम्बन्धी पूर्ति लोचहीन होती है। कृषि-सम्बन्धी पैदावार उपर्युक्त नीति के द्वारा मन्दी के समय अधिक जाग्रत नही हो पाती है। यह भी अनुभव किया गया है कि यह नीति तेजी के समय भी अवरुद्ध हो जाती है। अतः इस प्रकार की स्थिति मे ऐसी आर्थिक नीति की आवश्यकता होती है, जो सबसे अधिक सहायक हो।

समस्त कृषि उत्पादो को आर्थिक सहायता देना या उन पर करारोपण करना कठिन ही नही वरन् असम्भव होता है। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जिनमे प्रशासनिक कठिनाइयाँ बहुत बड़ी पायी गयी हैं। उदाहरणार्थ—फल या शाक-भाजी के उत्पादन की विवरणी या लेखा प्राप्त करना कठिन होता है। किसी उत्पाद को आर्थिक सहायता दिये जाने पर या उस पर करारोपण किये जाने पर सापेक्ष उत्पादन प्रभावित होता है क्योंकि कृषक बड़ी सरलता के साथ विभिन्न उपजो के उपयोग मे आने वाले क्षेत्रफलो को, पशुओ को दिये जाने वाले आहार की मात्रा के अनुपात मे परिवर्तित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, कृषक, विभिन्न पशुओ की अल्पकालिक गर्भावधि या परिपक्वता प्राप्त करने के समय के अनुसार भी अपनी पशु सम्बन्धी प्रजनन नीति मे अन्तर कर लेते हैं।[2] इस वजह से इस प्रकार की नीति से मिलने वाले लाभ सीमित हो जाते हैं।

प्रशासनिक रूप से व्यावहारिक होने पर, आर्थिक सहायता और उगाहियाँ कृषकों की उपजो से प्राप्त आयो के अनावश्यक उच्चावचनो का समाधान

1. अध्याय 6 के उप-शीर्षक 4, 5 और 6 देखिए।
2. अध्याय 6, उप-शीर्षक 7 देखिए।

करने के उपयोग मे भी आती है। यह नीति पैदावार के एक वर्ष से दूसरे वर्ष मे रूपान्तरित होने वाले देशो मे लाभप्रद होती है। इस नीति के द्वारा भावी रोपण, या युद्ध पूर्व के सुअर सम्बन्धी चक्र[1] मे होने वाले उच्चावचनो को शान्त किया जाता है।

6 कृषि का सरक्षण (The Protection of Agriculture)

गत अनुच्छेदो मे कुछ ऐसी रीतियो का वर्णन किया गया है, जिनके द्वारा राज्य या विभिन्न समयो मे बनने वाले उत्पादको के सगठन, कृषि-उत्पादन की प्रति-स्पर्धात्मक प्रक्रिया मे हस्तक्षेप कर सकते हैं। ये समाज के हित के लिए कृषि उत्पादन का विक्रय भी करते हैं। यहाँ सामान्य समय मे किये गये राजकीय हस्तक्षेप जिसमे उपभोक्ता आर्थिक सहायता के अभाव मे अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार खरीदने की योग्यता रखते हैं और युद्ध के समय या पश्चात् अपनाये गये राजकीय उपायो के बीच अन्तर का वर्णन भी किया गया है। 'कृषि मे राज्य का हस्तक्षेप' नामक अध्याय के इस भाग मे तथा आगामी चार भागो मे सामान्य समय का विवरण ही जारी रखा जायेगा। अभी तक जितने प्रकार के राजकीय हस्तक्षेपो का वर्णन किया गया है, उनमें सामान्य समय पर किये गये राजकीय हस्तक्षेप की सख्या सबसे अधिक रही है परन्तु ये हस्तक्षेप अधिकाशत बड़े पैमाने पर नही पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त, राज्य के पास उत्पादन और विपणन की लागतो को कम करने की कई रीतियाँ होती हैं। कुछ रीतियो के द्वारा श्रम के स्थानान्तरण मे सहायता मिलती है। राज्य कई अवसरो पर सुविदित और नियन्त्रित अभियानो द्वारा कीमतो को मौसमी, वार्षिक या चक्रीय ढग से स्थिर करता है। जब आर्थिक सहायता का भुगतान या उगाही का कार्य, कृषको को प्राप्त होने वाली कीमतो और उपभोक्ताओ द्वारा प्रदान की गयी कीमतो को पृथक् कर देता है, तब उपर्युक्त अवसर अधिक सख्या मे प्राप्त होते हैं। परन्तु वितरण की लागतो मे वृद्धि किये बिना इस प्रकार के कार्य करना हमेशा कठिन होते हैं।

पाठकगण स्वय प्रश्न करें कि इन कुछ प्रभावहीन रीतियो का, उन दीर्घ-कालीन तथा महत्त्वाकाक्षी रीतियो से क्या सम्बन्ध होता है, जो युद्ध के पूर्व कई देशो मे कृषि की सहायता के लिए प्रारम्भ की गयी थीं। केवल उन मामलो को छोड़कर जिन्हें उन्होंने किया है और जिनकी हमने पहले ही प्रशसा

1. अध्याय 8, उप-शीर्षक 5 देखिए।

की है। क्या अर्थशास्त्री इस प्रकार की योजनाओं की नि संकोच रूप से निंदा करते हैं ? इस प्रकार के आर्थिक उपायो को न्यायसंगत बतलाने के निम्न-लिखित कारण हैं —

(1) फार्मों की आयो को पूर्ण आर्थिक सहायता करने से मन्दी के समय मुद्रा-आयो के उच्चावचनो म कमी आती है। यह कार्य राजनैतिक और प्रशासनिक दृष्टि स व्यय की गयी मुद्रा को पुन प्राप्त करने क लिए, तेजी के समय भी लाभप्रद होते हैं। साधारणत , राजनीतिक रूप से भी और प्रशासनीय स्तर पर भी तेजी के समय व्यय की गयी मुद्रा को वापस लेना असम्भव होता है।

(2) जब आर्थिक सहायता का उपयोग नही किया जा सकता है तो फार्मों की आयो को बढाने के लिए अन्य रीतियो का प्रयोग वाछनीय होता है। ऐसी दशा मे बाजार की परिस्थितियाँ फार्मों की आयो को गिराने का प्रयत्न करती हैं। विश्व के अनेक भागो म कृषि उत्पादक, कृषि-उत्पादो का उपभोग करने वाले लोगो की अपेक्षा अधिक गरीब होते हैं। इसलिए कृषि-उत्पादो की स्थिति सुधारने के लिए, राजनैतिक रूप स अच्छी रीतियो के अभाव में, इन रीतियो का महत्त्व अधिक होता है।

(3) कृपको के प्रतिफल को ऊँचा बनाय रखन के लिए वैयक्तिक कीमतो और पैदावार के उच्चावचनो को रोका जाता है, अन्यथा कीमतें कम हो जाती हैं। यह काय कृपको की औसत आय को अधिक तथा अन्य लोगो की आय को कम रखकर किया जाता है। इससे उपभोक्ता स्थिर कीमतो मे कुल राशि अधिक मात्रा मे व्यय करने को तैयार रहत हैं।

(4) आर्थिक सहायता की कुछ योजनाएँ यद्यपि कुल आय को कम करती हैं, परन्तु विश्व के एक भाग को तो लाभ पहुँचाती ही हैं। एक देश की सरकार अपने नागरिको की आय को ऊचा उठाने वाले उपायो का करने मे अपने आपको न्यायसगत पाती है, भले ही य उपाय दूसरे देशो के नागरिको की आय को अधिक मात्रा म कम करत हो।

(5) राज्य सरकार को भविष्य म विश्व के खाद्य-उत्पादन मे कमी या खाद्य-उपज को स्वदेश लाने के लिए जहाजरानी की कमी, या आयात के भुगतान करने की कमी का भय रहने से घरेलू खाद्य-उत्पादन वाछनीय माना जाता है। युद्ध के समय इस प्रकार का खतरा विशेष रूप से उत्पन्न होता है। परन्तु इस अध्याय मे, यहाँ उत्पादो की अधिक मात्रा मे घरेलू पैदावार करने या खाद्य-सामग्री की कमी दूर करने या युद्ध के समय जहाजरानी को प्रोत्सा-

हन देने की नीति के सापेक्ष गुणों के बारे में विवेचन नहीं किया जा रहा है। इसी प्रकार, यहाँ खाद्य-उत्पादन की अपेक्षा युद्धकाल में इंजीनियरिंग तथा गोला-बारूद बनाने वाले अन्य उद्योगों को प्रोत्साहन प्रदान करने के सापेक्ष गुणों का परीक्षण भी नहीं किया जा रहा है।

(6) कृषि को राज्य द्वारा दी जाने वाली सहायता के पक्ष मे उसे न्याय-संगत बतलाने के लिए बहुत से गैर आर्थिक कारण बतलाये जाते हैं। उदाहरणार्थ—(i) इस सहायता से लोगों को बड़ी संख्या मे भूमि के कार्यों में लगाया जाता है, (ii) कृषि के श्रमिक उद्योग के श्रमिकों की अपेक्षा ज्यादा तन्दुरुस्त रहते हैं और (iii) औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों म जनसंख्या के बड़े अनुपात को भूमि के कार्यों पर लगाया जाता है, जिससे कई प्रकार के सामाजिक लाभ होते हैं। अर्थशास्त्रियों से इस प्रकार के लाभों की घोषणा की अपेक्षा करना व्यर्थ होता है। वे केवल लाभदायक क्रियाओं के आर्थिक परिणामों को दर्शाया करते हैं।

कृषि को, उपर्युक्त कारणों से समाज के शेष लोगों के द्वारा वित्तीयन के माध्यम से सहायता दी जानी है। कृषकों की वित्तीय स्थिति को इस प्रकार की सहायता से स्थायी रूप मे नहीं सुधारा जा सकता है। कृषि की सहायता के लिए जिन लोगों पर करारोपण किया जाता है, दीर्घकाल मे, उनका निचला जीवन स्तर प्रतिक्रिया करता है। ये लोग कृषकों तथा कृषि मजदूरों की आय प्राप्त करने के अवसरों म कमी करते हैं। इसके परिणामस्वरूप भूमि पर श्रम का दबाव बढ़ जाता है। साधारणत इस प्रकार की वित्तीय सहायता ऐसे भू-स्वामियों को सहायता पहुँचाती है, जो कृषि की भूमि की बढ़ती हुई माँग का लाभ उठाते हैं। यह अल्पकाल, चाहे पर्याप्त बड़े समय का हो सकता है। राजकीय आर्थिक उपायों से कृषक और श्रमिक दोनों कई वर्षों तक लाभान्वित होते हैं। स्वामी दखलदार को भी काफी अधिक समय तक लाभ मिलता है।

7. फार्म मजदूरों का संरक्षण (The Protection of Farm Wages)

अत्यधिक दीर्घकाल मे यह बात महत्त्वपूर्ण होती है कि आर्थिक सहायता सबसे पहले फार्म के श्रमिकों को या कृषकों को दी गयी। कृषकों को सबसे पहले सहायता दिये जाने से उनकी आपस मे प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है। इससे कृषि मजदूरों की मजदूरी के भाव अधिक हो जाते हैं। कृषकों के बीच प्रतिस्पर्धा को प्रभावपूर्ण होने के लिए कुछ समय लगता है। इसके अतिरिक्त कृषकों

की आय पैदावार को प्रतिबन्धित करने वाले उपायो के द्वारा बढाये जाने पर, कृषको के पास अधिक मात्रा मे मजदूरी देने के लिए कुछ नहीं रहता है क्योकि इस स्थिति मे कृषको को बहुत कम मजदूरो की आवश्यकता होती है। राज्य, कभी-कभी कुछ अशो मे उपर्युक्त कारण से तथा औद्योगिक मजदूरी से कृषि मजदूरी बहुत कम रहने के कारण, फाम के मजदूरो की मजदूरी बढ़ाने का कार्य करता है। साधारणत इस प्रकार के राजकीय हस्तक्षेप न्यूनतम मजदूरी कानूनो के प्रवर्तन का स्वरूप ले लेते हैं। जैसे—इग्लैण्ड मे ऐसा ही होता है।

उद्योग की अपेक्षा कृषि मे रोजगार की प्रवृत्ति कम मात्रा मे होने से मजदूरी का स्तर नीचा रहता है। कृषि की सहायता के समय मजदूरी अधिक देने की बात सबसे पहले कही जाती है और एक गम्भीर प्रश्न उत्पन्न हो जाता है। किसी प्रकार की शासकीय सहायता के अभाव मे, कृषक अधिक मजदूरी देने के लिए कृषि मे कम श्रमिको की माँग करते हैं। इससे कृषि के बाहर श्रमिकों के जाने की क्रिया बहुत ही कम अशो मे रुकती है और बेरोजगारी की मात्रा स्वाभाविक रूप से बढ जाती है। परन्तु इग्लैण्ड मे न्यूनतम मजदूरी कानून के आर्थिक प्रभाव उपर्युक्त रीति से नही हुए थे। फार्मिग मे बेरोजगारी का स्तर अन्य उद्योगो की अपेक्षा नीचा था। इसके निम्नलिखित दो कारण प्रतीत होते हैं :—

(1) ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि कृषको ने अपने कार्य कर्ताओं का सापेक्ष रूप से मूल्याकन करके, रूढ़िवादी मजदूरी देने की प्रवृत्ति का आश्रय लिया था। फार्म के श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रो मे फैले रहने के कारण ऐसे श्रमिक सघो का गठन नही कर पाये थे, जो उन्हे अपने मालिको के समक्ष मजदूरी के मोलभाव करने की समान मात्रा मे शक्ति प्रदान करते हैं। इसलिए मजदूरों के आर्थिक स्तर को बनाये रखने के लिए अनिवार्य मजदूरी मण्डलों (Compulsory wages Boards) ने बहुत अधिक मात्रा में मजदूरी नहीं बढायी थी।

(11) न्यूनतम मजदूरी के प्रचलन ने सर्वाधिक अयोग्य कृषको को व्यवसाय के बाहर जाने के लिए या अपनी रीतियो मे सुधार करके पुनर्गठन करने के लिए बाध्य किया था। उन्हें अपने फार्मों मे आधुनिकतम मशीनो और श्रम बचाने के तरीको का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया था। इस प्रकार के कार्य समयानुसार बदलने वाले कृषको ने किया था और फार्मिग की रीतियो मे तेजी के साथ सुधार हुआ था। इसके परिणामस्वरूप इग्लैण्ड के कृषक अधिक मजदूरी देने के योग्य हो गये थे।

कृषकों द्वारा अपनाये जाने वाले उपर्युक्त अभ्यानुकूलनों (Adaptations) का अत्यधिक महत्व होता है क्योकि प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् कृषि-सम्बन्धी मन्दी के बावजूद फार्म मजदूरी (जो उस समय सबसे कम थी) कृषि-मजदूरी मण्डल (Agricultural wages Boards) द्वारा निश्चित की गयी थी और युद्ध के पूर्व की औद्योगिक मजदूरी की अपेक्षा इसे अधिक रखा गया था।

कृषि को सहायता पहुँचाने वाली अधिकाश रीतियाँ, कृपको की सहायता के उद्देश्य से बनायी जाती हैं। साधारणत: इन रीतियो के निम्नलिखित तीन रूप मिलते हैं :—

(1) राजकोष से प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता।

(2) कृषि-उत्पादों के आयातो पर प्रतिबन्ध।

(3) कीमतो को ऊँचा उठाने के लिए कुल पूर्ति पर प्रतिबन्ध।

इस प्रकार की नीति जब एक देश द्वारा अपनायी जाती है तो क्रमश: कई देशो मे सविदा द्वारा अथवा अपवादस्वरूप उत्पादको के द्वारा प्रयोग मे लायी जाती है। उपर्युक्त रीतियो मे से कुछ इतने अच्छे ढग से बनायी जाती हैं कि कृषि-पैदावार के लक्ष्य को न्यूनतम लागत द्वारा प्राप्त किया जा सकता है यदि कृषि क्रियाओ को बहुत अधिक संख्या मे सुधारने की बात कही जाती है तो ऐसे उपाय अस्त-व्यस्त हो जाते हैं और कृषक उन योजनाओ का पूरा उपयोग नहीं कर पाते हैं। इससे कृपको की आय अधिक करने का कार्य अधूरा रह जाता है और योजना मे निर्धारित किये गये समस्त या कुछ लक्ष्य प्राप्त करने मे सफलता नही मिलती है।

8 कृषि को दी जाने वाली आर्थिक सहायता
(Subsidies to Agriculture)

कृपको की आय बढ़ाने के लिए राजकोष से प्रत्यक्ष भुगतान के बारे मे कई स्थानो मे सन्दर्भ दिया जा चुका है। इस प्रकार की आर्थिक सहायता के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य होते हैं :—

(1) मन्दी के समय समस्त कृपको की आय को बढ़ाकर व्यापार-चक्र (Trade Cycle) के प्रभावो को शान्त करना। उदाहरणार्थ— सन् 1933 ई० के बाद सयुक्त-राज्य अमेरिका मे कृषि समजन कानून (Agricultural Adjustments Act) के अन्तर्गत् किये गये भुगतानो के पीछे उपर्युक्त विचारधारा ही थी। ये भुगतान उत्पादको की आय बढ़ाकर

वैयक्तिक-उत्पादो के दूषित-चक्र को नष्ट करने के उपयोग म आते हैं। जैसे सुअरो की पैदावार तथा कीमत का दूषित चक्र।

(2) सुरक्षा-कारणो के अन्तर्गत कृषि मे सामान्य विकास या कृषि-उत्पादन की रीतियो मे सुधार करने के लिए सहायता देना। उदाहरणार्थ—ग्रेट ब्रिटेन मे अभी हाल के युद्ध के पूर्व शक्कर और गेहूँ के उत्पादन बढाने के लिए अधिक मात्रा मे आर्थिक सहायता दी गयी थी।

(3) युद्ध के अवसर पर, देश की विदेशी पूर्ति पर निर्भरता को कुछ अशो मे कम करना।

(4) फार्मिंग की रीतियो को सुधारना। उदाहरणार्थ—ग्रेट ब्रिटेन मे पुराने चरागाहो पर हल चलाने, फिर से बीज बोने तथा चूना और इस्पात-मल का प्रयोग करने के लिए दी गयी। आर्थिक सहायता का उद्देश्य फार्मिंग की रीति को प्रोत्साहन देना था। सामान्यत कृषक फार्मिंग की उपर्युक्त नयी रीतियो का कम मूल्याकन करते है, परन्तु यह सत्य है कि इन रीतियो द्वारा मृदा (soil) की उत्पादकता बढती है।

(5) भूमि के कार्य से बहिर्गमन करने वाले श्रमिको को रोकना। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए समस्त फार्म-उत्पादो को, दीर्घकाल के लिए आर्थिक सहायता का भुगतान किया जाता है।

(6) विशेष प्रकार के उपभोग मे वृद्धि करना और कृषको को लाभ पहुँचाना। राज्य समस्त उपभोक्ताओ द्वारा या किसी विशेष वर्ग द्वारा कुछ कृषि उत्पादों के अधिक उपभोग की इच्छा रखता है और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक सहायता देता है। उपभोक्ताओ को ये वस्तुएँ पहले की अपेक्षा सस्ती कीमत मे प्राप्त होती हैं और उनका अधिक मात्रा मे विक्रय होने से उत्पादको को लाभ होता है। उदाहरणार्थ—ग्रेट ब्रिटेन मे युद्ध के पूर्व स्कूल के बच्चो को आधी कीमत मे दूध बाँटने की योजना और वर्तमान मे बच्चो, गर्भवती स्त्रियो और छोटे बच्चो की माताओ को मुफ्त मे दूध बाँटने की योजना का यही उद्देश्य है।

उपर्युक्त प्रमुख उद्देश्यो के अतिरिक्त आर्थिक सहायता का कुछ कम विधियुक्त उद्देश्यो के लिए भी प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ—माँग की कमी या स्थायी रूप से लागत मे कमी के कारण किसी वस्तु की कीमत कम होने से उसके श्रमिको की आय भी कम हो जाती है। अत आर्थिक सहायता के द्वारा श्रमिको की कम आय को बढाया जाता है। इस प्रकार की सहायता उत्पादन में वाछित समायोजन करने मे बाधक होगे। इसमे कोई शक

नही है कि युद्ध से पहले ग्रेट ब्रिटेन मे जो गेहूँ-अनुदान दिया गया था वह इसी वर्ग मे आता है, वजाय सुरक्षा के इनके रूप होने के।

सामान्य आर्थिक सहायता अल्पकाल मे बहुत कम अवसरो पर पैदावार को प्रभावित करती है। परन्तु स्थायी आर्थिक सहायता उत्पादन के साधनो को कृषि की ओर आकर्षित करती है अथवा कृषि के बाहर जाने से रोकती है। आर्थिक सहायता अन्य प्रतिस्पर्धा करने वाली उत्पादो की तुलना मे विशेष उत्पादो की पैदावार को बढ़ाने मे मदद देती है। कृषको की केवल आय को बढ़ाने के उद्देश्य से दी गयी आर्थिक सहायता पैदावार की विशिष्ट मात्रा तक सीमित रहती है। वैसे कृषकों को बढ़ी हुई कीमतें प्रदान की जा सकती हैं, परन्तु कीमतो की इस वृद्धि को प्रत्येक कृषक द्वारा भूतकाल मे एक निश्चित समय मे बेंची गयी पैदावार के समान या अनुपात मे होना आवश्यक होता है क्योंकि कृषको को उस कीमत से अधिक कीमत नही दी जा सकती है, जो वे पहले पैदावार की किसी भी वृद्धि के लिए पाते थे। इस प्रकार की आर्थिक सहायता का सर्वाधिक प्रमुख उद्देश्य वर्तमान कृषको की आर्थिक स्थिति मे उन्नति करना होता है। नये उत्पादको को आर्थिक सहायता के लाभ प्राप्त नही होते हैं। नये उत्पादक उत्पादन की नयी रीतियो को अपनाते हैं। अत. वर्तमान उत्पादक नये उत्पादकों से पैदावार बढ़ाने के लिए थोडी सी प्रतिस्पर्धा रखते हैं।

आर्थिक सहायता का प्रभाव अपने निर्धारित उद्देश्यो के अनुसार भिन्न होते हैं। यदि आर्थिक सहायता का उद्देश्य उत्पादन मे वृद्धि करना है तो इसकी सबसे उत्तम रीति पैदावार के अनुपात मे भुगतान करना होती है। इस कार्य के लिए बिक्रय की विवरणी की आवश्यकता पड़ती है। विवरणी की रीति जहाँ अव्यावहारिक या अवाछनीय होती है, वहाँ आर्थिक सहायता का निर्धारण, उपजो के क्षेत्रफल या पशुओं की सख्या के अनुसार किया जाता है। यह रीति गहन उत्पादन के स्थान पर विस्तृत उत्पादन मे ज्यादा सफल होती है क्योंकि इसमें कम योग्यता से किये जाने वाले उत्पादनो को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरणार्थ—युद्ध काल मे गेहूँ और आलू के क्षेत्रफल पर प्रदान की गयी आर्थिक सहायता ने कृषको को अयोग्य भूमि पर गेहूँ और आलू उत्पन्न करने का प्रलोभन दिया था। परन्तु कुछ समय उपरान्त कृषको ने उपेक्षा करनी शुरू कर दी थी। शायद उन्हे आवश्यकता से अधिक समय तक आर्थिक सहायता दी गयी थी। कुछ आर्थिक सहायताएँ कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं के उपयोग पर प्रति टन के हिसाब से दी जाती हैं। आर्थिक सहायता प्राप्त उत्पाद के उपयोग को

प्रोत्साहन देने के लिए यह वाछनीय मानी जाती है। परन्तु ऐसा भी अनुभव किया गया है कि कभी-कभी विपरीत प्रभाव होते हैं। उदाहरणार्थ—युद्धकाल मे क्रय की हुई खाद्य-सामग्री को आर्थिक सहायता दी गयी थी और यह अपेक्षा की गयी थी कि कृषक इनके उपयोग मे मितव्ययता अपनायेंगे। उद्देश्य यह था कि ऐसा करने से मांगो को ऊँची कीमतो के लिए रोकने मे मदद मिलेगी। परन्तु इसके परिणामो को सफल कहना बडा कठिन है।

कृषको को सहायता के रूप में दी जाने वाली आर्थिक सहायता का एक लाभ यह होता है कि इसका भार करदाताओं पर पडता है। परन्तु यह भार ऐसे कर-दाताओ पर पडना चाहिए जो उसे बडी सरलता से सहन कर सकते हो। उन देशो मे कृपको को आर्थिक सहायता देने का कार्य सहज होता है, जहाँ कृपको की सख्या औद्योगिक जनसख्या से बहुत कम होती है। इससे आर्थिक सहायता का भार प्रत्येक करदाता पर कम मात्रा मे पडता है। इग्लैण्ड मे ऐसी ही स्थिति है। यहाँ पर कृषि मे काम करने वाले लोगो की सख्या, रोजगार मे कार्यरत कुल जनसख्या का केवल 7% है और यहाँ की कुल राष्ट्रीय आय के सन्दर्भ मे कृषि-सम्बन्धी आय का प्रतिशत और भी कम है।

किसी देश मे यदि कृषि उत्पादो का उत्पादन प्रमुख रूप से होता है, तो वहाँ कृपको को दी जाने वाली सहायता के लिए लगाये गये करों का भार कृपको पर अधिक मात्रा मे पडना चाहिए अन्यथा कृषि को अधिकतम सहायता देने के लिए विदेशो से अनुदान प्राप्त करना आवश्यक होगा।

9 आयातो के प्रतिबन्ध (Restriction of Imports)

कृपकों को सहायता करने की दूसरी रीति कृषि-उत्पाद की आयात की मात्रा को इस उद्देश्य से कम करना है कि स्वदेशी उत्पादो की माँग बढ़े और विदेशी कृपको के स्थान पर स्वदेशी कृषक सहायता पा सकें। यह रीति कृषि-उत्पादो का आयात करने वाले सभी देशो मे कम या अधिक मात्रा मे अपनायी गयी है। जिन देशो मे कृषि-उत्पादो का आयात अधिक मात्रा मे नही होता है, वहाँ यह रीति अव्यावहारिक हो जाती है। आयात को कम करने के कुछ प्रमुख तरीके निम्नलिखित हैं :—

(i) प्रशुल्क द्वारा आयातो का निरोध करना।
(ii) कोटा पद्धति द्वारा आयातो का निरोध करना।
(iii) लाइसेन्स पद्धति द्वारा आयातो का निरोध करना।
(iv) विनिमय नियन्त्रण द्वारा आयातो का निरोध करना।

इस पुस्तक-माला[1] की पूर्व पुस्तक में प्रशुल्कों के पक्ष और विपक्ष में विवेचन किया गया है, अतः यहाँ उसे दोहराया नहीं गया है। परन्तु कृषकों की सहायता देने वाली रीतियों के रूप में आर्थिक सहायता और आयात नियन्त्रण में बीच के स्पष्ट अन्तरों पर ध्यान दिया जा रहा है।

आयात-नियन्त्रण की रीति की सफलता स्वदेशी कृषि-उपजों की कीमतों को ऊँचा उठाने पर निर्भर करती है। कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि उपर्युक्त कार्य प्रशुल्क नीति से नहीं किया जा सकता है। जैसे—जब विदेशी पूर्ति अत्यधिक लोचहीन होती है तो विदेशों से स्वदेश को, इतनी अधिक मात्रा में कृषि उत्पादों का आयात होता है कि स्वदेश में उत्पन्न उपजों की कीमतें ऊँची नहीं हो पाती हैं। औद्योगिक उत्पादों की पूर्ति, सामान्य समयों पर, सन्तोषप्रद रूप में लोचदार होती है। इसके विपरीत पारिवारिक फार्मों से कृषि-उत्पाद की पूर्ति काफी लम्बे समय[2] तक के लिए, लोचहीन रहती है। ग्रेट ब्रिटेन अपने आयात का बड़ा भाग पारिवारिक फार्मों वाले देशों से मँगाता है। इनमें से कई देशों के पास युद्ध के पूर्व अपने कृषि उत्पादों को बेचने के लिए बहुत कम वैकल्पिक बाजार थे। इसका एक कारण ब्रिटिश बाजार में इन कृषि-उत्पादों की पूर्ति का अल्पकाल में बहुत अधिक लोचहीन हो जाना था। इन परिस्थितियों में प्रशुल्क की नीति ब्रिटिश कृषकों को सहायता पहुँचाने में ज्यादा सफल नहीं हो सकी। इसके विपरीत ग्रेट ब्रिटेन इस स्थिति में था कि वह प्रशुल्क के माध्यम से काफी राजस्व इकट्ठा कर सके। वहाँ यह प्रशुल्क विदेशियों पर लगता जो पहले की भाँति ही यदि पूरी मात्रा भेजते हैं तो उन्हें कर देना पड़ता है। वास्तव में, इस अतिरिक्त आय का प्रयोग ब्रिटिश-कृषि की आर्थिक सहायता के लिए किया गया।

किसी देश में पूर्ति के लोचहीन होने पर, या यदि कुल आयात की एक निश्चित मात्रा में कोटा पद्धति द्वारा कटौती की जाती है, आयात की गयी शेष वस्तुओं की कीमत बढ़ जाती है। कीमतों की इस वृद्धि का आर्थिक भार खाद्य-सामग्री के उपभोक्ताओं पर पड़ता है। यह भार करदाताओं पर राजकोष से प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता के भार के समान नहीं पड़ता है क्योंकि गरीब लोग अमीरों की तुलना में खाद्य-सामग्री को बहुत कम मात्रा में नहीं खरीदते हैं *और करारोपण की सामान्य प्रणाली का निर्धारण, गरीबों की अपेक्षा*

1. आर० एफ० हेरोड की पुस्तक अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का नौवाँ अध्याय।
2 अध्याय 6 के उप शीर्षक 4, 5 और 6 देखिए।

अमीरो से, ज्यादा धन प्राप्त करने के लिए बनायी जाती है। इस तरह, आर्थिक सहायता की अपेक्षा आयात नियन्त्रण गरीबो पर अधिक मात्रा मे बोझ डालते हैं। स्वदेशी उत्पादन और आयात की मात्रा एक बराबर होने पर, यह बात अधिक सत्य मालूम होती है। साधारणत उपभोक्ता को उपर्युक्त दोनो रीतियो के प्रति उदासीन होना चाहिए परन्तु व्यावहारिक जीवन मे ऐसा नहीं होता है। स्वदेशी उत्पाद और विदेशी आयात आपस मे भिन्न बाजारो मे बिकते हैं।[1] सरल शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि आयातो के प्रतिबन्ध से, स्वदेशी वस्तुओ की कीमतो की अपेक्षा आयातित वस्तुओं की कीमतें अधिक बढती हैं। इससे आयात की गयी वस्तुओ के उपभोक्ताओ को हानि होती है। यह हानि सरक्षित उत्पादो के स्वदेशी उत्पादको को होने वाले लाभ स अधिक मात्रा म होती है। युद्ध के पूर्व चूंकि स्वदेशी उत्पादो की तुलना मे आयात की गयी वस्तुएं सस्ती थी और गरीब लोग विशेष रूप से इनका उपभोग करते थे, इसलिए आयात क आंशिक प्रतिबन्ध का भार अमीरो की अपेक्षा गरीबो पर अधिक मात्रा मे पड रहा था। इन्ही कारणो से आयात के प्रतिबन्धो को अवाछनीय कहा जाता है। आयात के प्रतिबन्ध के कुप्रभाव को दर्शाने वाले कई उदाहरण पाये जाते हैं। जैसे—सन् 1932 मे ब्रिटिश राज्य समूह मे सबसे पहली बार आयात पर अपनायी गयी कोटा नीति का प्रभाव, सुअर के भुने हुए मांस की कीमतों पर पडा। सन् 1932 से 1936 के बीच सुअर के भुने हुए मांस का आयात लगभग 42% कम हो गया था। इससे डेनिश सुअर के भुने हुए मांस की फुटकर $9\frac{1}{2}$ पैस से बढकर 1 शि० 4 पैस प्रति पौण्ड हो गयी थी, परन्तु ब्रिटिश विल्ट शायर का सुअर के भुने हुए मांस की कीमत 1 शि० 3 पैस स बढकर केवल 1 शि० $5\frac{1}{2}$ पैस हुई थी। इस प्रकार, ब्रिटिश कृषक को मिलने वाली कीमत केवल 10 शि० 4 पैं० से 11 शि० 5 पैस अर्थात 5% बढी थी और डेनिश सुअर के भुने हुए मांस की कीमत मे अधिक वृद्धि हुई थी। परन्तु इस उदाहरण मे यह शका उत्पन्न होती है कि आयात के प्रतिबन्ध, ग्रेटब्रिटेन जैसे देश मे, कृषको को सामान्य समय के अन्तर्गत, अल्पकाल मे भी लाभ पहुँचाते हैं। ब्रिटेन मे आयात की गयी खाद्य-सामग्री की ऊँची कीमतो के कारण श्रमिक वर्ग की वास्तविक आय म कमी से अन्य वस्तुओ की मांग कम हो गयी थी। इससे स्वदेश म कृषको द्वारा उत्पादित कुछ खर्चीले खाद्य-पदार्थों की मांग विशेष रूप से कम हुई थी, जो कि मुख्य रूप से ब्रिटिश कृषको द्वारा

1 अध्याय 6, उप-शीर्षक 8 देखिए।

उत्पन्न किये जाते थे। अतः आयात की प्रतिबन्ध नीति ने, स्वदेश में उन कृषकों को फायदा पहुँचाया था, जिनकी उत्पादें आयात की हुई खाद्य-सामग्री से प्रतिस्पर्धा करती थी परन्तु शेष अन्य कृषकों को हानि हुई थी, जो अधिक ऊँची कीमत के उत्पादों का उत्पादन करते थे।

आयात के प्रतिबन्ध की नीति, युद्धकाल में, देश को विदेशी आयातों पर कम मात्रा में आश्रित रखते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त यह शंका होती है कि क्या आयात-प्रतिबन्ध की नीति के द्वारा कृषि के संरक्षण के लिए सामान्य समयों पर किसी उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है। आजकल आयात प्रतिबन्ध की नीति उपर्युक्त शंका के बावजूद अत्यधिक आवश्यक मानी जाती है।

10. समस्त पूर्ति का प्रतिबन्ध
(The Restriction of Total Supplies)

कृषकों को सहायता देने की तीसरी रीति, प्रथम दो रीतियों से भिन्न है। इस रीति में ऐसे लोगों के द्वारा किये जाने वाले विक्रय पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है, जो अपने प्रतिफलों को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रकार की नीति अन्तर्राष्ट्रीय नीति हो सकती है। ऐसा देखा गया है कि कुछ देश की सरकारें या उत्पादक, कीमतों को बढ़ाने या एक निश्चित सीमा से कम में न बेचने के उद्देश्य से विक्रय सीमित करने का संविदा कर लेते हैं। इससे अप्रत्यक्ष रूप से विक्रय सीमित हो जाता है और उपभोक्ता एक निश्चित कीमत में वस्तुओं को खरीदने के लिए बाध्य हो जाते हैं। इस तरह की नीति का अनुसरण एक देश के भीतर भी किया जा सकता है, परन्तु इसका लक्ष्य कृषकों के प्रतिफलों में वृद्धि करना होता है। इसके अन्तर्गत स्वदेश में उत्पादित उत्पादों की पूर्ति को रूपान्तरित किया जाता है। आयात प्रतिबन्ध की नीति के समान माँग में परिवर्तन नहीं किया जाता है।

समस्त पूर्ति के प्रतिबन्ध की नीति में स्वदेश के उत्पादकों को उनके द्वारा ली जाने वाली कीमतों पर कुछ अनिवार्य अधिकारों की आवश्यकता होती है। जो या तो प्रत्यक्ष रूप से, जो स्वदेशी उत्पादकों द्वारा चार्ज किये जाकर या फिर अप्रत्यक्ष रूप से उनकी रकम पर सीधा अधिकार करने से प्राप्त होते हैं। वे, अपनी उत्पाद की पूर्ति में नियन्त्रण करके अर्थात् जितनी मात्रा में उसे बेचना चाहते हैं, उनकी कीमतों पर कुछ अप्रत्यक्ष रूप से अधिकार प्राप्त करते हैं। पूर्ति नियन्त्रण के इन दोनों तरीकों में निम्नलिखित अन्तर समझना आवश्यक है :—

(1) समस्त पूर्ति जिसे बेचना है) को सबसे लाभदायक बाजार मे निमन्त्रित किया जाता है, परन्तु वैयक्तिक उत्पादो के कृषकों को यह स्वतन्त्रता देना आवश्यक होता है कि वे अपनी इच्छित मात्रा मे उत्पादन करें।

(2) समस्त पूर्ति की उस मात्रा को, जिसे प्रत्येक उत्पादक उत्पन्न करता है, नियमन किया जा सकता है।

किसी उत्पाद का विक्रय सीमित होने पर (उत्पादन नही) उत्पादकों के बीच प्रतिबन्धित विक्रय से मिलने वाली कुल प्राप्ति को उनके बीच बाँटने का कोई तरीका ढूंढना आवश्यक है। वैसे इसकी कुछ प्रमुख रीतियाँ विद्यमान हैं। साधारणत प्रत्येक उत्पादक को, एक विशिष्ट अनुपात मे, सबसे लाभदायक बाजार मे अपनी पैदावार बेचने की स्वीकृति देना आवश्यक समझा जाता है। ग्रेट ब्रिटेन की आलू विपणन योजना (Potato Marketing Scheme) में इसी तरह की स्वीकृति दी गयी थी। दूसरी पद्धति म, किसी उत्पाद के लिए किये गये समस्त भुगतानों को पहले एक केन्द्रीय सगठन द्वारा मिला दिया जाता है और फिर, उनकी पूर्तियो के अनुपात मे उत्पादको के बीच बाँट दिया जाता है। इग्लण्ड की "दूध विपणन योजना" (Milk Marketing Scheme) मे यही सिद्धान्त अपनाया गया है।

विक्रय सीमित करने की नीति, प्रत्यक्ष रूप से या कीमत के नियन्त्रण द्वारा, उत्पादको को उस समय लाभ पहुँचाती है, जब व्यापारियो की माँग उनके उत्पादो के लिए लोचहीन होती है। प्रमुख बाजार से पृथक की गयी राशि को नष्ट करने और कृषको को लाभ प्राप्त कराने के लिए माँग की लोच को इकाई से कम होना चाहिए। कृषि-उत्पाद को कम कीमत मे बेचने की दशा मे माँग की लोच कम लोचहीन होती है और उत्पादको को, प्रमुख बाजार मे विक्रय करने से प्रतिबन्धित होने पर भी लाभ होता है। इसके अतिरिक्त, प्रमुख बाजार से हटायी गयी उत्पाद की मात्रा अन्य स्थानो के बाजारो मे मौलिक कीमत से आधी कीमत मे बेची जाने पर भी, उत्पादको को प्रतिबन्धित पूर्ति के कारण लाभ होता है। उत्पादको को यह लाभ मिलने के लिए व्यापारियो की माँग की लोच २ (दो) से कम होना अनिवार्य है।

पूर्ति नियन्त्रण एक देश तक सीमित रहने पर, वहाँ घरेलू उत्पाद की माँग उस समय लोचहीन होती है, जब उनकी कीमत मे वृद्धि होने पर विदेशों से किये जाने वाले आयात बड़ी मात्रा में आकर्षित नहीं होते हैं। इसका कारण

यातायात की लागतों का अधिक होना या प्रशुल्को की सहायता से विदेशी आयातो पर प्रतिबन्ध होना होना है। इग्लैण्ड मे युद्ध के पूर्व, होप, आलू और तरल दूध जैसे लोचहीन माँग वाले उत्पादो के लिए नियन्त्रण की उपर्युक्त रीति का प्रयोग किया गया था। तरल दूध के लिए, विशेष रूप से यातायात की लागतो को सुचारु सरक्षण दिया गया था। आलू और होप के आयात को कोटा पद्धति और प्रशुल्को द्वारा सीमित किया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय पूर्ति नियन्त्रण के समय समस्त स्रोतो से पूर्ति काट दी जाती है और उसकी माँग की लोच को सुसगत बना दिया जाता है। इग्लैण्ड मे शक्कर के सम्बन्ध मे इसी नीति को अपनाया गया था।

यह नीति आयात प्रतिबन्ध की नीति के समान कृषको को दी गयी सहायता का आर्थिक भार करदाताओ पर न डाल कर, कृषको पर डालती है। सापेक्ष रूप से लोचहीन माँग वाली उत्पादो के लिए इस रीति का प्रयोग प्रभावपूर्ण तरीके से किया जा सकता है। परन्तु यह रीति आर्थिक सहायता की रीति के समान नही होती है। इस रीति मे अपव्यय अधिक होता है, क्योकि प्रमुख बाजार से पृथक की गयी उत्पाद की मात्रा के एक भाग को नष्ट कर दिया जाता है या ऐसे उपयोगो मे विपणन किया जाता है, जिनके लिए उपभोक्ता कम कीमत देने को तैयार होते हैं, क्योकि इन उपभोक्ताओ को कम मात्रा मे सन्तोष मिलता है। पृथक की गयी उत्पाद की मात्रा का उपर्युक्त अनुपात, अधिक मात्रा के प्रतिफलों से पूर्ति के साथ होने वाली अनुक्रिया द्वारा बढ़ जाता है। परन्तु कृषकों का औसत प्रतिफल कम हो जाता है। इस स्थिति मे औसत प्रतिफलो को अधिक करने के लिए ऊँची कीमतो की माँग उत्पन्न हो जाती है।

वैसे इस परिस्थिति की असगतता या अनुपयोगिता को अधिक समझाने की आवश्यकता नही है। किसी व्यवसाय मे, उत्पादन के साधनो का अपव्यय होने से या उनका उपयोग ऐसी उत्पादो को उत्पन्न करने म किये जाने से जिनके लिए उपभोक्ता उत्पादन लागत से कम मात्रा मे भुगतान करने को तैयार होते हैं, उत्पादन के साधनो को विदेशो से आकर्षित करना आर्थिक दृष्टि से उचित नहीं होता है। इसके अतिरिक्त कीमतो को ऊँचा उठाने के लिए बाजार में पूर्ति का सीमित होना आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति में पैदावार की वृद्धि करने की स्वीकृति देना हास्यास्पद होता है। उत्पादन और विक्रय को नियन्त्रित करने का यह प्रमुख न्यायसगत कारण है। बढ़ी हुई कीमतें,

आर्थिक सहायता के समान केवल निश्चित मात्रा के उत्पादन द्वारा सीमित होती हैं। इंग्लैण्ड में 'होप्स विपणन योजना' (Hops Marketing Scheme) के लिए इसी नीति का उपयोग किया गया था। इस नीति के अन्तर्गत प्रत्येक उत्पादक को एक निश्चित कोटा (Quota) दिया गया था। इस कोटे से अधिक विक्रय करने पर अतिरिक्त बिक्रय की मात्रा के लिए नाममात्र कीमत रखी गयी थी। इसी तरह उत्पादकों को कृषि उत्पाद की एक विशेष मात्रा से अधिक उत्पादन करने पर जुर्माना किया जाता था। जैसा कि ब्रिटेन के आलू उत्पादकों पर किया गया जुर्माना।

पूर्ति के प्रतिबन्ध की नीति के अन्तर्गत उत्पादन नियन्त्रण की स्वीकृति सफलपूर्ण मानी जाती है। परन्तु ऐसा करने पर निम्नलिति दो दोष उत्पन्न हो जाते हैं —

(1) नियन्त्रित एकाधिकार की स्थिति म अवरोधात्मक प्रभाव लुप्त होने लगते हैं। कृषि उत्पाद की पैदावार मे वृद्धि होने के कारण, एकाधिकारी स्थिति मे कीमतो को असीमित मात्रा मे अधिक नही किया जा सकता है। यदि एकाधिकारी को पैदावार की वृद्धि रोकने के लिए अधिकार दिय जाते हैं, तो वह कीमतो को ऊँचा करने मे आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्र हो जाता है।

(2) उत्पादो का वैयक्तिक कोटा, उत्पादक की पिछली आर्थिक गतिविधियो के अनुसार निश्चित किय जाने म योग्य उत्पादको को अपने उपक्रम का विस्तार करने और अधिक लाभ कमाने से रोकते हैं क्योंकि इन्हे कुछ अशो म नये उत्पादको, जो कुछ समय पूव कृषि के कार्य मे आये है, के बराबर मान लिया जाता है।

अभी तक हमारी यह मान्यता रही है कि समस्त उत्पाद उस क्षत्र म बिक जाते हैं, जहाँ पूर्ति और कीमत के नियन्त्रण की योजना को परिचालित किया जाता है। परन्तु जब समस्त उत्पाद की कुछ मात्रा का निर्यात किया जाता है तो कीमत नियन्त्रण के निम्नलिखित दो परस्पर व्यासाभिमुख (Diagonally Opposite) प्रकार पाय जाते हैं —

(1) घरेलू पूर्ति को सीमित करके कीमतो को ऊँचा उठाया जाता है और उत्पादन की अतिरिक्त मात्रा का निर्यात उसी कीमत पर किया जाता है जो कीमत वह प्राप्त करती है। अतिरिक्त मात्रा का ऊँची कीमत के अभाव मे नष्ट नही किया जाता है और न स्वदेश मे ही कम कीमत के उत्पाद के रूप

मे उपयोग मे लाया जाता है। इस प्रकार की नीति उस समय प्रभावपूर्ण होती है, जब प्रशुल्कों के द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं को, उत्पादक देश से निर्यात करने वाले देशों मे जहाज द्वारा जाने से रोका जाता है।

(2) पूलन पद्धति (Pooling System) अपनाने पर उत्पादन की निर्यात योग्य अतिरिक्त मात्रा को, विदेशो मे वहाँ की तत्कालीन कीमतो पर बेचा जाता है और स्वदेश मे इन उत्पादो की कीमतें ऊँचे स्तर पर रखी जाती हैं। निर्यातो के लिए भुगतान की जाने वाली आर्थिक सहायता के भी इस प्रकार के आर्थिक परिणाम होते हैं। व्यापारी विदेशो मे उस समय तक बेचना पसन्द करते हैं, जब तक निर्यात के लिए दी गयी आर्थिक सहायता की मात्रा से विदेशी कीमतें कम नही होती हैं। इसके अतिरिक्त माँग लोचहीन होने पर विदेशो मे निर्यात की अधिक मात्रा से कीमतो पर दबाव पडता है और आयातकर्ता देश 'पाटे हुए' आयातो को प्राप्त करने मे आपत्ति करने लगते हैं। यद्यपि विदेशो को सस्ते माल से लाभ ही होता है। साधारणत. 'पाटना' अस्थायी होता है परन्तु अधिक समय तक किये जाने पर तत्सम्बन्धित उत्पादो के उत्पादको को हानि होती है। वे उस कृषि व्यवसाय से क्रमश. बाहर हो जाते है और इससे समस्त पूर्ति मे कमी हो जाती है।

वैकल्पिक रूप से जब उत्पाद की अत्यधिक मात्रा विदेशी उपभोक्ताओ को बेची जाती है, तो एकाधिकारी प्रवृत्ति के अन्तर्गत पूर्ति को प्रतिबन्धित करके चार्ज की गयी कीमतो को बढ़ाया जा सकता है। उदाहरणार्थ—मलाया के रबर उत्पादक, ब्राजील के काफी रोपण करने वाले या न्यूजीलैण्ड मे डेयरी का कार्य करने वाले उत्पादक अपनी उपज के विक्रय की पूर्ति के प्रतिबन्ध की नीति अपना कर कम कर देते हैं, तब अन्य देशो के उपभोक्ताओ को सबसे अधिक कष्ट होता है। विदेशी उपभोक्ताओ की माँग लोचहीन होने से निर्यात-कर्ता देश को लाभ होता है। इसके लिए विदेशो मे लोचहीन माँग होने के अतिरिक्त तत्सम्बन्धित उत्पाद की पूर्ति का अन्य कोई स्रोत होना भी जरूरी है। इससे उत्पादक देश पैदावार को बढाने मे समर्थ हो जाता है और कीमत अन्य देशो के प्रयत्नो के बाद भी ज्यादा ऊँची नही हो पाती है। वास्तव मे उपयोग करने वाले देशो मे दूसरे प्रकार की स्थिति प्राय नही पायी जाती है। किसी भी देश मे एक उत्पाद के उत्पादन के लिए मृदा या जलवायु सम्बन्धी पूर्णरूपेण एकाधिकार की स्थिति पाना बडा दुर्लभ होता है, जिसमे कीमतो के बढ़ने से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे प्रतिस्पर्धा करने वाले प्रकट नही हो पाते हैं।

यह अनुभव किया गया है कि कीमतो की एकाधिकारपूर्ण वृद्धि लगभग हमेशा शोचनीय होती है। परन्तु कीमतो की यह वृद्धि सकीर्ण राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाने पर हानिप्रद नही होती है। सकीर्ण राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत एक देश विदेशी प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध प्रतिबन्धो के द्वारा कीमतो मे वृद्धि की जाती है और अवाछनीय आय के उच्चावचनो से कीमतो मे परिवर्तन होते है। ऐसी दशा मे उपभोक्ताओ के लिए कीमतो को बढाने के स्थान पर आर्थिक सहायता की रीति से आर्थिक असन्तुलन सुधारा जाता है। कीमतो को स्थिर रखने के लिए लागतो या सग्रह की जोखिम मे वास्तविक कटौती का कार्य आपत्तिजनक नही माना जाता है। यदि कुछ कारणो से किसी उत्पाद का सग्रह करना सम्भव नही होता है, तो जोरदार फसल के वध किये गये सग्रह का अर्थ, अन्य अल्पमात्रा की उपजो की कीमत मे वृद्धि रोकने और इस अतिरिक्त मात्रा की उपज के सग्रह के कुछ भाग का विनाश माना जाता है। राजनैतिक रूप से, आर्थिक सहायता के अव्यावहारिक होने पर अस्थायी रूप मे कीमत नियन्त्रण अत्यन्त अनिवार्य हो जाता है। इससे फार्म की आय मे होने वाली गिरावट, कृषि उत्पादो की कीमतो और वैयक्तिक उत्पाद की पैदावार के उच्चावचनो को रोका जाता है। ऐसे बहुत कम अवसर देखे जाते हैं कि उत्पादको की कोई सस्था अपनी कीमत को ऊँचा रखने के लिए केवल उपर्युक्त लक्ष्यो तक ही सीमित रहती है। साधारणत ये सस्थाएँ उत्पादको की आय को समाज के खर्चों द्वारा बढाने का सतत् प्रयत्न करती हैं। नये अन्तर्राष्ट्रीय प्रस्तावो मे इन्ही कारणो से प्राथमिक उत्पादो की कीमतो को आवश्यकता से अधिक कम होने से रोकने के लिए, उत्पादको के स्थान पर सरकारो को यह कार्य सुपुर्द करने का प्रावधान रखा गया है।

11 कृषि कीमतो का नियोजन
(The Planning of Agricultural Prices)

विगत अध्यायो मे हमने यह परीक्षण किया कि कृषि के लिए सामान्य समयो पर कौन सा सरक्षण वाछनीय होता है तथा कीमतो को माँग और पूर्ति बराबर करने की स्वीकृति न होने पर अधिक कठोर हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। कुछ कठोर नियन्त्रण के विषय मे राजकीय हस्तक्षेप के द्वारा उत्पादन और वितरण की क्रियाओ का सचालन, उत्पादन के साधनो की अत्यन्त आवश्यकता की ओर निर्देशन के उपाय और कीमत के स्थिर रखने के तरीको का विवेचन करते समय विचार किया गया है। यहाँ इस तथ्य को

और विशेष रूप से संकेत किया गया है कि राज्य के समक्ष अत्यधिक आवश्यक सामग्री[1] के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से कृषकों को प्राप्त होने वाली कीमतों के निर्धारण की कठिन समस्या उत्पन्न हो जाती है। परन्तु उपर्युक्त विचारश्रृंखला सम्पूर्ण नहीं है।

कीमतों को विशेष स्तर से नीचे नियन्त्रित करने और पूर्ति का राशन करने पर कृषकों को सामान्य रूप से अपनी प्रमुख उत्पादों की लाभप्रद लागतों को पूरा करने के लिए, पर्याप्त मात्रा में, कुल प्राप्ति मिलनी आवश्यक होती है। ऐसा न करने पर, कृषक अपने उत्पादों को, वितरण की शासकीय व्यवस्था में रोक लेने का प्रलोभन पाते हैं। इस स्थिति में चूंकि उपभोक्ता अपनी बढ़ी हुई आय से नियन्त्रण के पूर्व की कीमतों का भुगतान करने को तत्पर होते हैं, इसलिए कृषक अपने इस रोके गये उत्पाद को काले बाजार में बेच देते हैं। इस प्रकार की घटना कई देशों में हुई है। अत. राज्य को कृषि-सम्बन्धी कीमतों का निर्धारण इस प्रकार से करना चाहिए कि जिससे आयात का स्थान लेने वाली खाद्य सामग्री के उत्पादन और आयात का भुगतान करने के लिए निर्यात की जा सकने वाली वस्तुओं के उत्पादन के प्रति सही मात्रा में प्रलोभन प्राप्त हो।

कृषि-कीमतों को इस प्रकार से रखना चाहिए जिससे फार्मिंग में उपयोग में आने वाले उन साधनों को आकर्षित किया जा सके, जो वर्तमान में निर्यात की जाने वाली वस्तुओं को उत्पन्न करने में उपयोग में नहीं आ रहे हैं। इससे खाद्यान्नों के आयात का भुगतान सहज हो सकता है। कीमत निर्धारण की यह जटिल प्रक्रिया जिन सिद्धान्तों पर आधारित है, उनका परीक्षण इस पुस्तक की विषय-सामग्री के बाहर है। भविष्य में खाद्यान्न के आयातों की सीमान्त आवश्यकता को उपलब्ध कराने वाली कीमतें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। अत इन पर विचार करना आवश्यक है। इसका अर्थ यह विचार करना नहीं है कि वर्तमान विनिमय दर के अनुसार स्वदेशी कीमतों में, समुद्रपार के चलन की तत्कालीन कीमतें किस प्रकार बदली जायें, क्योंकि अतिरिक्त पूर्ति[2] उपलब्ध रहने पर समुद्रपार की कीमतों के कम होने की आशा की जा सकती है। इसमें अपनी विदेशी शेषराशि को सन्तुलित करने के लिए विद्यमान विनिमय दर में समजन करना पड़ता है। यदि आवश्यकता पड़ने

1. इसी अध्याय का उप-शीर्षक 4 देखिए।
2. इसी अध्याय का उप-शीर्षक 1 देखिए।

पर खाद्य-सामग्री और उर्वरकों जैसी वस्तुओं को आर्थिक सहायता दी जाती है, तो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रत्याशित लागतों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

उपर्युक्त विश्लेषण द्वारा यह स्पष्ट होता है कि आयात की जाने वाली खाद्य-वस्तुओं की कीमतों के साथ कृषकों की कृषि-उत्पादों की कीमतों का मेल नहीं बैठता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता है कि कीमत नियन्त्रण के द्वारा कृषकों को अवांछनीय ढंग से सुरक्षित किया जाता है। कभी कभी स्वदेश में उत्पन्न की गयी कुछ फार्म उत्पादों की कीमतों का निर्धारण, अन्य उत्पादों की कीमतों की अपेक्षा आयात की जाने वाली वस्तुओं की कीमतों से अधिक हो जाता है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सापेक्ष कीमतों का वर्तमान निर्धारण सही रीति से नहीं किया गया है। वैसे सापेक्ष कीमतों और लागतों के युद्ध के पूर्व के स्तर पर आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया गया था तथा अत्यन्त परिवर्तित परिस्थितियों के अन्तर्गत वर्तमान आवश्यकताओं पर बहुत ही कम ध्यान दिया गया था।

ऐसा अनुभव किया गया है कि उपभोक्ताओं द्वारा भुगतान की जाने वाली राशि से कृषकों को उनकी खाद्य उत्पादों के लिए अधिक मात्रा में धन प्राप्त होता है। परन्तु इसमें वर्तमान में फार्म की कीमतों के ऊँचे रहने के संकेत नहीं मिलते हैं, क्योंकि खाद्य सामग्री के उपयोग को बहुत अधिक मात्रा में आर्थिक सहायता दी जाती है और राशन प्रणाली के द्वारा उपभोग की मात्रा को कम रखा जाता है। ऐसी दशा में उपभोक्ता, अन्य वस्तुओं की अपेक्षा खाद्य-सामग्री के लिए अधिक कीमत देने के लिए तैयार रहते हैं। साधारणतः उपभोक्ता अधिक मात्रा में भुगतान करते हैं और खाद्य सामग्री को कम मात्रा में खरीदते हैं। खाद्य सामग्री के उपभोग को दी जाने वाली ये आर्थिक सहायताएँ मुद्रास्फीति (Inflation) को रोकने के उद्देश्य से फुटकर या खुदरा कीमतों को नीचा रखकर स्वीकृति दी जाती है। इससे मजदूरी की वृद्धि के लिए की जाने वाली माँग कुछ मर्यादित हो जाती है। इन आर्थिक सहायताओं से वास्तव में गरीब उपभोक्ताओं को सहायता मिलती है। यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है। इसलिए इस प्रश्न के बारे में यहाँ विस्तार के साथ विचार नहीं किया गया है।

12 कृषि में नियोजन की कठिनाइयाँ
(Difficulties of Planning in Agriculture)

इस अध्याय का प्रारम्भ कृषि में राजकीय हस्तक्षेप के लिए विशेष न्याय-संगतियों की रूपरेखा से किया गया था। अतः इस अध्याय का सर्वोत्तम

उपसंहार, राजकीय हस्तक्षप के मार्ग मे विशेष अवरोधो की ओर सकेत करके किया जा सकता है। राज्य के हस्तक्षेप के समक्ष कुछ प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं —

(1) किसी भी योजना को प्रभावपूर्ण होने के 'लिए प्रारम्भिक स्थिति की ओर लौटना कठिन होता है।

(2) कृषकों की कृषि सम्बन्धी क्रियाओ पर नियन्त्रण करना कठिन होता है।

(3) फार्म बहुत छोटी इकाई होती है।

(4) कृषि उत्पादों की पैदावार के लिए जिम्मेदार लोगों की सख्या बहुत अधिक होती है, क्योकि ये लोग बहुत दूर दूर बसे रहते हैं और उनका दृष्टिकोण वैयक्तिक तथा आधुनिक विकास से अनभिज्ञ रहता है।

(5) आग्ल और अमेरिकन पाठक साधारणत यह भूल करते हैं कि कृषकों की श्रेणी मे केवल पढे-लिखे कृषक ही नही आते हैं, जिनमे उनका सम्पर्क रहता है बल्कि भारत, चीन या पूर्वी यूरोप के अधिकाश बिना पढे-लिखे कृषक भी सम्मिलित रहते हैं।

(6) कई खाद्य-उत्पादो के लिए विश्व बाजार पाया जाता है, परन्तु वह साधारणत अपूर्ण रहता है।

(7) पिछड़े देशो के कृषको की क्रियाएँ अधिक विकसित देशो के कृषको पर प्रतिक्रिया करती हैं।

(8) फार्म एक व्यवसाय के साथ ही घर भी होता है।

(9) अधिकाश कृषक अपनी भूमि को केवल उत्पादन का साधन नहीं मानते हैं, बल्कि अपने अन्य उत्पादो के समान ही पवित्र इकाई मानते हैं।

(10) फार्मिंग मे राज्य के हस्तक्षेप के परिणामो का अन्य उद्योगो की तुलना में कम मात्रा मे परिकलन या गणना योग्य होने के कारण केवल कृषको की अनभिज्ञता नही है बल्कि विभिन्न उत्पादो के बीच माँग और पूर्ति का अन्तर्सम्बन्ध, उद्योग के बारे मे विस्तृत जानकारी की आवश्यकता को उत्पन्न करता है। वास्तव मे किसी भी योजनाकार मे उद्योग-सम्बन्धी विस्तृत ज्ञान नहीं पाया जाता है।

(11) मौसम एक महत्वपूर्ण साधन है। सूखा, बाढ़ या बीमारियो के कारण सर्वाधिक अच्छी योजनाएँ भी उलट-पुलट हो जाती हैं। इसलिए कृषि के हेतु एक दीर्घकालीन और सफल योजना बनाना कठिन होता है।

युद्ध के पहले बहुत सी योजनाएँ असफल हो गयी थी। परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि सफल योजनाओ को बनाना असम्भव है। असफल योजनाओ की असफलता के कारणो की जानकारी जिम्मेदार अधिकारियो द्वारा देखी जा सकती थी और निर्यात करने वाले देशो मे धन के आवश्यकता से अधिक एकत्रीकरण करने वाली अस्त-व्यस्तता को सरलता से रोका जा सकता था। इस नीति के द्वारा यूरोप के देशो म बहुत मात्रा मे अनुपूर्ति पाने वाले शक्कर उद्योगो का विकास किया गया था। परन्तु वेस्ट इण्डीज मे गन्ने की बहुत अधिक मात्रा उपलब्ध होने के बाद भी इतना विकास नहीं हो सका था। वहाँ आर्थिक और साख्यकीय ज्ञान द्वारा आवश्यक अस्त व्यस्तता की उपेक्षा सहज हो सकती थी। ऐसा अनुभव किया गया है कि अधिकाश योजनाए (यदि उन्हें योजनाएँ कहा जा सकता है) केवल विभागीय हित और अल्पकालीन विचारो पर आधारित होने के कारण सकट उत्पन्न करती थी। यह बात कुछ सीमा तक आज भी सही है।

आजकल कई देश अपनी कृषि-पैदावार को विभिन्न मात्रा मे बढ़ाने क लिए नियोजन (Planning) करने का प्रयत्न करते हैं। साधारणत य योजनाएँ फार्मिग के विद्यमान ढाँचे के अनुसार फार्मों की आय को बढ़ाने क लिए अधिक और उपभोक्ताओ की खाद्य सम्बन्धी आवश्यकताओ पर कम ध्यान देती हैं। परन्तु कृषको के हितो की उपेक्षा करना किसी भी तरह स सम्भव नही होता है। कृषक और उपभोक्ता दोनो के हितो म योजनाओ के अन्तगत खाद्य-सम्बन्धी आवश्यकताओ को प्राथमिकता देना आवश्यक होता है।

देश के आर्थिक विकास के लिए भूतकाल की असफलताओ के कारण कृषि सम्बन्धी प्रत्येक प्रकार के नियोजन के प्रति गम्भीर रूप से प्रतिकूल भाव नही अपनाना चाहिए। इस अध्याय के प्रारम्भ मे समाज को कृषि सम्बन्धी आयोजन मे सहायता पहुचाने वाली कई रीतियो का उल्लेख किया गया है। इन रीतियो का उपयोग सामान्य समयो पर किया गया था और कृषि आयोजन करने वाले समाज की सहायता के लिए आज भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ—19वी सदी के अन्त मे इगलिश कृषि को तेजी के साथ बदलती हुई परिस्थितियो मे रूपान्तरण करने म कोई भी अनायोजित अर्थ-व्यवस्था सफल नही हुई थी। इसके लिए आयोजित अर्थ व्यवस्था की आवश्यकता थी। आजकल आर्थिक परिस्थितियो म तीव्रता से परिवतन होन क कारण बहुत

बडी कमियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। अधिकाश अर्थ-व्यवस्थाओं मे नियन्त्रित पूर्ति और नियन्त्रित कीमतो की अनिवार्यता को जन्म देने वाली मुद्रा-स्फीति की प्रवृत्ति पायी जाती है। ऐसी स्थिति मे आयोजन की अत्यधिक आवश्यकता होती है। कभी-कभी समाज के हित को ध्यान म रख कर निर्माण किया गया कृषि सम्बन्धी आयोजन, अपनी कार्यविधियो द्वारा विशेष आर्थिक प्रभाव डाल कर, आर्थिक समृद्धि को बढ़ाने के लिए अनिवार्य होता है।

• •

तकनीकी शब्दों की सूची

अ	
अग्रता	Lead
अचार	Pickle
अत्यन्त आवश्यक आवश्यकता	Necessity
अत्याज्य	Inevitable
अतिव्ययी	Extravagant
अति व्याप्त	Overlap
अतिशय	Redundant
अदायगी	Payment
अधिमान	Preference
अन्तर्ग्रस्त होना	Involve
अन्तर्मिश्रण	Intermingle
अन्योन्याश्रय	Interdependance
अनर्गलता	Absurdity
अनन्य	Exclusive
अनायास वृद्धि	Unearned increment
अनियत	Erratic
अनिवार्य	Inevitable
अनिवार्यता	Necessity
अनुकूलतम	Optimum
अनुकूलनीय	Adaptable
अनुकूलनीयता	Adaptability
अनुक्रमबन्ध करना	Entail
अनुक्रिया	Response

अनुपूर्ति	Subsidy
अनुरूप होना	Suit
अनुरूप होना	Correspond
अनेकता	Diversification
अपतृण	Weed
अपव्यय	Waste
अपील	Appeal
अपूर्ण प्रतिस्पर्धा	Imperfect Competition
अबंधनीति	Laissez Faire
अभ्यानुकूलन	Adaptation
अभिक्रम	Iniuative
अभिन्यास	Lay out
अभिप्रेत	Intended
अभियाचना	Demand
अभिरुचि	Preference
अभिलेख	Record
अभिवृत्ति	Attitude
अर्घ	Price
अल्पजनर्क	And
अवस्था	Stage
अवसाद	Depression
असामी	Tenant
अस्थिरता	Instability
असंगति	Discrepancy
आदिम	Primitive
आदिकालीन	Primitive
आत्मनिर्भरता	Self Sufficieney
आंशिक	Partial
आंशिक निर्जीवीकरण	Pasteurized
आपत्ति	Objection
आमदनी	Revenue

आर्थिक नियम	Economic Prinıple
आर्थिक सिद्धान्त	Economic Theory
आवर्त	Turn over
आशसा	Expectation
ओलियो मारगेरिन	Oleo margarine
ओसर	Heifer
अगमारी	Blight
अश	Share

इ

इशूराघर	Issue house
इलाका	Locality
इष्टतम	Optimum
ईसा मसीह का दिन मनाने के बुधवार का एक दिन पहले का दिन	Shrove

उ

उगाही	Levy
उच्चालक	Elevator
उच्चावचन	Fluctuation
उच्छिष्ट	Waste
उत्थापन यन्त्र	Elevator
उत्पादकता	Productivity
उद्यमकर्ता	Entreprenuer
उद्योगपति	Industrialist
उद्धरण करना	Extract
उपकरण	Equipment
उपक्रम	Undertaking
उपयुक्तता	Suitability
उपाय	Measure
उपार्जन	Earning
उपेक्षक पक्ष	Recalcitrant

उपोत्पाद	By-product
ए	
एक केन्द्रीयवृत्त	Concentric circle
एकाग्रता	Concentration
एकाधिकार	Monopoly
एकान्तरण	Alternation
एकान्तिक	Exclusive
एकीकरण	Integration
क	
कचरा	Slag
कटाई	Harvest
कटाई मशीन	Mowing-machine
कटि	Loin
कब्जाहरण	Disposses
कम्बाइन	Combine
कमाई	Earning
करमकल्ला	Cabbage
कानूनी	Legal
कायिक श्रम	Manual labour
कारखाना	Factory
काश्तकार	Tenant
किसान कृषक	Peasant-farmer
कीमत	Price
कीमत-स्तर	Price-level
कुलबिक्री	Turn-over
कोठार	Barn
कोर	Core
कोपल	Sprouts
कृषि-कर्म	Husbandry
कृषि-कार्य	Farming

ख

खच	Charge

ग

गणना	Calculation
गतिशीलता	Dynamics
गर्भावस्था	Gestation
गर्भावधि	Gestation
गहन	Intense
ग्रहणशील	Susceptible
गाहना	Threshing
गुटिका	Nodules
गौण	Subsidiary
गौण उत्पादन	By product
गोमास	Beef

घ

घान	Batch
घास का मैदान	Leys

च

चरम	Absolute
चरागाह	Leys
चाज	Charge
चित्ती	Blight
चिरकालीन	Chronic
चिरस्थाई	Perpetuating
चीनी आटे का बना पेस्ट्री का भोजन	Tarts
चुकन्दर	Sugarbeet

छ

छितराना	Thinning

ज	
जटिलता	Complexity
जमींदार	Landlord
ज्येष्ठाधिकार	Primogeniture
जलोढ़	Alluvial
जाँघ के ऊपर का मांस	Sirloin
जीवन लागत	Cost of living
जीवाणु	Bacteria
जौ	Barley
झ	
झुकाव	Aptitude
झोल	Soup
ट	
टपकाने वाली चर्बी	Dripping
ठ	
ठंडा	Chilled
ड	
डेरी	Dairy
त	
तत्व	Essence
तदन्तर	Subsequent
तन्तुक	Staple
तर्कसंगति	Justification
ताटस्थ्य सिद्धान्त	Laissez Faire
तात्कालिक	Instantaneous
तीनपतिया घास	Clover
तीव्र करना	Intensify
तुषार	Frost
तोरिया	Rape

द

दु ख प्रकट करना	Deplore
दुष्प्राह्य	Imperceptible
दुष्ट	Flagrant
देशज	Indigenous
देसी	Indigenous

ध

धमन भट्टी	Blast-furnace
धमनी	Artery
धान्यागार	Barn

न

नष्ट किया समय पूरा करना	Lee-way
नाइट्रेट	Nitrate
निकाय	Pool
निकृष्ट स्वाद वाले के लिए आकर्षक सुगन्ध	Caviare
नियतन	Allotment
नियमन करना	Regulate
नियोक्ता	Employer
निर्धारण करना	Assess
निरपेक्ष	Absolute
निरसन	Elimination
निराई करना	Weeding
निश्चेष्टता	Inertia
नीदना	Weeding
नेम	Routine

प

पट्टेदारी	Tenure of land
परस्पर व्याप्त	Overlap

पर्यवेक्षण	Supervise
पराकाष्ठा	Extreme
परावर्तित	Reflect
परास	Range
परिकलन	Calculation
परिकलन योग्य	Calculable
परिचालन	Operating
परिणमन	Variation
परिणामात्मक	Quantitative
परितोलन	Counterbalanced
परिभ्रमण	Rotation
परिवर्तन	Variation
परिवीक्षण करना	Supervise
परिशोधन	Revision
परिसर	Range
परिसम्पत्ति	Asset
पलटना	Divert
पश्चता	Time lag
पशुओं का मांस	Meat
पशुओं का वध-स्थान	Abattoir
पशुओं को बिठाना	Folding the Cattle
पशुओं की गाढ़ी चर्बी	Suet
पशुधन-उत्पाद	Livestock-product
पाला	Frost
पाबन्दी	Restriction
पास्चुरीकरण	Pasteurized
पुन प्राप्ति	Rovery
पूर्वधारणा	Assumption
पिण्डली की नली	Shin
पैदावार	Out-put
पैबन्द	Glut
पोत	Texture

पोषण	Maintenance
पौधा-उत्पाद	Plant production
प्रकट रूप से	Ostensibly
प्रक्रम करना	Processing
प्रक्रिया	Process
प्रकोष्ठ	Chamber
प्रगतिशील	Progressive
प्रचुर	Lavish
प्रजनन	Breeding
प्रत्यावर्तन	Alternation
प्रत्याशा	Expectation
प्रत्याशित	Expected
प्रतिकूलभाव	Prejudice
प्रतिफल	Consideration
प्रतिबन्ध	Restriction
प्रतिरूपी	Typical
प्रतिलोमानुपाती	Inversely-proportional
प्रवर्तन	Enforcement
प्रसारण	Floating
प्राथमिक लागत	Prime Cost
प्रादेशिक	Regional
प्राधिकारी	Authority
प्राप्ति	Receipts
प्रामाण्य	Valdity
प्रारूपिक	Typical
प्रोत्साहन	Incentive
पृथक्करण	Insulated
पृथक की गयी	Segregated

फ

फार्म	Farm
फाल	Blade

मशीनरी	Machinery
महाद्वीपीय	Contınetal
मान	Scale
मान्यता	Assumption
मारगेरिन	Margarine
मार्मिक	Vitally
मालिक	Employer
मात्रात्मक	Quantitative
मात्रिक	Quantitative
मुआवजा देना	Compensate
मुर्गपट्ठा	Cockerel
मुर्गा-मुर्गी	Fowl
मुरब्बा	Jam
मूल्य	Price
मूल्य अधिनियतन	Valorization
मूल-लागत	Prime-cost
मैन गोल्ड्स	Mangolds
मन्दी	Depression
माँग	Demand
मास का ग्रीवा	Neck of beef
मृदा	Soil
मृदु	Moderate

र

रकबा	Acreage
राजकोष	Exchequer
राजस्व	Revenue
राशिपातन	Dumping
राष्ट्रीयकरण	Nationalisation
रिकार्ड	Record
रुख	Attitude
रूपान्तरण	Adaptation

रूपान्तरण	Modification

ल

लम्बमान	Vertical
लवा	Quail
लागत-लेखा	Cost account
लाभदेयता	Profitablity
लॉरी	Lorry
लावन यन्त्र	Mower
लेखा	Account
[illegible]	Returns
लेट्यूस	Lettuce

व

वर्ग	Grade
व्यक्तिगत	Individual
व्यासाभिमुख	Diametrically opposite
वसूली	Recovery
वसूली	Levy
वास्तविक मजदूरी	Real wage
विघ्न	Disturbance
विनिधान	Allocation
विपथन	Diversion
विलोपन	Elimination
विवरणी	Returns
विशिष्ट विवरण	Specification
विशेषज्ञता	Specialisation
विषय क्षेत्र	Scope
वैध	Legal
वैयक्तिक	Individual
वृद्धि	Growth

श

शलजम	Turnip
शारीरिक श्रम	Manual labour
शाश्वत्	Perpetuating
शिन्	Shin
शुष्क	Arid
शूकरवसा	Lard
शूकरी	Sow
शेड	Shed
शेम्पेन,फ्रास की मदिरा	Champagne
शेष	Balance
शैम्बिक पौधे	Leguminous plants
शोरबा	Soup

श्र

श्रम विभाजन	Division of labour
श्रेणी	Grade

स

सपरेटा	Skimmed milk
समकाल करना	Synchronize
समतल	Horizontal
समन्जन	Adjustment
सम्पदा	Estate
समरूप	Uniform
समष्टिक	Composite
समाकलन	Integration
समागम	Mating
समाश्वासन देना	Warrant
समृद्धि	Prosperity
स्ट्राबेरी	Strawberry
सटोरिये	Speculators

सूखी घास बनाना	Hay making
सौदा	Transaction
संघनित	Condensed
संचित	Cumulative
सन्तुलन	Equilibrium
सम्मिश्र	Composite
संवेदनशीलता	Sensitiveness
संशोधन	Revision

ह

हास्यास्पद	Ludicrous
हिसाब	Score
हिसाब किताब	Account
हेरो	Harrow
हेगा	Harrow
होप	Hop
ह्रास	Decadance
ह्रासमान प्रतिफल	Diminishing Returns

तकनीकी शब्दों की अनुक्रमणिका

(INDEX OF TECHNICAL WORDS)

A

Abattoir	पशुओं का वधस्थान
Absolute	निरपेक्ष, चरम
Absurdity	अनर्गलता
Account	हिसाब-किताब, लेखा
Accessible	सुगम, सुलभ
Acreage	रकबा, क्षेत्रफल
Adaptable	अनुकूलनीय
Adaptability	अनुकूलनीयता
Adaptation	अभ्यानुकूलन, रूपान्तरण
Adjustment	समंजन
Agricultural product	कृषि-उत्पाद
Allocation	विनिधान
Allotment	नियतन
Alternation	एकान्तरण, प्रत्यावर्तन
Alluvial	जलोढ
Antecedant	सन्निकट
Appeal	अपील, याचनावृत्ति
Approximation	सन्निकट मान्
Aptitude	झुकाव
Arid	अल्पजलत्र ,शुष्क
Artery	धमनी
Ascendancy	सत्तारोह

Assess	निर्धारण करना
Asset	परिसम्पत्ति
Assumption	मान्यता, पूर्वधारणा
Attitude	अभिवृत्ति, रुख
Authority	प्राधिकारी
B	
Bacon	सुअर का शुष्क मास
Bacteria	जीवाणु, बक्टीरिया
Balance	शेष, बाकी
Barley	जौ, यव, बार्ली
Barn	धान्यागार, कोठार
Batch	घान
Beef	गोमास
Blade	फाल
Blast furnance	धमन-भट्टी
Blight	चित्ती, अगमारी
Breeding	प्रजनन
By product	उपोत्पाद, गौण उत्पादन
C	
Cabbage	करमकल्ला, बन्द गोभी
Calculable	परिकलन योग्य
Calculation	परिकलन, गणना
Cauliflower	फूल गोभी
Caviare	निकृष्ट स्वाद वाले के लिए आकर्षक
Chamber	प्रकोष्ठ, सदन
Champagne	शेम्पेन ! फ्रास की मदिरा
Charge	खर्च, चार्ज
Chilled	ठण्डा
Chronic	चिरकालीन
Citrus	सिट्रस (निम्बुवंश)
Clover	तीनपतिया घास

Cockerel	मुर्ग-पट्ठा
Combine	कम्बाइन
Compensate	मुआवजा देना, सम्पूर्ति करना
Complexity	जटिलता
Composite	सम्मिश्र, समष्टिक
Concentration	एकाग्रता
Concentric circle	एककेन्द्रीय वृत्त
Condensed	सघनित
Considerably	सविचार
Consideration	प्रतिफल
Continental	महाद्वीपीय
Core	कोर
Corn-crop	मक्की की उपज
Correspond	अनुरूप होना
Cost-account	लागत-लेखा
Cost of living	जीवन लागत
Counter-balance	परितोलन
Cumulative	संचित

D

Dairy	डेरी
Decadance	ह्रास
Demand	माँग, अभियाचना
Deplore	दुःख या शोक प्रकट करना
Depression	अवसाद, मन्दी
Diametrically opposite	व्यासाभिमुख
Diminishing Returns	ह्रासमान प्रतिफल
Discount	बट्टा
Discrepancy	असंगति
Dispossess	बकब्जाहरण
Dissimination	बीज बिखेरना
Disturbance	विघ्न, अशान्ति

Diversification	अनेकता
Divert	पलटना
Diversion	विपथन
Division of Labour	श्रमविभाजन
Dripping	टपकने वाली चर्बी
Dumping	राशिपातन
Dynamics	गतिशीलता

E

Earning	उपार्जन, कमाई
Economic principle	आर्थिक नियम
Economic Threory	आर्थिक सिद्धान्त
Elevator	उच्चालक, उत्थापन यन्त्र
Elimination	विलोपन, निरमन
Employer	नियोक्ता, मालिक
Enforcement	प्रवतन, लागू करना
Entail	अनुक्रमबन्ध करना
Entrepreneur	उद्यमकर्ता
Equilibrium	सन्तुलन, साम्यावस्था
Erratic	अनियत
Essence	सार, तत्व
Estate	सम्पदा, जागीर
Equipment	उपकरण, साज सामान,
Exchequer	राजकोष
Exclusive	अनन्य, एकान्तिक
Exodus	बहिर्गमन, निर्गमन
Exp-cted	प्रत्याशित
Expectation	प्रत्याशा, आशसा
Extract	उद्धरण करना
Extractive	सार तत्व
Extravagant	अतिव्ययी
Extreme	पराकाष्ठा, चरमसीमा

F

Factory	कारखाना
Farm	फार्म
Farming	कृषि कर्म, खेती करना
Flagrant	दुष्ट
Floating	प्रसारण
Fluctuation	उच्चावचन, घट-बढ़
Folding the cattle	पशुओं को बिठाना
Foreman	फोरमैन
Fowl	मुर्गा-मुर्गी
Fragility	सुकुमारता
Freight chargs	भाड़ा-खर्च
Frost	तुषार, पाला
Frozen	बर्फीला

G

Gestation	गर्भावस्था, गर्भावधि
Glut	पैबन्द, भरमार
Grade	वर्ग, श्रेणी, ग्रेड
Growth	वृद्धि

H

Harrow	हेरो, हेंगा
Harvest	कटाई, उपज
Haulier	खींचने वाला
Hay-making	सूखी घास बनाना
Heifer	ओसर
Hetrogeneous	विषम
Hop	हाप
Horizontal	समतल
Husbandry	कृषि कर्म

I

Imperceptible	दुग्राह्य
Imperfact competition	अपूर्ण प्रतिस्पर्धा
Incentive	प्रोत्साहन
Indigenous	देशज, देसी
Individual	वैयक्तिक, व्यक्तिगत
Industrialist	उद्योगपति
Inelastic	बेलोचदार
Inertia	निश्चेष्टता
Inevitable	अनिवार्य, अत्याज्य
Initiative	अभिश्रम, पहल
Insulated	पृथक्करण
Instability	अस्थिरता
Instantaneous	तात्कालिक
Integration	समाकलन, एकीकरण
Intend	मन्तव्य
Intended	अभिप्रेत
Intense	गहन
Intensify	तीव्र करना
Inter-dependance	अन्योन्याश्रय
Intermingle	अन्तर्मिश्रण
Invesely proportional	प्रतिलोमानुपाती
Involve	अन्तर्गस्त करना
Issue-house	इजराघर

J

Jam	मुरब्बा
Justification	तर्कसंगति

L

Lag	विलम्ब, देर
Liassez Faire	अबन्ध नीति, तादस्थ्य-सिद्धान्त

Landlord	जमींदार, भूस्वामी
Lard	शूकर वसा, सुअर की चर्बी
Lavish	प्रचुर
Lay out	अभिन्यास
Lead	अग्रना
Lee way	नष्ट किया समय फिर पूरा करना
Legal	कानूनी, वैध
Leguminous plants	शिम्बिक पौधे
Lettuce	लटयूस
Levy	उगाही, वसूली
Leys	चरागाह घास का मैदान
Livestock products	पशुधन उत्पाद
Locality	इलाका
Loin	कटि कमर
Lorry	लॉरी
Ludicrous	हास्यास्पद

M

Machinery	मशीनरी
Maintenance	पोषण
Mangolds	मैनगोल्ड्स
Manual labour	शारीरिक या कायिक श्रम
Margarine	मारगरीन
Mating	समागम मैथुन
Measure	उपाय
Meat	पशुओं का मांस
Metayage	बटाई
Moderate	मृदु, साधारण
Modification	रूपान्तरण
Monopoly	एकाधिकार
Mower	लावक यन्त्र
Mowing machine	कटाई मशीन

Mutton	भेड बकरी का मांस
N	
Nationalisation	राष्ट्रीयकरण
Necessity	अत्यन्त आवश्यक आवश्यकता, अनिवार्यता,
Neck of beef	मास का ग्रीवा
Nitrate	नाइट्रेट
Nodules	गुटिका
O	
Objection	आपत्ति
Oleo-margarine	ओलियो मारगेरिन
Operating	परिचालन
Optimum	अनुकूलतम, इष्टतम
Ostensibly	प्रकट रूप से
Out put	पैदावार
Overhead-cost	बँधी लागत
Overlap	अतिव्याप्त, परस्पर व्याप्त
P	
Partial	आंशिक
Pasteurized	आंशिकी निर्जीवीकरण, पास्चुरीकरण
Payment	अदायगी
Peasant, farmer	किसान, कृषक
Perpetuating	चिरस्थायी, शाश्वत्
Phosphate	फास्फेट
Pickle	अचार
Plant	संयन्त्र
Plantation	बागान
Plant products	पौधा उत्पाद
Pool	निकाय
Pork	सुअर का मास

Preference	अभिरुचि, अधिमान
Prejudice	प्रतिकूल भाव
Price	मूल्य, अर्घ, कीमत
Price-level	कीमत स्तर
Prime-cost	मूल लागत, प्राथमिक लागत
Primitive	आदिम, आदिकालीन
Primogeniture	ज्येष्ठाधिकार
Process	प्रक्रिया
Processing	प्रक्रम करना
Productivity	उत्पादकता
Profitability	लाभदेयता
Progressive	प्रगतिशील
prolficacy	बहु प्रजनन
Prosperity	समृद्धि

Q

Quail	लवा, बटेर
Quantitative	परिमाणात्मक, मात्रिक, मात्रात्मक

R

Range	परास, दूरी, परिसर
Rape	तोरिया
Real wage	वास्तविक मजदूरी
Recalcitrant	उपेक्षक पक्ष
Receipts	प्राप्ति
Record	रिकार्ड, अभिलेख
Recovery	वसूली, पुन प्राप्ति
Redundant	अतिशय, बेकार
Reflect	परावर्तित
Regional	प्रादेशिक
Regulate	नियमन करना
Relative pull	सापेक्षिक कर्षण

Relevant	सुसगत, सम्बद्ध
Response	अनुक्रिया
Restriction	प्रतिबन्ध, पाबन्दी
Returns	विवरणी, लेखा
Revenue	राजस्व, आमदनी
Revision	परिशोधन, सशोधन
Rotation	परिभ्रमण
Routine	नेम, सामान्य

S

Salad	सलाद
Savings	बचत
Scale	मान
Scope	विषय क्षेत्र
Score	हिसाब
Segregated	पृथक् की गयी
Self regulating	स्वत नियामक
Self sufficiency	आत्मनिर्भरता
Self sustaining	स्वयधारी
Sensitiveness	सवेदनशीलता
Shares	अश, हिस्से
Shed	सायबान्, शेड
Shin	शिन्, पिण्डली की नली
Shrove	ईसामसीह का दिन मनाने के बुधवार का एक दिन पहले का दिन
Sirloin	जांघ के ऊपर का मास
Skimmed milk	सपरेटा
Slag	कचरा
Soil	मृदा
Soup	शोरबा झोल
Sow	शूकरी
Sparse population	विरली जनसख्या

Specification	विशिष्ट विवरण
Specialization	विशेषज्ञता
Speculators	सटोरिये
Sprouts	टापल
Stabilization	स्थिरीकरण
Stage	अवस्था
Staple	तन्तु
Static	स्थिर
Statics	स्थैतिकी
Strawberry	स्ट्राबरी
Subsequent	तदनन्तर
Subsidiary	गौण
Subsidy	अनुपूर्ति
Substantial	सारयुक्त, सारवान
Suet	सुअर की गाढ़ी चर्बी
Sugarbeet	चुकन्दर
Suit	अनुरूप होना
Suitability	उपयुक्तता
Sulphate	सल्फेट
Supervise	परिवीक्षण करना
Supervision	पर्यवेक्षण
Susceptible	ग्रहणशील, सुग्राही
Synchronize	समकाल करना
T	
Tarts	चीनी-आटे का बना पेस्ट्री का भोजन
Tenant	काश्तकार, असामी
Tenure	भूमि-पट्टा
Tenure of Land	भू-धृति, पट्टेदारी
Texture	बनावट, पोत
Thinning	छिदराना
Threshing	गाहना

Time-lag	पश्चता, विलम्ब
Topography	स्थलाकृति विज्ञान
Transaction	सौदा लेन देन
Turnip	शलजम
Turn-over	आवत कुलविक्री
Typical	प्रारूपिक प्रतिरूपी

U

Undertaking	उपक्रम
Unearned increment	अनायास वृद्धि
Uniform	समरूपी, एक समान

V

Validity	प्रामाण्य
Valorization	मूल्य अधिनियतन
Variation	परिवर्तन परिणमन
Veal	बछड़ का मास
Vertical	लम्बमान
Vitally	मार्मिक

W

Wage	मजदूरी, भृत्ति
Warrant	समाश्वासन देना
Waste	अपव्यय उच्छिष्ट
Weed	घास-पात अपतृण
Weeding	नीदना निराई करना
Whey	मठा

Z

Zone	मण्डल, क्षेत्र

कृषि का अर्थशास्त्र

The Economics of Agriculture

आर० एल० कोहेन

प्राचार्या, न्यूहेम कालेज, कैम्ब्रिज

अनुवादक

डॉ० मानिक चन्द्र अग्रवाल



मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

कृषि का अर्थशास्त्र

"**The Economics of Agriculture**" by R L Cohen,
translated by Dr Manik Chandra Agrawal

प्रकाशक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
97, मालवीय नगर भोपाल

प्रथम संस्करण 1974

मूल्य 12 रुपये

मुद्रक
अनुराग प्रिंटर्स 607 कटरा इलाहाबाद।

प्राक्कथन

स्वतन्त्र चिन्तन और सृजनात्मक प्रतिभा का विकास सच्चे अर्थ में तब तक सम्भव नहीं जब तक सभी स्तरों पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा नहीं दी जाती। भारतीय मानस और मेधा अपने परिवेश और आवश्यकताओं की अनुरूपता में तब तक नयी दिशाओं का संधान नहीं कर सकेगी जब तक वह विदेशी भाषा में अन्तर्निहित संस्कारों से मुक्त नहीं होती। राष्ट्रीय चरित्र का भावबोध अपनी भाषाओं के माध्यम से निश्चित ही अधिक प्रभावशाली हो सकेगा।

इस तथ्य को अनुभव के स्तर पर स्वीकार करने के बाद से भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के सतत प्रयास किये जाते रहे हैं। इनकी सफलता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी—पाठ्य-पुस्तकों का अभाव। इस अभाव को दूर करने के लिए एक विशाल योजना और दृढ़ निश्चय की आवश्यकता थी। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने इसी उद्देश्य से विश्व-विद्यालयीन ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य को एक-एक करोड़ रुपये का वित्तीय अनुदान देकर अकादमियों की स्थापना की प्रेरणा दी। इसी क्रम में मध्य-प्रदेश में भी जुलाई, १९६९ में हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना हुई।

विगत चार वर्षों में अकादमी ने विज्ञान, तकनीकी, कृषि तथा मानविकी के विभिन्न विषयों में पौने दो सौ से भी अधिक मौलिक तथा अनुवाद-ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। इनमें स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों की आवश्यकता एवं पाठ्य-क्रम की अनुरूपता का ध्यान रखा गया है। प्रकाशनों में केन्द्रीय शब्दावली आयोग द्वारा तैयार की गयी मानक शब्दावली समान रूप से प्रयुक्त हुई है।

सही है, जितनी कि तब थी जब लार्ड कीन्स ने ऐसा लिखा था। उनके द्वारा लिखे गये प्राक्कथन का एक अनुच्छेद आगे और उद्धृत किया जा रहा है

"अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, कोई ऐसे तैयार निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं करते हैं जिन्हें आर्थिक नीति पर तत्काल लागू कर दिया जाय। यह सिद्धान्त से अधिक एक रीति है मस्तिष्क का एक उपकरण है, विचार करने की तकनीक है जिसमें इन सिद्धान्तों का उपयोग करने वालों को सही निर्णय लेने में सहायता मिलती है।'

यह रीति एक अर्थ में सदा एक समान रहती है और दूसरे अर्थ में सदैव परिवर्तनशील पायी जाती है। नयी समस्याओं के लिए निरन्तर इसका प्रयोग होता है। ये नयी समस्याएँ नीति सम्बन्धी दृष्टिकोणों के विवेचन से उत्पन्न होती हैं। केम्ब्रिज आर्थिक लघु पुस्तकमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में विस्तार के साथ इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है। जिन नये विषयों का उद्‌गम हो रहा है, उनमें भी इसके प्रयोग की आवश्यकता है। इस प्रकार की पुस्तकमाला को, निश्चित योजना के अन्तर्गत, निबन्धों के एक समूह मात्र होने की अपेक्षा सजीव अस्तित्व का होना चाहिए जो समय की बदलती रुचियों में मेल खा सके तथा अपना विस्तार करती रहे।

इस पुस्तकमाला को मिला व्यापक स्वागत इसके निर्माता के उपर्युक्त निर्णय को न्यायसंगत ठहराता है। ब्रिटिश साम्राज्य में प्रसार के अतिरिक्त, प्रारम्भ से ही इस ग्रन्थमाला का प्रकाशन संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ तथा अनेक विदेशी भाषाओं में भी प्रमुख ग्रन्थों के अनुवाद किये गये।

आंग्ल अमेरिकन, संयुक्त सम्पादन के रूप में किये गये परिवर्तन का आशय महत्वपूर्ण विषयों, लेखकों और पाठकों का क्षेत्र समान रूप से बढ़ाकर, इस ग्रन्थमाला की उपयोगिता में वृद्धि करना है। यह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में तभी सफल होगी, जब एटलांटिक के दोनों ओर, सरल स्पष्टीकरणों की सहायता से ये ग्रन्थ अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँचें। साथ ही इस ग्रन्थमाला के माध्यम से 'विचार करने की इस तकनीक" का महत्वपूर्ण व्यावहारिक प्रयोग हो सके, जो अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक आधार है।

अप्रैल, 1957 सी० डब्ल्यू० गिलबाड

● ●

• •

अध्याय 1

विषय-प्रवेश

कृषि और उद्योग मे अन्तर

सुविख्यात अर्थशास्त्री मार्शल द्वारा प्रतिपादित परिभाषा के अनुसार अर्थशास्त्र जीवन के सामान्य व्यवहारो से सम्बन्धित मानव जाति का अध्ययन है। 'A study of mankind in the ordinary business of life' कृषि ससार का प्राचीनतम उद्यम है। आज भी वह प्रचुरतम मात्रा मे उपलब्ध होता है। विश्व की कुल जनसख्या का दो-तिहाई भाग अपनी जीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर है।

जिस तरह उद्योग के क्षेत्र मे आर्थिक विश्लेषण के सामान्य सिद्धान्त उपयोगी होते हैं, उसी प्रकार कृषि के विभिन्न कार्यों के लिए भी उपयोगी और प्रामाणिक पाये जाते हैं, जैसे— माँग और पूर्ति का सिद्धान्त, मूल्य, कीमत और वितरण से सम्बन्धित साम्य विश्लेषण के सिद्धान्त। विशेष उद्योगो के आर्थिक सिद्धान्तो के लिए एक ऐसे तकनीक का विकास हुआ है, जिससे ये सिद्धान्त सब प्रकार के व्यवसायो मे उपयोगी बनाये जा सके हैं। इस तकनीक के अन्तर्गत उत्पादक (Producer) और उपभोक्ता (Consumer) विभिन्न आर्थिक क्रियाओ और पद्धतियो से प्राप्त होने वाले सापेक्ष लाभो (Relative advantages) का मूल्याकन करते है। यह सामान्य सिद्धान्त (General theory) वास्तव मे इतना अधिक सामान्य है कि इससे मानव जाति के आर्थिक व्यवहारो की रूपरेखा मात्र की जानकारी होती है। जब इसे और परिशुद्ध करने के प्रयत्न किये जायँ तो आवश्यक है कि ऐसा करते समय, हम अपने सिद्धान्तो को उन विभिन्न मान्यताओ और विशेष परिस्थितियो पर आधारित करना चाहिए, जिनके द्वारा हमारे आर्थिक जीवन के विभिन्न पक्ष सचालित होते हैं। चूंकि आर्थिक अध्ययन का उद्देश्य मात्र बौद्धिक व्यायाम नही है,

बल्कि आर्थिक जीवन की वास्तविकता को स्पष्ट करना है, इसलिए यह अध्ययन आर्थिक जीवन को उन्नत करने के लिए आधार प्रस्तुत करता है। आर्थिक अध्ययन को सफल बनाने के लिए हमे आर्थिक जीवन से सम्बन्धित मान्यताओ और उनकी प्रामाणिकता पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

यह आर्थिक चिन्तन की वह अवस्था है, जहाँ से कृषि का अर्थशास्त्र और उद्योग का अर्थशास्त्र एक दूसरे से कुछ सीमा तक अलग होते हैं, क्योंकि उत्पादन प्राकृतिक परिस्थितियो के अनुसार होता है तथा एक स्थान की प्राकृतिक परिस्थितियाँ दूसरे स्थान से भिन्न हुआ करती हैं। इसी प्रकार एक स्थान की सामाजिक पृष्ठभूमि दूसरे स्थान की सामाजिक पृष्ठभूमि से भिन्न होती है। फलत पूर्ति पक्ष (Supply side) के आर्थिक तत्वो मे महत्त्वपूर्ण अन्तर उत्पन्न हो जाता है।

पूर्ति पक्ष के अन्तर

(1) कई कृषि वस्तुओ का उत्पादन सयुक्त रूप से होता है। जैसे गेहूँ और भूसा अथवा मांस और ऊन; क्योकि ये दोनो वस्तुएँ एक ही पौधे या पशु के अग हैं, अथवा, इसी प्रकार मेंड और जो को भी सयुक्त रूप से उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ कहा जा सकता है क्योकि इन दोनो वस्तुओ को प्राय: एक ही फार्म में कम लागत मे उत्पन्न किया जाता है। इस श्रेणी मे आने वाली कृषि-वस्तुओ की उत्पादन-लागत (Cost of production) की गणना पृथक् रूप से नही की जा सकती है। परन्तु उद्योग म इसके विपरीत स्थिति है। एक कारखाने मे कई वस्तुओ का उत्पादन एक साथ होने के बावजूद भी, उनकी उत्पादन लागतो की गणना पृथक्-पृथक् की जा सकती है। यदि हम किसी कृषि वस्तु की पूर्ति के बारे मे एकदम अलग से विचार करते हैं, तो इस प्रकार किया गया अध्ययन न्यायसगत नही होगा।

(2) अन्य उपयोगी साधनो की मात्रा की तुलना मे कृषि मे उपयोग की जाने वाली भूमि का अनुपात बहुत अधिक होता है। उद्योग मे भूमि का यह अनुपात अपेक्षाकृत कम होता है। इस मूलभूत अन्तर के कारण कृषि और उद्योग मे आर्थिक क्रियाएँ भिन्न-भिन्न रूप मे पायी जाती हैं। जैसे (अ) ह्रासमान प्रतिफलो की प्रवृत्ति, (ब) उत्पादन को बढाने की सीमा, (स) भू-पट्टा सम्बन्धी विभिन्न पद्धतियाँ और उनका महत्व।

(3) खेती का कार्य साधारणत. छोटी इकाइयो मे किया जाता है। उद्योग

की तुलना में कृषि में श्रम-विभाजन का कम प्रयोग होता है। आजकल आर्थिक विश्लेषण सम्बन्धी अध्ययन मे बड़े पैमाने के सगठन (Large-scale organization) का महत्त्व दिन-प्रति-दिन बढ रहा है। परन्तु इस शैली का उपयोग उद्योग मे अधिक और कृषि मे कम होता है। दूसरी ओर वह अर्थ-सिद्धान्त उद्योग की अपेक्षा कृषि के लिए कही अधिक सत्य है, जो पूर्ण प्रतिस्पर्धा का प्रतिपादन करता है। कृषक लगभग हमेशा ही, कीमतो पर अपने उत्पादन के पड़ने वाले प्रभाव की उपेक्षा करता है, जबकि उद्योगपति शायद ही कभी ऐसा करता है।

(4) कृषि-उपजो की मात्रा मे मौसम तथा अन्य जैविक कारणो का बहुत प्रभाव पडता है। अत कृषक अपनी कृषि के उत्पादन की मात्रा पर अधिक नियन्त्रण नही रख सकता।

(5) कृषि-वस्तुओ का उत्पादन लघु-पैमाने की इकाई मे किया जाता है। इससे इनके उत्पादन की मात्रा मे कीमत के परिवर्तन का अनुकूल प्रभाव नही पडता है। परन्तु इसके विपरीत, उद्योग मे कीमत के परिवर्तन के अनुसार पूर्ति को अनुकूल बना लिया जाता है।

अन्त मे, कृषि न केवल जीविकोपार्जन का साधन है बल्कि मनुष्य-जीवन का एक प्रशस्त मार्ग भी है। अन्य विचारो की अपेक्षा हमारे सामाजिक, राजनैतिक और भावात्मक विचार कृषि-सगठन को अधिक मात्रा मे प्रभावित करते हैं।

माँग पक्ष के अन्तर

वास्तव मे माँग पक्ष के अन्तर अधिक स्पष्ट नही हैं परन्तु फिर भी महत्त्वपूर्ण हैं :—

(1) कृषि का मुख्य सम्बन्ध खाद्य-पदार्थों से है, जो हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकता हैं। इसलिए यह आशा की जा सकती है कि सामान्यत. तकनीकी विकास उच्च-स्तरीय जीवन की सम्भावना बढायेगा। प्राय· औद्योगिक वस्तुओं की माँग की तुलना मे कृषि-वस्तुओ की माँग की मात्रा कम गति से बढती है। कृषि का अध्ययन ऐसे उद्योग का अध्ययन है, जो अन्य औद्योगिक शाखाओ की तुलना में कम गति से बढ़ता है तथा जिसमे रोजगार प्राप्त लोगो की सख्या वास्तव मे कम होती जाती है।

(2) सामान्यत. कृषि-वस्तुएँ नाशवान् होती हैं, इसलिए उनका उपभोग

ज्यादा समय तक स्थगित नही किया जा सकता। इसलिए कृषि-वस्तुओ की बिक्री के सम्बन्ध मे मध्यस्थो (Intermediaries) की स्थिति विशेष महत्त्व रखती है। ये मध्यस्थ मौलिक उत्पादक (Original producer) और अन्तिम उपभोक्ता (Last consumer) के बीच सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

कृषि और उद्योग के बीच इन आर्थिक विभिन्नताओ के कारण, अधिकाश सरकारो ने महायुद्ध के पूर्व ही कृषि का विकास करने के लिए हस्तक्षेप किया था। युद्धारम्भ के समय विश्व मे ऐसे बहुत कम कृषक थे, जिनके कीमत निर्धारण सम्बन्धी निर्णय, शासकीय हस्तक्षेप के कारण प्रभावित नही हुए थे। उत्पादको और उपभोक्ताओ की स्वतन्त्र क्रियाओ के परिणामस्वरूप, जो प्रभाव कीमत पर पडते थे, वे युद्ध काल में नही पड सके क्योकि शासन के द्वारा कृषि वस्तुओ की कीमतो का निर्धारण कर दिया गया था। हाँ, यह अवश्य हुआ कि युद्ध न शासकीय हस्तक्षप का क्षेत्र बहुत व्यापक कर दिया था।

इस ग्रन्थ का विषय क्षेत्र (Scope of this Volume)

इस पुस्तक मे 'कृषि के अर्थशास्त्र' का सम्पूर्ण विश्लेपण नही किया गया है क्योकि ऐसा करने के लिए आर्थिक क्षेत्र के बहुत बड भाग को सम्मिलित करना आवश्यक होता है। अपितु, इस पुस्तक मे आर्थिक नियमो का कुछ ज्ञान उपलब्ध कराया गया है। इस ग्रन्थमाला की पूर्व पुस्तिकाओ से भी इस सामान्य आर्थिक ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है।

इस पुस्तक का प्रमुख लक्ष्य कृषि के अर्थशास्त्र और 'उद्योग क अर्थशास्त्र' के बीच अन्तर को स्पष्ट करना है। यह अध्ययन कृषि अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण क्षेत्र को सम्मिलित नही करता है। जैसे—इस पुस्तक म फार्म प्रबन्ध की समस्याओ पर कम ध्यान दिया गया है, जिसे साधारणत 'कृषि-अर्थशास्त्र' के क्षत्र मे रखा जाता है। वास्तव मे उद्योग से सम्बन्धित प्रश्नो को मूल-अर्थशास्त्र म न रखकर व्यावसायिक योग्यता सम्बन्धी अध्ययन' मे रखना ज्यादा उचित है।

उपर्युक्त अध्ययन तीन भागो म विभक्त किया गया है। भाग 1 (अध्याय 2 से अध्याय 5 तक)—यह भाग 'कृषि-अर्थशास्त्र' के विभिन्न पक्षा स सम्बन्धित है, जैसे स्थैतिकी, विभिन्न उत्पादो के बीच के अन्तसम्बन्ध, उत्पादन-ह्रासमान प्रतिफल का नियम, कृषि का स्थान निर्धारण, फार्मों का साइज, माँग और विपणन-सगठन।

भाग 2 (अध्याय क्रमाक 6 से अध्याय क्रमाक 8 तक)—यह भाग गत्यात्मकता तथा परिवर्तनशील परिस्थितियो मे, कृषि की अनुकूलता की व्याख्या करता है। इसम सबसे पहले 'कीमत-परिवर्तन' सम्बन्धी विश्लेषण किया गया है, जो माँग और पूर्ति की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होते हैं। इसके पश्चात् आर्थिक प्रगति के स्वभाव, और कीमत के उच्चावचनो का अध्ययन किया गया है। उपर्युक्त दोनो भाग 'स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा की स्थिति' मे कृषि-अर्थशास्त्र का अध्ययन करते हैं।

भाग 3 (अध्याय 9)—इस भाग मे यह दर्शाया गया है कि शासन किस प्रकार से अपने उपयोगी हस्तक्षेप द्वारा कृषि को लाभ पहुँचा सकता है। साथ ही, उन कारणो और आर्थिक परिणामो का सक्षिप्त मूल्याकन भी किया गया है, जिन्हें राजकीय हस्तक्षेप का सामान्य प्रकार माना जाता है।

ब्रिटिश कृषि की विशिष्ट स्थिति

इस अध्ययन का उद्देश्य पाठको को विश्व की समस्त प्रकार की फार्मिंग पद्धतियों और कृषि-सम्बन्धी आर्थिक समस्याओ के बारे मे सामान्य ज्ञान प्रदान करना है। यही कारण है कि इस अध्ययन का आधार सामाज के सामाजिक और भौतिक सगठन की मान्यताओ पर रखा गया है। चूँकि ये मान्यताएँ एक देश से दूसरे देश म भिन्न होती हैं, इसलिए समस्त प्रकार के सगठनो का अध्ययन एक साथ करना सम्भव नही है। यह पुस्तक इग्लैण्ड की परिस्थितियो को ध्यान मे रख कर लिखी गयी है। साथ ही, कुछ अन्य देशो की परिस्थितियो का सन्दर्भ भी दिया गया है।

यहाँ आँग्ल-कृषि की ओर सकेत करना लाभप्रद होगा, जिसका सन्दर्भ विस्तृत रूप से आगामी अध्यायो मे दिया गया है। इग्लैण्ड मूलत उद्योग-प्रधान देश है। यहाँ के निवासियो का जीवन स्तर बहुत ऊँचा है। जीवन स्तर के ऊँचे होने का प्रभाव, वहाँ की कृषि पर भी पडता है। जैसे—

(1) इग्लैण्ड के कृषको के पास विस्तृत बाजार और सापेक्ष रूप से अधिक मात्रा मे क्रय-शक्ति है। इसलिए इन कृषको को बहुत जल्दी नाशवान तथा कठिनाई से उत्पन्न की जाने वाली कृषि वस्तुओ के उत्पादन को गहन रीति (Intensive method) से करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। उद्योग-पतियो की खाद्य-आवश्यकताओ के अधिकाश भाग की पूर्ति विदेशो से आयात द्वारा होनी है।

(2) फार्मों को श्रम की पूर्ति (Supply of labour) के लिए उद्योगो से प्रतिस्पर्धा करनी पडती है। साधारणत मजदूरो को उद्योग मे अधिक मजदूरी अर्जित करने का अवसर रहता है। यही कारण है कि इंग्लैण्ड के कृषक अधिक मात्रा मे पूंजीकृत और मशीनयुक्त कृषि पद्धति को पसन्द करते हैं। बड़े फार्मों की स्थापना की प्रवृत्ति सर्वत्र पायी जाती है। इन फार्मों मे मजदूरी पर लगाये गये मजदूरो और पारिवारिक श्रमिको की सख्या ग्रामीण-क्षेत्र के किसान-मजदूरो की तुलना मे अधिक रहती है। कृषि सम्बन्धी ये दोनो स्थितियाँ, समान मात्रा मे, अमेरिका के पूर्वी राज्यो के अतिरिक्त, अन्य किसी भी देश मे नही पायी जाती।

हमे, किसी भी दशा मे, केवल इन परिस्थितियो मे होने वाली कृषि के अध्ययन तक सीमित नही रहना चाहिए। यद्यपि इन पर आवश्यक मात्रा में ध्यान दिया जाना चाहिए। सम्भवत इस प्रकार का अध्ययन सम्पूर्ण विश्व की कृषि की दृष्टि से ज्यादा न्यायसगत होगा। जहाँ तक सख्या का प्रश्न है, अधिकाश कृपक, खेतिहर किसान हैं। परन्तु केवल खेतिहर किसान (Peasant farmer) तक सीमित किये गये अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रासगिकता, अग्रेजी या अमेरिकन परिस्थितियों मे कम होती है।

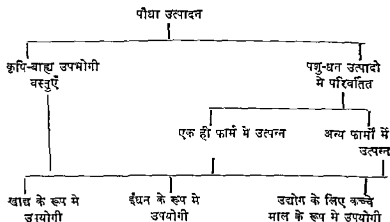
••

अध्याय 2

कृषि-उत्पादन की जटिलता

I. कृषि उत्पादन की प्रकृति

कृषि को 'भूमि जोतने का विज्ञान और कला' कह कर व्याख्यायित किया गया है। यह परिभाषा कृषि जगत् मे पौधा-उत्पादन (Plant-production) की मूल प्रकृति पर विशेष जोर देती है। पौधो के प्रमुख उपयोग निम्न-लिखित हैं :—



पौधो का उपयोग कृषि क्षेत्र के बाहर पौधो के रूप मे किया जाता है अथवा इन पौधो का उपयोग कच्चे माल के रूप मे भी होता है। चूंकि पशुओ के उपयोग मे आने वाले पौधो को कच्चा माल (Raw material) कहा गया है, इसलिए पशु-पालन को कृषि कार्य का एक अग माना जाता है। कुछ ऐसे भी पौधे हैं, जिनका उपभोग कृषि क्षेत्र के बाहर होता है। जैसे—फल, चावल, कपास, तम्बाकू आदि। कृषि-उपज की एक और श्रेणी है, जिसका

उपभोग कृषि क्षेत्र के बाहर किया जाता है तथा कभी कभी पशुओ को खिलाने के लिए भी होता है। जैसे—गेहूँ, जौ, जई, आलू इत्यादि। कुछ कृषि-उपजो को पशुओ के आहार के रूप मे उत्पन्न किया जाता है। जैसे—शलजम, मक्का और मेनगोल्ड्स तथा इनमे सबसे प्रमुख घास। पौधो को पशुओं मे रूपान्तरित करने का कार्य अर्थात पशु-योग्य उपजो की खेती और पशु-पालन एक ही फार्म में किया जा सकता है। एक किसान अपने फार्म मे कृषि-पौधो को उत्पन्न कर सकता है और साथ ही पशुओ के आहार की उपजो को उत्पन्न करके दूसरे लोगो को बेच सकता है। इस प्रकार एक ही व्यक्ति मे दोनो प्रकार की कृषि-उपजो को उत्पन्न करने की क्षमता पायी जाती है (1) कृषि पौधो का उत्पादन करने की क्षमता, (2) पशुओ के आहार की सामग्री को उत्पन्न करने की क्षमता। इन दोनो उद्योगो को कृषि के अन्तर्गत रखा जाता है। इस सम्बन्ध मे चर्चा बाद मे की जायेगी।

कृषि के अन्तिम उत्पाद, कृषि-पौधे या पशु धन उत्पाद हो सकते हैं। इन्हे मुख्य तीन उपयोगो मे लाया जा सकता है :—

(1) मनुष्य के द्वारा खाद्य सामग्री के रूप म उपयोग
(2) ईंधन के रूप मे उपयोग
(3) उद्योगो म कच्चे सामान के रूप मे उपयोग

उपर्युक्त तीनो उपयोगो म, मनुष्य के लिए खाद्य सामग्री के रूप म किया जाने वाला उपयोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। निम्नलिखित तालिका मे सन् 1927-30 ई० की कीमतो के अनुसार ब्रिटिश राज्य समूह, मे, विश्व-उत्पाद के सबसे महत्त्वपूर्ण 20 कृषि उत्पादो को महत्त्व के क्रम म दर्शा कर इस तथ्य की पुष्टि की गयी है। इस सूची मे वनोत्पादो को सम्मिलित नही किया गया है।

सूची

(1) दूध और दूध के उत्पाद	(7) मक्का
(2) अण्डे	(8) आलू
(3) गेहूँ	(9) कपास
(4) चावल	(10) जई
(5) सुअर का गोश्त	(11) जौ
(6) गौ और बछड़े का मास	(12) शक्कर

(13) राई	(17) शराब
(14) तम्बाकू	(18) कॉफी
(15) ऊन	(19) सिल्क
(16) भेड-बकरी का मास और मेमना	(20) सोयाबीन

इनमे आठ उत्पाद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सूची के अनुसार प्रथम 20 मे से 16 उत्पाद खाद्य अथवा पेय पदार्थ है। तम्बाकू एक ऐसा उत्पाद है, जो खाद्य भी है और पेय भी। उपर्युक्त सूची मे 9वें स्थान पर कपास, 15वें स्थान पर ऊन और 19वें स्थान पर सिल्क इस प्रकार के उत्पाद है, जिनका औद्योगिक उत्पादन मे कच्चे माल के रूप मे उपयोग किया जाता है। उद्योग मे एक और उपयोगी उत्पाद रबर है, जो तुलनात्मक दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसी प्रकार उपर्युक्त सूची मे ईंधन के रूप मे उपयोगी उत्पाद नही हैं। जैसे—जगली पौधे। इनका सापेक्ष रूप मे अधिक महत्त्व नही है। इन वस्तुओ को उपर्युक्त सूची मे छोड दिया गया है।

उपर्युक्त सूची विभिन्न उत्पादो का कुल-उत्पादन दर्शाती है। चूंकि विश्व मे उपभोग के विश्व-आंकडे उपलब्ध नही हैं, इसलिए मानवीय उपयोग मे लायी जाने वाली कुल मात्रा को नही दर्शाया गया है। मक्का, जई, राई और सोयाबीन के विश्व-उत्पाद का अधिकाश भाग पशुओ को खिलाया जाता है। इसी प्रकार गेहूँ और जौ के कुल उत्पादन का महत्त्वपूर्ण भाग भी पशुधन के उपयोग मे आता है। इस प्रकार इन उत्पादो की दो बार गणना हो जाती है` (1) एक तो उस समय, जब वे पौधे के रूप मे उत्पन्न होते हैं, (2) और दूसरे उस समय, जब वे पशुधन के लिए उपयोग मे लाये जाते है। यदि इन उत्पादो को छोड भी दिया जाये, तो भी यह निर्विवाद है कि समस्त कृषि-उत्पाद मे खाद्य वस्तुओ का स्थान सबसे अधिक है।

उपर्युक्त सूची पौधे-उत्पादन की तुलना मे पशुधन का युद्ध पूर्व महत्त्व भी दर्शाती है। विश्व कृषि में पशुधन से दो अत्यन्त मूल्यवान उत्पाद प्राप्त होते है। जैसे—(1) दूध व दूध के उत्पाद, (2) अण्डे। सूची मे 5वाँ स्थान सुअर के मास का तथा 6ठा स्थान गौ-मास और बछडे के मास का है। ये सब उत्पाद पशुधन से ही प्राप्त होते है। यदि प्रथम 13 उत्पादो मे से पशुओं को दिये जाने वाले 4 उत्पादो को पृथक् कर दिया जाये, तो शेष नौ उत्पाद पौधो के रूप में पाये जाते हैं। पशुधन से प्राप्त होने वाले उत्पादो की संख्या सात रहती है। उत्पादो के महत्त्व का उपर्युक्त क्रम सम्पूर्ण विश्व के लिए लागू होता है। ग्रेट

ब्रिटेन में पशुधन से प्राप्त उत्पादो का और अधिक महत्त्व है। सन् 1930 31 ई० म फार्म म उत्पन्न होने वाले समस्त उत्पादो का लगभग 70% भाग, पशुधन से प्राप्त उत्पादो का था। परन्तु युद्ध के बाद इस प्रतिशत मे कमी कर दी गयी थी।

प्रारम्भ में ही, कृषि उत्पादो की बहुलता और उनके विभिन्न स्वरूपों की ओर सकेत किया जा चुका है। इस दृष्टिकोण से, कृषि केवल एक उद्योग मात्र नही है, बल्कि उद्योगो का एक समूह है। इस सन्दर्भ मे एक और जटिलता उत्पन्न होती है। वह यह है कि एक फार्म का सगठन केवल एक उत्पाद के लिए करना लाभप्रद है या अन्तिम उत्पाद की स्थिति में उत्पन्न होने वाले कई उत्पादो के आधार पर करना लाभप्रद है ? वैसे कृषि मे दोनो स्थितियाँ पायी जाती हैं (1) एक ही उत्पाद के आधार पर उत्पादन किया जाना, (2) एक ही फार्म मे उत्पन्न होने वाले कई उत्पादो को आधार मान कर उत्पादन किया जाना। उत्पादन के इन सभी प्रकारो के दृष्टान्तो की खोज की जा सकती है। कुछ दृष्टान्त इस प्रकार हैं —

(1) केन्या और ब्राजील म ऐसे अनेक बाग हैं, जो कॉफी के अतिरिक्त कुछ भी उत्पादन नही करते हैं।

(2) लन्दन शहर का, दूध की पूर्ति करने वाला नगरीय दुग्धालय।

(3) मुर्गी पालन के ऐसे फार्म, जो केवल मुर्गी पालन के लिए खरीदे गये आहार का प्रयोग करते हैं।

उपर्युक्त सभी उदाहरण ऐसे किसानो के उदाहरण हैं, जो उत्पादन की सामान्य दशा में विशिष्टीकरण (Specialisation) की पद्धति को अपनाते हैं।

इगलैण्ड म मिश्रित फार्मिंग का अत्यधिक चलन है। वहाँ यह प्रथा एक सामान्य नियम के रूप मे पायी जाती है। इसके विपरीत कृषि मे विशिष्टीकरण अपवाद के रूप म पाया जाता है। अर्थात् बहुत-सी वस्तुओं का उत्पादन एक साथ किया जाता है। मिश्रित फार्मिंग के कुछ उदाहरण ये हैं —

(1) पूर्वी स्कॉटलैण्ड मे कृषि-योग्य फार्म गेहूँ, जौ, आलू, हृष्ट-पुष्ट पशु, मेमना और ऊन की बिक्री करते हैं।

(2) इग्लैण्ड की काउन्टीज म गौशालाएँ, बछडे, सुअर, भेड, ऊन, अण्डे और गेहूँ वैसे ही बेचती हैं जैसे व दूध बेचती हैं। इस प्रकार के फार्म परस्पर वृहत् रूप से सगठित हैं। ये फार्म दोनो प्रकार की घास . (1) चरागाह के रूप

मे और (2) सूखी घास का ढेर तैयार करने के लिए और पशुओ को खिलाने के लिए जडें, स्वय ही उत्पन्न करते हैं। जब ये फार्म दूध का उत्पादन करते हैं, तब उन्हे अपने पशुओ को पालने के लिए उनका कुछ आहार बाहर से क्रय करना पडता है। जैसे—खली। यह स्थिति विशेषकर ठण्ड के मौसम मे पायी जाती है। इसलिए ये लोग ठण्ड मे पहाडो मे रहने वाले कृषको से बहुत बडी मात्रा मे नये पशुओ को खरीदते हैं। ये पहाडी लोग पशुपालन करने मे बडे निपुण होते हैं परन्तु पशुओ को सरलता से हृष्ट-पुष्ट नही बना पाते हैं।

विशिष्टीकरण (Specialisation) और विविधीकरण (Diversification), इन दोनो रीतियो के बहुत-से लाभ होते हैं। इन पद्धतियो के सापेक्ष लाभ प्रत्येक फार्म की विशेष परिस्थितियो पर निर्भर होते है।

2 विशिष्टीकरण के लाभ

जब किसी फार्म मे केवल एक उत्पाद का उत्पादन किया जाता है, तब वहाँ विशिष्टीकरण के कुछ लाभ प्राप्त होते हैं। ये लाभ, उद्योग मे मिलने वाले विशिष्टीकरण के लाभो के समान ही होते हैं। एडम स्मिथ के समय से ही इस तथ्य को स्पष्ट मान्यता प्राप्त होती रही है। चूंकि ये लाभ कृषि के लिए किसी भी प्रकार से विलक्षण नही हैं, इसलिए इनका विवरण बहुत सक्षेप मे दिया गया है। ये लाभ इस प्रकार हैं —

(1) कृषक जब केवल एक उत्पाद पर ध्यान केन्द्रित करता है, तो वह उत्पादन की पद्धति मे निपुण हो जाता है और उत्पादन की परिस्थितियो को अच्छी तरह समझने लगता है। उसे बहुत कम जिंसो (Commodities) का अध्ययन करना पडता है। इससे वह उनमे से प्रत्येक के बारे मे ज्यादा-से-ज्यादा मात्रा मे जानने लगता है।

(2) वह अपने फार्म का आकार उस सीमा तक नही बढाता है, जहाँ पर उसकी प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयाँ बहुत अधिक हो जाती हैं। वह फार्म का आकार कम रखता है और विशिष्टीकरण युक्त श्रम तथा मशीनो की सहायता से अधिक लाभ कमाता है। इस तथ्य का विवेचन उस समय किया जायेगा जब फार्म का सर्वाधिक आर्थिक स्वरूप[1] निश्चित करने के प्रश्न पर विचार *किया जायेगा और हम यह देखेंगे कि यह विचार कृषि मे, उद्योग की* तुलना मे कम महत्त्व रखता है।

---

1 अध्याय 4, उप-शीर्षक 2, 3 तथा 4 देखिए।

(3) उत्पादन पक्ष के उपयुक्त लाभो के अतिरिक्त, विपणन (Marketing) म सामान्य मितव्ययताएँ पायी जाती है । कृषक को अपने फार्म मे उत्पादन की परिस्थितियो का ज्ञान रखना आवश्यक है साथ ही उसे उस सम्भावित कीमत की जानकारी रखना भी आवश्यक होता है, जिसमे वह अपनी पैदावार विभिन्न बाजारो या विभिन्न व्यापारियो को बेचकर धन प्राप्त करता है। केवल कुछ उत्पादो की बिक्री से ही, कृषक को यह जानकारी बडी सरलता से मिल जाती है । जो भी हो, एक प्रभावशील प्रतिस्पर्धात्मक बाजार पद्धति मे,[1] कृषक इस जानकारी पर बडी सीमा तक विश्वास करता है । जब कोई कृषक कई उत्पादो की थोडी थोडी मात्रा बेचने के स्थान पर केवल एक उत्पाद की अधिक मात्रा की बिक्री करता है, तो उसकी विपणन सम्बन्धी लागतें, तुलनात्मक रूप म, कम होती हैं ।

विशिष्टीकरण के इन लाभो के अतिरिक्त, एक क्षत्र विशेष मे एक विशेष उत्पाद को उत्पन्न करने के अन्य लाभ भी प्राप्त होते हैं । जैसा कि आगे वर्णन किया गया है[2] कि अधिकाश जिलो मे भूमि, जलवायु बाजारो से दूरी इत्यादि लाभ एक विशष उत्पाद के उत्पादन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं । विशिष्टीकरण की पद्धति द्वारा इन लाभों का पूर्णरूप से दोहन करना सम्भव होता है ।

जो क्षेत्र यातायात की कठिनाई के कारण पहुँच के बाहर होते हैं, वहाँ एक उपज विशष को सर्वश्रेष्ठ महत्ता दी जाती है । इसके विपरीत जिन क्षेत्रो से उपज को सरलता के साथ बाहर भेजा जा सकता है, वहाँ उसका महत्व कम हो जाता है । ऐसी स्थिति, 19वी शताब्दी के अन्त मे, उत्तर अमेरिका के घास वाले क्षेत्र मे, गेहूँ की उपज के बारे म पायी गयी थी ।

कभी कभी एक विशेष उपज के लिए विशेष प्रकार की भूमि (मृदा) बहुत लाभप्रद होती है । इस भूमि मे एक विशेष उपज क अतिरिक्त अन्य किसी भी उपज को पैदा करने की शक्ति नही रहती है । जैसे—

(1) नाइल नदी के मुहाने मे या मिसीसिपी की घाटी क कुछ भाग म केवल थोडा-सा कपास उत्पन्न होता है ।

---

1 अध्याय 5 देखिए ।

2 अध्याय 3 देखिए ।

(2) ब्रिटिश द्वीप के कुछ बजर पहाडी क्षेत्रो मे केवल भेड-पालन का कार्य होता है।

(3) इग्लैण्ड के अनुकूल चरागाह वाले क्षेत्रो मे पशु समस्त घास का उपभोग कर लेते है और केवल दूध और माँस का उत्पादन होता है।

उपर्युक्त लाभ, समस्त फार्मों मे भूमि सम्बन्धी स्थिति के एक-रूप होने से मिलता है। जब एक खेत से दूसरे खेत मे भूमि का सगठन भिन्न होता है, तो कृषक भिन्न-भिन्न खेतो मे भिन्न-भिन्न उपजे पैदा करते हैं। इससे पैदावार अधिक होती है, परन्तु ऐसी दशा बहुत कम पायी जाती है।

किसी एक उत्पाद के लिए विशिष्टीकरण से प्राप्त होने वाली मित-व्ययताएँ कम भी हो सकती है। परन्तु ये मितव्ययताएँ, कृषि और उद्योग के समस्त क्षेत्र मे, अधिकता से पायी जाती है। विशिष्टीकरण के द्वारा प्राप्त होने वाले लाभ, उद्यमकर्त्ताओ को कृषि और औद्योगिक कार्यों को मिला कर करने से रोकते हैं। इस प्रकार की स्थिति केवल यही तक सोमित नही है। जैसा कि हम आगे देखेंगे कि एक जिले मे उद्योगो की स्थापना और दूसरे मे केवल कृषि का कार्य किये जाने के बहुत-से लाभ होते हैं। साथ ही, उद्योग मे बडे आकार का और कृषि मे छोटे आकार का व्यवसाय लाभप्रद होता है। इन समस्त कारणो से, कृषि और उद्योग सम्बन्धी कार्य मिश्रित रूप मे किसी एक व्यवसाय मे नही पाये जाते हैं।

3 विविधीकरण के लाभ

विशिष्टीकरण के लाभ अधिक सख्या मे होते है तथा अन्य लाभो के साथ प्रतिसन्तुलित नही रहते है। कृषि के लिए इनमे से कई लाभ आश्चर्यजनक होते हैं। ये एक ही फार्म मे कई उत्पादो को पैदा करने से मिलते हैं। इनमे से कुछ लाभ निम्नलिखित हैं —

(1) भूमि की उर्वरा शक्ति सरलता के साथ कायम रखी जा सकती है।

(2) एक वर्ष मे दो विभिन्न उपजें पैदा की जा सकती हैं।

(3) श्रम की आवश्यकता को, वर्ष भर अधिक समानता के साथ फैलाया जा सकता है।

(4) जब कृषक अपने फार्म मे अपने उपभोग मे आने वाली वस्तुओ का अधिकाश भाग स्वत उत्पन्न करता है, तब यातायात की लागते (Transport costs) घट जाती है।

(5) फसल के सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो जाने की जोखिम कम हो जाती है।

(6) कृषक की आय पूरे वर्ष मे अधिक समानता से फैल जाती है।

(7) उत्पादन की विभिन्न स्थितियो को परस्पर सम्बन्धित कर देने पर मध्यस्थ वस्तुओ के यातायात का खर्च समाप्त हो जाता है।

अलग-अलग उपजो को पैदा करने के लिए भूमि से अलग-अलग पदार्थों की आवश्यकता होती है। जब कोई कृषक प्रत्येक वर्ष किसी एक उत्पाद को उत्पन्न करता है, तो शेष पदार्थ कम मात्रा मे उपयोग मे आते हैं। परन्तु जब वह फसलो के सयोग (Combination) या हेर-फेर (Rotation) की रीति अपनाता है, तो भूमि के इन पदार्थों का ज्यादा मात्रा म उपयोग होता है। उदाहरणार्थ—धान नाइट्रेट का उपयोग अधिक मात्रा मे और सल्फेटो का प्रयोग कम मात्रा मे करता है। इसके विपरीत बन्दगोभी, भूमि से अधिक मात्रा मे सल्फेट लेती हैं। तीन पत्ती वाले पौधे (Clovers) चूने की मात्रा अधिक लेते हैं। जडरूपी उपजें फास्फेटो की माँग अधिक करती हैं। भिन्न प्रकार की उपज क्रमश वर्षों मे पैदा करने से, भिन्न भिन्न लवण लेती हैं। इस रीति से किसी पौधे के द्वारा उपयोग किये जाने वाले तत्वो को, ऐसे दूसरे पौधे को लगा कर उपलब्ध कराना सहज हो जाता है, जो उन तत्वो को भूमि मे छोडता है। उदाहरणार्थ—अनाज की वे उपजें, जो नाइट्रोजन लेती हैं, जो शैम्बिक पौधो (Leguminous plants) के द्वारा एकान्तरित की जा सकती हैं और जो अपनी जडो के गुटिका (Nodules) द्वारा हवा से नाइट्रोजन बना लेती हैं। जिस भूमि मे आलू या अनाज की उपजो को पैदा करने का उद्देश्य होता है, उस भूमि की उर्वरा शक्ति पशुओ को चरा कर बढायी जा सकती है क्योंकि गोबर एक अत्युत्तम उर्वरक है। इसलिए, समय-समय पर, खेतो मे उपजो और पशुओ का बदलना (Alternation) आवश्यक होता है। इससे भूमि को तत्वो की दृष्टि से सम्पन्न रखा जा सकता है। कुछ हल्के किस्म की भूमि, जो जौ की खेती के लिए उपयुक्त होती है, अपनी सही स्थिति मे केवल उस समय रखी जा सकती है, जब उस भूमि मे भेडों को जडें चरायी जाती हैं। इस प्रकार के फार्म जौ और भेड दोनों वस्तुओं की बिक्री करते हैं। भूमि को अच्छी स्थिति मे रखने के लिए, गहरी और उथली जडो की फसलें बारी-बारी से लगाने का तरीका भी महत्त्वपूर्ण है।

फसलों के हेर फेर (*Rotation*) से नागरमोथे (*Weeds*) के विनाश मे बडी सहायता मिलती है, क्योंकि हेर-फेर की क्रिया मे भिन्न-भिन्न समय पर

भिन्न भिन्न वर्षों मे सफाई की जाती है। इस प्रकार किसी भी तरह के नागरमौथा को प्रत्येक वर्ष बढने से रोका जाता है। अन्तत जब किसी भूमि मे एक ही फसल, प्रत्येक वर्ष एक लम्बी अवधि के लिए बोयी जाती है तो अनेक रोगो के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। उदाहरणार्थ—शलजम मे अगुली और पैर के अग्रभाग नामक रोग (Finger & toe disease)।

भूमि मे उर्वरता, सही ढांचा और सफाई कायम रखने के अन्य तरीके फसलो के हेर-फेर के अतिरिक्त भी हैं। यदि किसी उपज के द्वारा भूमि का लवण अधिक मात्रा मे ले लिया जाता है, तो अनुकूल उर्वरको के प्रयोग से इस लवण की मात्रा भूमि मे पुन कायम की जा सकती है। कृषि-भूमि का सही ढांचा (Texture) यथावत् रखने के लिए विभिन्न प्रकार की जुताई तथा नागरमौथे को हटाना जरूरी होता है। जब नागरमौथा हटाने की कोई रीति सम्भव नही होती है, तो उसे हाथ से हटाया जा सकता है या उस भूमि को बिना किसी उपज के एक वर्ष के लिए परती (Fallow) छोड दिया जाता है। चूंकि ये रीतियाँ उत्पादन की लागत को बढा देती है, इसलिए फसलो के हेर-फेर की क्रिया ही सस्ती पडती है।

विविधीकरण का दूसरा लाभ केवल कुछ उत्पादो के लिए व्यावहारिक होता है। परिस्थितिवश, यह भी सम्भव होता है कि एक ही वर्ष मे एक ही खेत मे दो फसलें लगायी जायें। यद्यपि एक ही उपज को वर्ष में दो बार बोना और काटना असम्भव होता है। उदाहरणार्थ—इग्लैण्ड मे जल्दी उगने वाले आलू लगभग मार्च मे लगाये जाते हैं और जून या जुलाई मे खोद लिये जाते हैं। इसके बाद तोरिया (Rape) नामक घास लगायी जाती है, जिसे शरद ऋतु या शीतकाल मे काटा जा सकता है या फिर वहाँ भेडो को चराया जा सकता है।

विविधीकरण का तीसरा लाभ सम्पूर्ण वर्ष श्रम की समान माँग के रूप मे पाया जाता है, क्योंकि बहुत-सी फसलें एक साथ उत्पन्न की जाती हैं। श्रमिको को, आवश्यकतानुसार, प्रकृति के साथ सहयोग करना चाहिए। केवल एक उत्पाद उत्पन्न करने पर, श्रम की माँगें, वर्ष मे भिन्न-भिन्न समय पर बहुत अधिक विविध होती हैं। कुछ पशुओ के पालन के लिए यह बात बिल्कुल सही है। उदाहरणार्थ—गाय, बैल या अन्य चौपायो का पालन, इसके अतिरिक्त दूध का उत्पादन। इस कार्य मे, श्रम की आवश्यकता का वितरण, वर्ष भर समान रूप से पाया जाता है। परन्तु कुछ ऐसे पशु हैं, प्रजनन काल (Lambing season) मे जिनका विशेष ध्यान रखना पडता है, जैसे भेड।

श्रम की माँग लगभग सभी उपजो के लिए विशेष अवसरो पर सबसे अधिक होती है, जैसे—पौधो का रोपण, फसल कटाई, निराई (Weeding) और छिदराई (Thinning) के समय इत्यादि। इग्लैण्ड मे मक्के की बुआई के समय सबसे अधिक काय होता है। ठड मे रोपण की जाने वाली किस्मो के लिए अक्टूबर, वसन्त ऋतु के पौधो के लिए मार्च और कटाई के लिए अगस्त, सितम्बर के प्रारम्भ मे सबसे अधिक श्रम की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार जड उपजो के लिए वसन्त ऋतु और ग्रीष्म-काल के प्रारम्भ मे अत्यधिक श्रम की आवश्यकता होती है। जडो को उखाडने के लिए अक्टूबर के करीब और घास के ढर लगाने (Hay-making) के लिए जुलाई के प्रारम्भ मे श्रम का सबसे अधिक प्रयाग और माँग की जाती है।

विभिन्न क्षेत्रो के कृषक एक विशेष सीमा तक घुमक्कड श्रमिको का उपयोग करते है। जैसे—(1) फलो के पकने के मौसम म फल तोडने वाले श्रमिक कोनवाल हेम्पशायर के स्ट्रावेरी (Strawberry) के खेतो और वेल ऑफ ईवशाम के बगीचो मे आ जाते हैं। (2) होप तोडने वाले (Hop-pickers) लन्दन से केंट तक पहुँचते हैं। सामान्यत जब श्रमिक एक फार्म से दूसरे फार्म मे काम करने पहुँच जाते हैं, तो श्रम की लागत मे वृद्धि हो जाती है। एक कृषक श्रम पर किये जाने वाले व्यय को भिन्न भिन्न फसलो मे श्रमिको का आवश्यकता के सामजस्य (Dovetailing) द्वारा कम कर सकता है। इसलिए पूर्वी क्षेत्रो क 12 फार्मो का अध्ययन किया गया और विभिन्न फसलो के लिए प्रति पखवाडा श्रम के घटो की सख्या की गिनती की गयी। ये सख्याएँ विभिन्न उपजो के लिए भिन्न भिन्न पायी गयी। इन घटो की न्यूनतम और अधिकतम सीमा क कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

(1) घास के लिए वार्षिक औसत शून्य से 800 प्रतिशत

(2) गेहूँ क लिए लगभग 600 प्रतिशत

(3) मैनगोल्ड (Mangold) और वसन्त ऋतु की जौ के लिए 500 प्रतिशत

(4) जई और आलू के लिए 400 प्रतिशत

(5) चुकदर क लिए 300 प्रतिशत

इस प्रकार जोडे गय कुल घटो मे विभिन्नता, मध्य जुलाई मे केवल अधिकतम 14 प्रतिशत औसतन अधिक तथा फरवरी के प्रारम्भ मे औसतन 12 प्रतिशत कम रही। यह विभिन्नता गाय, बैल, अन्य चौपायो व सुअर पालन

मे विशेष रूप से पायी गयी। दूध देने वाले पशुओं के पालन कार्य मे इस विभिन्नता की मात्रा थोड़ी और अधिक देखी गयी।

कई वस्तुओं का एक साथ उत्पादन करने का चौथा लाभ यह होता है कि कृषक और उसके परिवार के लिए कई प्रकार के आवश्यक खाद्य पदार्थों म से बहुत-सी वस्तुओं का उत्पादन उनके अपने खेतो मे होता है, इससे यातायात और विक्रय लागत में कमी आ जाती है। बिरली आबादी वाले देश में यह सोचना बहुत महत्त्वपूर्ण होता है कि वहाँ के कृषक परिवारो का भरण पोषण करने के लिए किन वस्तुओं की पैदावार करना उचित है। परन्तु इंग्लैण्ड जैसे घनी आबादी वाले देश मे इस प्रकार के विचार का अपेक्षाकृत कम महत्त्व होता है।[1]

विविधीकरण का पाँचवाँ लाभ यह है कि कृषक अपने कृषि सम्बन्धी जोखिमो का विस्तार करने मे सफल हो जाता है। जब कृषक केवल एक उत्पाद के उत्पादन म अपना ध्यान केन्द्रित करता है, तो फसल के बिगड़ने से या उस फसल की कीमत अकस्मात कम हो जाने से, उसका आर्थिक विनाश हो सकता है। यह जोखिम समस्त अण्डों को एक टोकरी में रखने के समान होती है। *कृषक इस जोखिम को कई बिक्री योग्य वस्तुओं के एक साथ उत्पादन से दूर कर सकता है।* ऐसा कभी सम्भव नही होता है कि समस्त फसलें एक ही वर्ष मे नष्ट हो जायें। कृषक अधिक निश्चित फसल के अ गत कम मात्रा के लाभ को प्राप्त करना पसन्द करता है।

विविधीकरण का छठवाँ लाभ यह है कि जब कृषक एक वर्ष मे पौधो के समान ही कई प्रकार के पशु भी उत्पन्न करता है तब उसकी आय अधिक नियमित होती है। यदि वह केवल एक विशिष्ट फसल का उत्पादन करता है, तो उसे वर्ष मे केवल एक बार भुगतान मिलेगा। जहाँ तक अपनी आगामी आय की आशा में उधार लेने का प्रश्न है, कृषक को परिवर्तनशील भुगतानो के अन्तर्गत उधार लेना ही पड़ता है। यदि वह भुगतान की इन अनियमितताओं से दूर रह सके, तो उसकी आर्थिक स्थिति मे सुधार हो सकता है। विशिष्टीकरण के विरोध मे, दूध उत्पादन के बाबत ऐसी आपत्ति उठायी गयी है, परन्तु यह आपत्ति व्यावहारिक नही है, क्योंकि दूध की बिक्री

1 अध्याय 5, उपशीर्षक 1 देखिए।

साल भर होती है। किसी भी स्थिति में इस आपत्ति का अधिक महत्त्व नहीं है।

अन्तिम लाभ तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब उसी फार्म में उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं का एकीकरण किया जाय। इससे मध्यस्थ उत्पादों को बेच कर, कृषि के कुल व्यय और यातायात के खर्च में कमी करना सम्भव हो जाता है। कृषक को अन्तिम लाभ प्राप्त करने में सफलता मिलती है। उदाहरणार्थ—मान लीजिये एक कृषक अपनी गायों के लिए घास व जड़ें तथा मुर्गियों को खिलाने के लिए अनाज उत्पन्न करता है। उसे इन उत्पादों को एक फार्म से दूसरे फार्म ले जाने की आवश्यकता नहीं रहती। वास्तव में ग्रीष्मकालीन सस्ता आहार, या उगने वाली घास का स्थानान्तरण बिल्कुल नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उनका यातायात खर्च अधिक होता है। यह बात गौण-उत्पादों (By-product) के लिए भी सही है। उदाहरणार्थ—

(i) कृषि फार्म में पशुओं द्वारा उत्पादित खाद सबसे अधिक मूल्यवान होता है। आलू की उपज के लिए इसका विशेष महत्त्व होता है। इसलिए एक ही फार्म में कृषि-उपजें और पशुपालन करना अधिक सुविधाजनक होता है।

(ii) मक्खन या पनीर बनाने के बाद, बचे हुए मठा को सुअरों को दिया जाता है। डेनमार्क में मक्खन और सुअर के शुष्क मांस के संयुक्त उत्पादन का यही प्रमुख आधार है।

(iii) चुकन्दर का ऊपरी भाग पशुओं का एक सर्वोत्तम आहार है। इसलिए चुकन्दर की खेती और पशुपालन सामान्यतः एक ही फार्म में पाये जाते हैं।

साधारणतः (परन्तु सदैव नहीं) एक फार्म में एक उत्पाद के विशिष्टीकरण से उत्पन्न लागत की अपेक्षा एक फार्म में कई उत्पादों को पैदा करने की कुल लागत कम होती है। कई क्षेत्रों में, कृषक विभिन्न वस्तुओं को एक साथ उत्पन्न करके अपनी लागत घटाने में सफल हो जाते हैं। परन्तु इसके लिए बहुत अधिक संख्या में वस्तुओं का उत्पादन करना आवश्यक नहीं है। विविधीकरण के लाभ उस समय प्राप्त होते हैं, जब बड़ी सावधानी के साथ कुछ उपजों को चुनकर लगाया जाता है। इसके लिए फार्म के नियोजन में कलात्मक ढंग से, विविधीकरण और विशिष्टीकरण के द्वारा यथासम्भव मितव्ययताएँ करना आवश्यक

होता है। यही कारण है कि कुछ कृषक पशुपालन का कार्य विभागों में संगठन की रीति से करते है। प्रत्येक विभाग का एक विशेषज्ञ अधिकारी होता है। प्रत्येक विभाग का आकार इतना बडा होता है, कि वह अधिकारी पूर्णत व्यस्त रहता है। ये कृषक साथ मे कुछ उपजें भी पैदा कर सकते हैं (वे साधारणत ऐसा करते भी है)। परन्तु इन उपज का उत्पादन पशुपालन विशेषज्ञों से भिन्न एक विशेष श्रमिक समूह द्वारा किया जाता है। इस रीति से, विभिन्न उपजों की पैदावार मे श्रम सम्बन्धी आवश्यकता मे सामजस्य सम्भव होता है। जब पशुपालन मे, विशेषत भेडो के प्रजनन काल (Lambing season) मे, श्रमिकों की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, तब कृषि कार्य मे लगे श्रमिकों को अस्थायी तौर पर स्थानान्तरित करके पशुपालन के विशेषज्ञों की सहायता पहुँचायी जा सकती है। वास्तव में एक बडे फार्म मे ही इस प्रकार का संगठन सम्भव होता है। बडे फार्मों के लाभ व दोषों का विवेचन करते समय पुन इस विषय का सन्दर्भ दिया जायेगा।[1]

विविधीकरण के लाभ, एक फार्म मे कई कृषि वस्तुओ की सयुक्त पैदावार पर पूर्णत लागू होते है। फार्मिंग की अन्य प्रकार की क्रियाओ से सम्बन्धित करने पर इन लाभो की मात्रा कम हो जाती है। ऐसा भी सम्भव है कि जब खेती का कार्य न हो, तो कुछ श्रमिक समूह हस्तकला के कार्यों को करें। ऐसी स्थिति मे अधिक सख्या मे मशीनो की स्थापना लाभप्रद नही होती है, क्योंकि श्रमिकों की पूर्ति विशेष अवसरो पर ही सम्भव होती है। इन वस्तुओ के उत्पादन की लागत, कारखानो मे उत्पन्न की जाने वाली, इनसे मिलती-जुलती वस्तुओ की लागत से अधिक होती है। फिर भी हाथ से बनी वस्तुओ की मांग अन्य कारणो से होती है। इसलिए कृषि के साथ, हाथ से बनी वस्तुओ का सयोग लाभप्रद हो सकता है। परन्तु इस सयोग को कभी भी बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नही माना जाता है। अन्य लागतों की अपेक्षा श्रम की लागत अधिक होने पर, इस प्रकार के सयोगों का महत्त्व कम हो जाता है।

4 सयुक्त उत्पादो (Joint Products) का महत्त्व

पूर्ति की दृष्टि से कई उत्पादो के बीच अनेक प्रकार के परस्पर सम्बन्ध पाये जाते हैं। इससे कृषि मे उद्योगो की अपेक्षा अनुकूलता स्थापित करना अधिक जटिल हो जाता है। परिवर्तनशील परिस्थितियाँ इस कार्य को और

1. देखिए अध्याय 4, उपशीर्षक 2।

अधिक कठिन बना देती हैं। इस सन्दर्भ में विचार करते समय सबसे पहले हमें यह बात होता है कि जितने भी फार्म उत्पाद होते हैं उन्हें उत्पन्न करने के लिए स्थानाय भूमि श्रम और पूँजी का संयुक्त माग की जाती है। यह बात केवल कृषि के लिए हा विलक्षण नहीं है। यही कारण है कि समस्त उत्पाद एक दूसरे से एक निश्चित मात्रा तक प्रतिस्पर्धा करते हैं। जब एक उत्पाद की पैदावार में वृद्धि होता है तो दूसरी उत्पाद की पैदावार कम हो जाती है। कुछ ऐसे भी उत्पाद हैं जो अन्य उत्पादों से विशेष रूप से प्रतिस्पर्धा करते है। उदाहरणार्थ—गेहूँ और जौ। ये उत्पाद हेर-फेर की क्रिया में प्राय एक स्थान लेते है। परन्तु गौमास और दूध ऐसे उत्पाद हैं जो गाय व भैंस के वैकल्पिक उत्पाद होते हुए भी हेर फेर की क्रिया में एक साथ स्थान नहीं लेते हैं।

इसके विपरीत एक मिश्रित फार्म में बहुत बड़ी संख्या में वस्तुएँ संयुक्त उत्पाद होती है। एक उत्पाद की पैदावार में वृद्धि दूसरे उत्पाद के उत्पादन को सरल बनाती है। हेर फेर की विशेष पद्धति अपनाने से समस्त फसल संयुक्त उत्पाद हो जाती हैं इसका कारण यह है कि अन्य उत्पादों की पैदावार में वृद्धि करने से एक उत्पाद की पैदावार में आसानी से वृद्धि हो जाती है। उदाहरणार्थ नारफाक का चौमुह हेर फेर की पद्धति के अन्तर्गत गाय और बैलों को बीज खिलाये जाते थे। भेड़ों को गेहूँ, जौ व घास खिलाई जाती थी। ये चारों उत्पाद अधिकतर संयुक्त उत्पाद होते थे (आजकल इस पद्धति का कम प्रयोग होता है)। जड़ों और दालों की उपजों के लिए एक वर्ष में भिन्न भिन्न अवसरों पर श्रमिकों की आवश्यकता होती है। पशुओं से प्राप्त होने वाला गोबर आलू की उपज के लिए एक महत्वपूर्ण उर्वरक है। इस प्रकार के संयुक्त उत्पादों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन एक निश्चित अनुपात में किया जाना आवश्यक नहीं होता है। परन्तु सामान्य हेर फेर की क्रिया में अनावश्यक परिवर्तनों (Variations) में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। फार्मिंग की समस्त प्रणाली के पुनर्गठन के द्वारा हेर फेर के इन परिवर्तनों को अपनाया जा सकता है।

मिश्रित फार्म में कई पद्धतियों का संयोग किया जाता है परन्तु कृषि कार्य में पाये जाने वाले संयुक्त उत्पाद, इस रीति के एकमात्र उदाहरण नहीं माने जाते हैं। जब कोई किसान केवल एक उपज या एक प्रकार के पशु के पालन

में विशिष्टीकरण की पद्धति अपनाता है, तो भी उसके पास बिक्री के लिए कई उत्पाद उपलब्ध रहते हैं। सयुक्त उत्पादो के कुछ प्राचीन उदाहरण ये है—(i) मास और ऊन, (ii) गोमास और चमडा, (iii) कपास और बिनौला। ये समस्त वस्तुएँ कृषि-उत्पाद है। इस प्रकार के उदाहरणों की सूची बहुत बडी है। उस सूची मे से कुछ और उदाहरण इस प्रकार हैं—(i) गेहूँ और भूसा (यह पशुओ का महत्त्वपूर्ण आहार है), (ii) मक्खन और मलाई उतरा दूध, (iii) पनीर और मठा, इत्यादि। हल्की किस्म की गाय से प्राप्त होने वाला दूध एक सयुक्त उत्पाद माना जाता है। इसी प्रकार प्रजनन करने वाले पशुओ से प्राप्त होने वाला मास भी एक सयुक्त उत्पाद है। अण्डे, मुर्ग पट्ठे और पुराने मुर्गी-मुर्गे भी सयुक्त उत्पाद है। गोमास का (Sirloin) जाँघ के ऊपर का मास, (Loin) कमर का मास और (Shin) पिंडली का मास इत्यादि गोमास के पशु की ग्रीवा (Neck of beef) के साथ सयुक्त उत्पाद होते है। किसी एक पौध के उत्पादन या किसी एक प्रकार के पशुओ के पालन में अपना समस्त ध्यान केन्द्रित करने वाला किसान कई वस्तुओ का उत्पादन ऐसे अनुपात मे करता है, जिसमे थोडा सा परिवर्तन सहज ही किया जा सकता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि परिवर्तनशील माँग[1] के अनुसार कृषि की पैदावार को अनुकूल बनाने मे अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती है।

1 अध्याय 6, उपशीर्षक 7 देखिए।

अध्याय 3

ह्रासमान प्रतिफल और कृषि की स्थिति

(DIMINISHING RETURNS AND THE LOCATION OF AGRICULTURE)

1 कृषि मे भूमि का महत्त्व

इग्लैण्ड विश्व का एक उद्योग-प्रधान देश है। यहाँ के लगभग 82% भू-भाग मे फार्मिंग होती है। लगभग 5% भूमि मे जगल और 13% भूमि से कम भाग म समस्त उद्योग, जैसे—आवास, सडकें, रेलें, व हवाई अड्डे स्थापित हैं।

भूमि के उपयोग की अधिकता का कारण खाद्य पदार्थों का कृषि-उत्पाद होना है। खाद्य पदार्थ जीवन की प्रमुख आवश्यकता होते हैं और उनकी उपेक्षा नही की जा सकती है। विश्व आज भी इतना गरीब है कि आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन के लिए, उसे अपने साधनो के बहुत बड़े भाग का उपयोग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कृषि के लिए भूमि का उपयोग होने का एक कारण यह भी है कि जमीन के बहुत बडे भाग मे खनिज और शक्ति के साधन दुर्लभ है। इसलिए जो लोग इन भू-भागो मे बसते हैं, उनके पास कृषि के अतिरिक्त कोई वैकल्पिक व्यवसाय नही रहता है। भूमि के उपयोग सम्बन्धी इस स्पष्टीकरण से बहुत अधिक सन्तोष नही होता है। ग्रेट ब्रिटेन की जनसख्या का केवल 10% भाग कृषि का कार्य करता है, परन्तु ये लोग कुल भूमि के 82% भाग का उपयोग करते हैं।

भूमि के उपयोग की अधिकता का दूसरा कारण यह है कि कृषि ही एक ऐसा उद्योग है जो भूमि का इतना अधिक उपयोग, उत्पादन के साधन के रूप मे करता है। प्रकृति की महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ पृथ्वी के विभिन्न भागो म पायी जाती हैं। ये शक्तियाँ उपज-उत्पादन (Crop-production) मे बडी सक्रियता से योगदान देती हैं। पशु-उत्पादन (Livestock-production) मे इन

शक्तियों की सक्रियता कुछ कम रहती है। इसके विपरीत उद्योग के क्षेत्र में इन प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग नाम मात्र को, प्राय. नहीं के बराबर होता है।

मृदा या भूमि (Soil) के रासायनिक तत्त्व बीज से संयोग करके पौधा उत्पन्न करते हैं। पौधे की उत्पत्ति पर, मृदा के भू तत्त्वीय तत्वों का प्रभाव पड़ता है। पौधे और पशुओं को अपनी वृद्धि (Growth) और जीवन के विकास के लिए सूर्य, प्रकाश और वर्षा के सान्निध्य की आवश्यकता होती है। ये समस्त प्राकृतिक साधन पृथ्वी के विभिन्न भागों में, विभिन्न मात्रा में पाये जाते हैं। एक स्थान विशेष में इन साधनों की उपलब्ध मात्रा को मनुष्य बहुत कम प्रभावित कर सकता है।

2. ह्रासमान प्रतिफल (Diminishing Returns)

प्रकृति और मनुष्य के बीच सहकारिता पायी जाती है। कृषि कार्य करते समय मनुष्य प्रकृति की सहायता मात्र करता है। जब भूमि में गहन पद्धति से खेती की जाती है, तो ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति प्रकट हो जाती है। ह्रासमान प्रतिफल की प्रवृत्ति को बढ़ा-चढ़ा कर लिखना अत्यन्त कठिन काम है, क्योंकि यह प्रवृत्ति आगामी अध्यायों में लगातार पायी जायेगी। यह प्रवृति कृषि को उद्योग से पृथक करने वाली मुख्य अवस्था है, क्योंकि कृषि के उत्पादन का प्रमुख साधन भूमि, निश्चित मात्रा में पायी जाती है। कृषि को उद्योगों के समूह की एक ऐसी इकाई कहा जा सकता है, जो बहुत ही विचित्र ढंग से भूमि पर आश्रित है। कृषि के स्थापन पर विचार करते समय, भूमि एक आधार-भूत तत्त्व की भूमिका निभाती है। किसी एक एकड़ भूमि पर गहन पद्धति में खेती करने का उत्पादन व्यय बढ़ जाता है। इसका एक कारण अच्छे किस्म की भूमि का दुर्लभ होना है। भूमि की स्थिति अथवा अन्य प्राकृतिक लाभ, जैसे—उर्वरता, या जलवायु, भूमि की अच्छी किस्म का निर्णय करते हैं।

जब हम किसी एकाकी परिवार की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करते हैं, जिसका विनिमय सम्बन्ध अन्य परिवारों से पूर्णत कटा हुआ है, तब श्रम के क्षेत्र में ह्रासमान प्रतिफल की क्रिया सरलता से दिख जाती है। एक परिवार का अन्य परिवारों के साथ विनिमय सम्बन्ध होने के कारण निम्नलिखित तीन जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं :—

(1) कृषक अपनी श्रमिक शक्ति (Labour force) के लिए उद्योग से प्रतिस्पर्धा करता है।

(2) कृषक खेती करने के लिए श्रमिकों, क्रय की गयी मशीनों और घर में बने हुए औजारों का प्रयोग करता है।

(3) कृषक को अपनी पैदावार का एक हिस्सा शहर में निवास करने वाले लोगों को बेचना पड़ता है।

कृषि के स्थापन का कार्य शहरी बाजारों के आकर्षण से प्रभावित होता है। इन बाजार सम्बन्धी आकर्षणों के स्वभाव और परिणामों का अध्ययन अन्य प्रभावों के अध्ययन के साथ किया जायेगा। भूमि की उर्वरता (Soil fertility) समस्त प्रभावों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। उर्वरता की वृद्धि के द्वारा खेती के प्रतिकूल प्रभावों को परिवर्तित किया जा सकता है।

मान लीजिए जिस एकाकी परिवार का हम अध्ययन कर रहे हैं, वह स्वयं के द्वारा बनाये कृषि-औजारों का उपयोग करता है। हमें इन साधारण पूँजीगत माल (Capital goods) को श्रम के समूह में रखना चाहिए। कुछ ऐसे ग्रामीण क्षेत्र होते हैं, जहाँ भूमि असीमित मात्रा में होने के कारण बिना कीमत में प्राप्त होती है। ऐसे क्षेत्र में उपर्युक्त एकाकी परिवार ऐसे स्थान पर रहेगा जहाँ कम-से-कम श्रम के द्वारा अधिक-से-अधिक पैदावार प्राप्त होने की सम्भावना होगी। दूसरे शब्दों में, यह परिवार तात्कालिक ज्ञान और तकनीक के अनुसार सबसे अधिक उपजाऊ जमीन का चुनाव करेगा। इसके पश्चात् यह परिवार अपनी श्रम सम्बन्धी क्षमता के अनुसार उतनी मात्रा की जमीन को जोतेगा, जिससे अधिक-से अधिक मात्रा में पैदावार हो सकती है।

कृषि उत्पादन की प्रक्रिया का बहुत बड़ा भाग प्राकृतिक होता है। फिर भी इसमें मनुष्य का सहयोग अनिवार्य होता है। कृषक ऐसी अदेशज या नग-रीय (Non-indigenous) उपजों को लगाता है, जिनके उपभोग की इच्छा वह स्वतः रखता है या जिन्हें वह पशुओं को खिलाना चाहता है। जो उपजें सीधे उपभोग के लिए उपयोगी नहीं होती हैं या जिन्हें पशुओं को नहीं खिलाया जा सकता है, उन्हें काटना अनिवार्य हो जाता है। कृषक इन कार्यों के अतिरिक्त पशुओं को दुहता है, वांछनीय पशुओं की सफाई या वध करता है। एक व्यक्ति द्वारा ये कार्य एक निश्चित मात्रा की भूमि पर किये जाते हैं। यदि वह अपना ध्यान कम भूमि पर लगाता है और ऊपर बतलाये कार्यों के अलावा और कार्य करता है, तो उसे अधिक लाभ होगा। यदि उस क्षेत्र में एक व्यक्ति के स्थान पर दो व्यक्ति कार्य करते हैं, तो वे कृषि के अन्य कार्यों को करने में सफल हो जाते हैं, उदाहरणार्थ—(i) पशुओं से उपज की रक्षा करना, (ii) हल

जब किसी क्षेत्र में आस-पास की जमीन एक बराबर उपजाऊ होती है, तो एक परिवार के लिए उस भाग में खेती करना ज्यादा लाभदायक होता है जहाँ उपलब्ध श्रमिकों का प्रयोग आसानी से हो सकता है और प्रति श्रमिक औसत उत्पादन भी सबसे अधिक होता है। प्रति एकड़ भूमि में उस सीमा तक खेती की जाती है जिस सीमा तक अतिरिक्त श्रमिकों को काम पर लगाने से, औसत उत्पादन में वृद्धि होना बन्द हो जाता है। यदि श्रमिकों की और अधिक संख्या को काम पर लगाया जाता है तो औसत उत्पादन घटने लगता है। कृषि को लाभप्रद बनाने के लिए कृषि क्षेत्र की मात्रा का सन्तुलित होना आवश्यक होता है। कम मात्रा की जमीन में अधिक गहन और अधिक मात्रा की जमीन में कम गहन खेती से श्रमिकों को मिलने वाला प्रतिफल कम हो जाता है।

भूमि में उर्वरता की भिन्नता के कारण, समस्त इकाइयों में औसत प्रतिफल घटने की स्थिति होने पर भी कुछ इकाइयों को खेती से लाभ होता है। अधिकतम औसत प्रतिफल प्राप्त करने के लिए कम उपजाऊ भूमि में श्रमिकों की अधिक आवश्यकता होती है। इसके विपरीत उपजाऊ जमीन में गहन खेती की पद्धति अपनाकर अधिक श्रमिकों की सहायता से कुल उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। ये श्रमिक कम उपजाऊ भूमि में इतनी अधिक मात्रा में कुल उत्पादन को बढ़ाने में सफल नहीं हो पाते हैं। इसलिए इन समस्त श्रमिकों को अधिक उपजाऊ भूमि में काम पर लगाने से ज्यादा लाभ होता है। इससे कम उपजाऊ जमीन की सहज ही उपेक्षा हो जाती है। कम उपजाऊ जमीन में खेती न करने से कुल पैदावार अधिक होती है। खेती के साधनों का अपव्यय नहीं होता है। दूसरे शब्दों में उपजाऊ भूमि में उस सीमा के बाद भी कृषि करना लाभप्रद प्रतीत होता है, जहाँ ह्रासमान प्रतिफल का नियम प्रकट हो जाता है। कुछ समय उपरान्त उपजाऊ भूमि में गहन खेती के बावजूद ह्रासमान प्रतिफल का नियम लागू हो जाता है और अतिरिक्त श्रमिक बेकार हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में कम उपजाऊ भूमि में अतिरिक्त श्रमिकों को काम देकर कुल उत्पादन की मात्रा को अधिक-से-अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। एक बार कम उपजाऊ भूमि में खेती का कार्य प्रारम्भ करने के पश्चात् अतिरिक्त श्रमिकों को कम उपजाऊ और अधिक उपजाऊ भूमि में इस प्रकार वितरित करना चाहिए कि जिससे अन्तिम श्रमिक की सीमान्त उत्पादिता (Marginal productivity) देशी औजारों की

सहायता से खेती करने पर भी एक समान रहे। इन सावधानियों के अन्तर्गत उपलब्ध भूमि और श्रमिक शक्ति की सहायता से कुल पैदावार की मात्रा अधिकतम की जा सकती है।

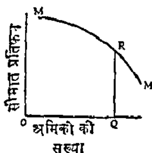
गहन खेती की पद्धति में, बढ़ते हुए क्रम में उत्पादन का व्यय होता है। इसलिए कृषकगण, अधिक संख्या में श्रमिकों को काम देकर ज्यादा-से-ज्यादा भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाना प्रारम्भ कर देते हैं। जब भूमि लगभग समान उपजाऊ होती है, तब कृषि के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र की मात्रा उस क्षेत्र से अधिक होती है, जो केवल ऊँचे किस्म की जमीन के द्वारा निर्मित होता है। इसी प्रकार जब गहन खेती के उपरान्त, एक सीमा के बाद उपजाऊ भूमि में, प्रतिफल का तेजी के साथ ह्रास होने लगता है तो कम उपजाऊ भूमि में खेती का कार्य तेजी से किया जाता है। उपर्युक्त दोनों स्थितियों में, श्रमिकों को कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा अधिक उपजाऊ भूमि (जो क्रमश कम होती जा रही है) में कार्य करने से अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है।

कृषि में दो प्रकार से प्रतिफल प्राप्त होता है—(1) गहन खेती द्वारा, (2) विस्तृत खेती द्वारा। कृषकों को अधिक उपजाऊ जमीन में गहन खेती से कुल प्रतिफल अधिक मात्रा में और कम उपजाऊ जमीन में, विस्तृत जोत के कारण कुल प्रतिफल कम मात्रा में प्राप्त होता है। दोनों प्रकार की भूमि में सीमान्त प्रतिफल और गहन खेती का सीमान्त प्रतिफल एक समान होता है। अधिक उपजाऊ जमीन में गहन खेती तब तक की जाती है, जब तक सबसे कम उपजाऊ जमीन के सीमान्त प्रतिफल से अधिक उपजाऊ जमीन का सीमान्त प्रतिफल कम न हो जाय।

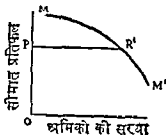
विस्तृत खेती के सीमान्त उत्पादन में इतनी अधिक मात्रा का उत्पादन पाया जाता है कि वह कृषक को उद्योग में रहने का प्रलोभन देने के लिए पर्याप्त होता है। यहाँ कृषि व्यवसाय के अधिक अवसर उपलब्ध रहते हैं। अधिक उपजाऊ जमीन इससे भी अधिक आय उत्पन्न करती है। सबसे अधिक और सबसे कम उपजाऊ भूमि की सीमान्त इकाइयों के कुल उत्पादन का अन्तर लगान (Rent) कहलाता है। इस अन्तर से सबसे अच्छी भूमि पर किये जाने वाले अतिरिक्त श्रम के लिए प्रावधान करना आवश्यक होता है। अर्थात् लगान (Rent) वह राशि होती है, जो भूमि का स्वामी, अपनी भूमि में खेती करने के

लिए ...उक किसान से किराये के रूप मे प्राप्त करता है। लगान अधिक उपजाऊ भूमि की कमी के कारण उत्पन्न होता है। अधिक उपजाऊ भूमि मे गहन खेती के परिणामस्वरूप एक सीमा के पश्चात ह्रासमान प्रतिफल (Diminishing returns) का नियम लागू हो जाता है। इसलिए कम उपजाऊ जमीन मे खेती करना बहुत आवश्यक हो जाता है। अच्छी भूमि की कमी के कारण कृषकगण अच्छी भूमि प्राप्त करने के लिए आपस मे बोली लगाते हैं क्योंकि अच्छी भूमि मे अपनी मेहनत का अधिकतम प्रतिफल मिलने का अवसर रहता है। अधिक उपजाऊ भूमि के उपयोग के लिए ही भूमि स्वामी को लगान प्राप्त होता है

अब हम एक एकाकी या स्वावलम्बी कृषक परिवार के स्थान पर उन सामान्य कृषको की स्थिति का अध्ययन करेंगे जो समाज के अन्दर विभिन्न व्यवसाय करने वाले समूहो मे व्यावसायिक सम्बन्ध रखते हैं। समाज मे कुछ लोग कृषि और कुछ लोग उद्योग की विभिन्न क्रियाओ मे संलग्न रहते है। ऐसे समाज के कृषक परिवार के अन्य सदस्यो को वैकल्पिक व्यवसाय चुनने का अवसर रहता है। इस स्थिति मे श्रमिको की पूर्ति के लिए कृषि का उद्योगो मे प्रतिस्पर्धा स्वाभाविक हो जाती है। एकाकी परिवार के उदाहरण मे हमने श्रम की पूर्ति को निश्चित माना था। अर्थात जैसे जैसे गहन कृषि के लिए श्रमिको का प्रयोग किया जाता था श्रमिको के सीमान्त प्रतिफल का निर्धारण ह्रासमान प्रतिफल के नियम की व्याप्त गति द्वारा होता था। इसे निम्नलिखित रेखा चित्र द्वारा दर्शाया गया है —



चित्र क्र० 1



चित्र क्र० 2

उपर्युक्त चित्रो मे प्रत्येक श्रमिक का सीमान्त प्रतिफल नापने वाली रेखा M M¹ है। इसलिए एक दी हुई भूमि मे श्रमिको की सख्या बढाने पर ह्रास मान प्रतिफल का नियम लागू हो जाता है। इससे सीमान्त प्रतिफल दर्शाने वाली वक्र रेखा बाएँ से दाहिनी ओर नीचे की तरफ झुकती जाती है। जब चित्र 1 मे श्रमिको की सख्या O Q, निश्चित की गयी है, तो प्रत्येक श्रमिक का सीमान्त उत्पादन Q R के बराबर होता है। यह मात्रा M M¹ के द्वारा तत्सम्बन्धित सख्या के श्रमिको को दर्शाने वाली लम्बमान रेखा से काटने का परिणाम है।

श्रमिको के पूर्ण रूप से गतिशील रहने से कई प्रकार के व्यवसाय विद्यमान रहते हैं। इससे मजदूरी समस्त व्यवसायो में एक समान रहती है। मजदूरी के सामान्य स्तर का निर्धारण करने वाली परिस्थितियाँ, कृषि अर्थशास्त्र मे कम महत्त्वपूर्ण होती हैं, परन्तु इनका सामान्य महत्त्व अधिक है। इन परिस्थितियो को ज्यो-का त्यो अपनाया जा सकता है। कृषि के कार्य मे उस सीमा तक श्रमिको का उपयोग होता है, जिस सीमा तक श्रमिक का सीमान्त प्रतिफल विद्यमान मजदूरी से अधिक रहता है। इस मजदूरी का मूल्याकन 'मुद्रा मजदूरी' (Money wage) मे किया जाता है। मुद्रा मजदूरी का प्रभाव, उसके द्वारा क्रय की जाने वाली वस्तुओ की सख्या मे होता है। जब सीमान्त प्रतिफल, मजदूरी स्तर से कम होता है, तो कृषि कार्य मे कोई भी अतिरिक्त मजदूर नही लगाया जाता है। यदि कोई कृषक, ऐसी दशा मे अतिरिक्त श्रमिक को काम में लगाता है, तो उस कृषक को हानि होती है। यह स्थिति चित्र क्र० २ मे दर्शायी गयी है। प्रत्यक श्रमिक का प्रतिफल या मजदूरी स्तर O P पर स्थिर है। श्रमिको की सख्या P R¹ द्वारा बतलायी गयी है। इस स्थान पर मजदूरी स्तर नापने वाली समतल रेखा, प्रति श्रमिक सीमान्त प्रतिफल दर्शाने वाली M M¹ वक्र रेखा को काटती है। दूसरे शब्दो मे, कृषि के काय मे श्रमिको की सख्या उनकी मजदूरी की अपेक्षा, उनके सीमान्त प्रतिफल या उत्पादिता (Productivity) की वक्र रेखा द्वारा निर्धारित होती है। उत्पादिता की वक्र रेखा उस समय तक मजदूरी का स्तर निश्चित करने की क्षमता रखती है, जिस समय तक इस वक्र रेखा का मजदूरी के सामान्य स्तर पर प्रभाव पड़ता रहता है।

जब कृषक परिवार एकाकी स्थिति मे नही रहता है, तो वह अपनी

सहायता के लिए अन्य लोगों के द्वारा तैयार की गयी मशीनों और उवरकों को प्राप्त करने में समय रहता है। कृषि में कुछ ऐसी भी प्रक्रियाएँ होती हैं, जिनमें अधिक जटिल मशीनों का प्रयोग करके उत्पादिता (Productivity) को बढ़ाया जा सकता है। उदाहरणार्थ— (i) हाथ से काम करने वाले श्रमिक का अपना हल और उड़ावनी करने वाली मशीनें बहुत अधिक लाभदायक होती हैं। (ii) कुछ उवरक, भूमि की पैदावार को बहुत अधिक बढ़ा देते हैं। परन्तु एक सीमा के पश्चात् पूँजीगत वस्तुओं के बढ़ते हुए प्रयोग से उत्पादन ठीक वैसे और उसी तरह घटने लगता है जैसे एक सीमा के बाद श्रमिकों की बढ़ती हुई संख्या से घटता है। विभिन्न प्रकार के उवरक और कृषि-पद्धतियाँ, एक सीमा तक कृषि-उत्पादन को बढ़ा सकती है। मान लीजिए एक हड्रेडवेट उवरक की पहली इकाई से उत्पादन में 20% वृद्धि होती है। इसके पश्चात् 1 हड्रेडवेट उवरक की दूसरी इकाई से 10% से अधिक वृद्धि नहीं होती है और उवरक की तीसरी इकाई से केवल 5% उत्पादन बढ़ता है। उत्पादन की वृद्धि इसी क्रम से क्रमशः घटती जाती है। पूंजीगत अन्य निवेश भी एक बिन्दु के पश्चात् ह्रासमान प्रतिफल के नियम के अन्तर्गत उत्पादन देते है। पूंजी कितनी मात्रा में विभिन्न प्रकार के उपयोगों के लिए लगायी जायगी यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। पूंजी की यह मात्रा अपनी लागत और सीमान्त प्रतिफल पर निर्भर होती है। पिछले अध्याय में श्रम के सन्दर्भ में जो विश्लेषण किया गया है, वह पूँजी के सन्दर्भ में भी उपयोगी होता है। पूंजी का सीमान्त प्रतिफल जितनी तीव्रता के साथ घटता है (भूमि में आवश्यकता से अधिक पूँजी के निवेश के कारण) पूँजी का प्रयोग उतना ही कम किया जाता है।

हमने भूमि पर किये जाने वाले अतिरिक्त श्रम और व्यय किये गये पूंजीगत माल से प्राप्त होने वाले ह्रासमान प्रतिफल का वर्णन किया है। इस वर्णन में हमने यह अभिकल्पना की है कि उत्पादन के अन्य कारकों की मात्रा अपरिवर्तित रहती है। वास्तव में यह मान्यता मूल समस्या को आवश्यकता से अधिक सरल बना देती है। यथार्थ जीवन में ये सम्बन्ध मिश्रित रूप में पाये जाते है। एक एकड़ भूमि में किसी एक साधन की कितनी मात्रा के उपयोग से लाभ होगा ?—एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। एक साधन विशेष की यह मात्रा उस क्षेत्र में पाये जाने वाले अन्य साधनों की मात्रा पर निर्भर रहती है। जब मशीनों का प्रयोग होता है, तो प्रति एकड़ कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या

में कमी हो जाती है। इसका कारण यह है कि श्रमिकों के द्वारा की जाने वाली बहुत-सी क्रियाओं को मशीनें कर देती हैं। इसके विपरीत, जब उर्वरकों का उपयोग अधिक मात्रा में किया जाता है, तो प्रति एकड़ श्रमिकों की संख्या बढ़ जाती है। क्योंकि उर्वरकों के उपयोग तथा सम्बन्धित नयी क्रियाओं के लिए श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इससे कृषकों को लाभ होता है। फसल की पैदावार प्रति एकड़ बढ़ जाती है। अधिक मात्रा की फसल को काटने के लिए भी अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

3 कृषि या उद्योग से सम्बन्धित बाजार

विनिमयी अर्थशास्त्र (Exchange Economy) में भूमि का मूल्यांकन उसकी उवराशक्ति या प्राकृतिक लाभों की मात्रा के अनुसार नहीं किया जाता है। अब यह ज्ञात किया जाता है कि एक भूमि दूसरी भूमि की तुलना में श्रम और पूँजी की एक विशेष मात्रा के उपयोग के परिणामस्वरूप कितना अधिक पैदावार देती है। भूमि का मूल्यांकन उत्पादन के एक साधन के रूप में किया जाता है। भूमि की अन्य प्रकार की क्रियाओं और कृषि-उपज के क्रय व विक्रय करने वाले पक्षों का निकटता से अध्ययन किया जाता है।

ऐसे नगर, कृषि पर दुगुना दबाव डालने की चेष्टा करते है, जिनका या तो बहुत अधिक औद्योगिक विकास हो चुका है या फिर जो ऐतिहासिक, सुरक्षात्मक या अन्य व्यापारिक महत्व रखते हैं। यथा —

(1) बाजार के नजदीक उत्पन्न की जाने वाली तैयार वस्तुओं का दबाव (जो यातायात की लागत कम होने से कृषि पर पड़ता है)।

(2) फार्म में आवश्यक वस्तुओं का दबाव (जो उद्योगों के द्वारा उत्पन्न की जाती हैं)। उदाहरणार्थ—कृषि मशीनें और उर्वरक इत्यादि। शहर से ये वस्तुएँ अधिक सस्ती कीमत में प्राप्त की जा सकती हैं।

फार्मिंग को शहर से दूर करने की प्रेरणा, भूमि के विभिन्न उपयोगों की वैकल्पिक माँगों और उनसे सम्बन्धित प्रतिस्पर्धा से मिलती है। इसके अतिरिक्त फार्मिंग को दूर करने वाले दो आर्थिक बल निम्नलिखित हैं —

(1) ग्रामीण क्षेत्र के साधनों में पाया जाने वाला कच्चा माल सस्ती कीमत में मिलता है। उदाहरणार्थ—प्राकृतिक उर्वरक।

(2) ग्रामीण क्षेत्र में मुद्रा-मजदूरी (Money wage) कम होती है।

पैदावार को बढ़ने मे रोकता है। इसके विपरीत उद्योग में भूमि की आवश्यकता केवल स्थान के रूप मे होती है। उद्योग मे भूमि के कुछ उपयोग निम्न-लिखित हैं—

(1) भूमि मे मशीनें लगायी जाती हैं।

(2) भूमि पर मनुष्य काम करते हैं।

(3) भूमि पर कच्चा माल और तैयार वस्तुओ का सग्रह किया जाता है।

एक सीमा के पश्चात् बिना किसी कीमत पर भूमि मिलने पर भी उद्योग मे विस्तार आवश्यक नही होता है। उद्योग मे कई श्रमिक एक मशीन पर आपस मे सहयोग करके काम करते है। उद्योग का फोरमैन समस्त गतिविधियो को देखता रहता है कि कौन सा काम किस प्रकार किया जा रहा है। एक मंजिल कारखाना सबसे सस्ता होता है। इस कारखाने मे गोदाम के लिए पर्याप्त स्थान रहना जरूरी होता है। स्थान की कमी के कारण छोटे से स्थान मे दो या तीन मंजिल इमारत बना कर उद्योग के उत्पादन को दुगना या तिगुना किया जा सकता है। इमारत को अधिक मजबूत बनाने के कारण प्रति इकाई का लागत व्यय बढ जाता है। वस्तुओ को नीचे से ऊपर व ऊपर से नीचे लाने का यातायात व्यय भी बढ जाता है। इन अतिरिक्त व्ययो के कारण भूमि की एक विशेष मात्रा का सीमान्त प्रतिफल कम हो जाता है। कई मंजिल इमारत बन जाने के बाद सीमान्त प्रतिफल का कम होना रुक जाता है। उद्योग मे बहुत अधिक मात्रा मे वस्तुओं के निर्माण का भार भूमि पर पड़ने से ह्रासमान प्रतिफल का नियम प्रभावशील नही हो पाता है। यदि उद्योग की भूमि पर कृषि का कार्य किया जाता है तो उद्योग की अपेक्षा प्रति एकड उत्पादन की मात्रा कम होती है अर्थात् उद्योग के काम मे आने वाली भूमि पर खेती करना लाभप्रद नही होता है।

उद्योग मे बहुत अधिक संख्या मे लोगो को रोजगार मिलता है। इससे प्रति एकड काम करने वाले या रोजगार पाने वाले लोगो की संख्या अधिक रहती है। सरल शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि उद्योग एक विशेष सीमा तक नगरो का निर्माण करते हैं। इन शहरो मे कृषि और औद्योगिक, दोनो प्रकार के उत्पादो के बाजार स्थापित होते है। नगरो के विकास के द्वारा नये उद्योग नगरो की ओर आकर्षित होते हैं। उद्योगो का यह आकर्षण, एक एकड मे उत्पन्न होने वाले उत्पाद की मात्रा पर निर्भर होता है। उदाहरणार्थ—यदि

एक एकड भूमि मे खाना पकाने के सौ टन वर्तन बनाये जाते है और कृषि करने पर वहाँ एक एकड जमीन मे एक टन गेहूँ का उत्पादन होता है, तो यातायात की लागत वजन के अनुपात में होने पर, बाजार के नजदीक बर्तनो का निर्माण करने पर, गेहूँ पैदा करने की अपेक्षा सौ गुनी अधिक बचत होती है। उद्योग अपनी इतनी अधिक बचत के कारण, शहर मे कृषि भूमि के लिए ऊँची कीमत देने मे समर्थ होते हैं। दोनों व्यवसायो के लिए अपनी स्थिति के कारण महत्त्वपूर्ण भूमि का निर्धारक तत्त्व बाजार का परिशुद्ध कर्षण (Absolute Pull) न होकर बाजार का सापेक्ष कर्षण (Relative Pull) होता है। उद्योग मे सामान्यत शहरी क्षेत्र से कृषि को निष्कासित करने की प्रवृत्ति दिखायी देती है।

कृषि के लिए बाजार के सबसे नजदीक का क्षेत्र अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा (अन्य बाते यथावत रहने पर) मूल्य के आधार पर सबसे अधिक उत्पादक क्षेत्र कहलाता है। ऐसे क्षेत्रो मे सबसे गहन रूप मे फार्मिंग की जाती है। जिस प्रकार अधिक उपजाऊ जमीन मे ह्रासमान प्रतिफल का नियम लागू होने के बाद भी उत्पादन को बढाने का कार्य किया जाता है, वैसे ही बाजार के समीप कृषि फार्म मे अधिक-से-अधिक उत्पादन करने का प्रयत्न किया जाता है। कृषक को श्रम और पूंजी की अधिक मात्रा के उपयोग से अधिक लाभ होता है। यह क्रम उस समय तक चलता है जब तक कृषक की लागत मे होने वाली वृद्धि उसकी आय मे होने वाली वृद्धि से कम रहती है। यह धनराशि सामान्यत अतिरिक्त मात्रा के उत्पाद और उस उत्पाद की कीमत के गुणनफल[1] के बराबर होती है। भूमि के उपजाऊ होने मे श्रम व पूंजी की भौतिक उत्पादिता अधिक रहती है। परन्तु अनुपजाऊ भूमि मे कीमत के यथावत् रहने के बावजूद भौतिक उत्पादिता कम होती है। बाजार के समीप भूमि मे श्रम और पूंजी के विभिन्न प्रयोगो पर भी भौतिक उत्पादिता प्रभावित नही होती है। बाजार के समीप भूमि के उत्पादो के विक्रय मूल्य बाजार से दूर भूमि के उत्पादो के विक्रय मूल्य स अधिक होते हैं। जिस भूमि मे, अन्य भूमि की अपेक्षा सीमान्त आय अधिक होती है, उस भूमि पर, ह्रासमान प्रतिफल के नियम के लागू होन के बिन्दु के बाद भी उत्पादन किया जाता है। इस अपवाद की स्थिति के अन्य कई कारण भी हो सकते हैं। बाजार मे सबसे समीप और सबसे

1. जब माल का विक्रय प्रतियोगी बाजार में किया जाता है।

उपजाऊ भूमि पर अधिक मात्रा म खेती की जाती है। कुछ सीमान्त भूमि ऐसी भी होती हैं जिन पर जलवायु या मृदा के प्रकार या स्थिति क कारण खेती करना लाभदायक नही होता है। ऐसी भूमि मे ह्रासमान प्रतिफल क नियम के लागू होने के बाद श्रम और पूंजी की और अधिक मात्रा का प्रयोग नही किया जाता है। अधिक उपजाऊ भूमि के समान बाजार से अधिक समीप भूमि म लगान अधिक मात्रा मे प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ—सन् 1941 43 मे कृषि के लगान वेल्स के हिस्सो की अपेक्षा लिंकोनशायर मे औसतन तीन गुना और मिडिलसेक्स मे औसतन दो गुना पाये गये थे। लिंकोनशायर म लगान अधिक होने का प्रमुख कारण भूमि का उपजाऊपन था परन्तु मिडिलसेक्स मे लगान के अधिक होने का प्रमुख कारण बाजार की समीपता थी।

4 बाजार और फार्मिंग के प्रकार

अभी तक जो आर्थिक विश्लेषण किया गया है उसम हमने इस तथ्य की उपेक्षा की है कि कृषि मात्र एक उत्पाद ही उत्पन्न नही करता है बल्कि वह करता है। परन्तु वास्तविक अध्ययन करने के लिए कृषि क द्वारा उत्पन्न की जाने वाली कई प्रकार की उपजो के बारे मे विचार करना आवश्यक है। इस महत्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा नही की जा सकती है। कृषि क्षत्र मे विभिन्न प्रकार की उपजो और पशुओ का फैलाव किस प्रकार से है ? इसका अध्ययन करना भी नितान्त जरूरी है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वॉन् थ्यूनन के विचार म कृषि क्षत्र की ये विभिन्न उत्पाद अपनी यातायात की लागत के अनुसार बाजार म भिन्न भिन्न मात्रा म अपना कर्पण (Pull) डालती है। इसी तरह प्रत्येक कृषि उपज के लिए आवश्यक श्रम की मात्रा प्रति एकड भिन्न होती है। यह तथ्य भी अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है।

कृषि उत्पादो की यातायात लागतो का कुछ भाग उत्पाद के वजन और आकार (प्रति एकड) पर निर्भर होता है। उत्पाद की नाशवानता और कोमलता भी इस लागत को प्रभावित करती है। अधिक नाशवान् वस्तुओ का यातायात खर्च (प्रति इकाई वजन के अनुसार) देर से यातायात करने म नष्ट न होने वाली वस्तुओ की अपेक्षा अधिक होता है। क्योंकि रेल या बसे देर से नष्ट होने वाली वस्तुओ को तजी के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक ढोने म समर्थ होती है। जल्दी नष्ट होने वाली वस्तुओ का यातायात दिन के

असुविधाजनक समय में करने से लागत बढ़ जाती है। इन वस्तुओं को बहुत दूर के स्थानों में ले जाने के लिए शीत गृह की सुविधा आवश्यक होती है। सुकुमार वस्तुओं का बड़ी सावधानी के साथ पैकिंग करना पड़ता है। इससे वस्तुओं का आकार और वजन बढ़ने के कारण यातायात का खर्च भी बढ़ जाता है।

जो कृषक आकार में बड़ी और वजन में भारी या शीघ्र नाशवान् वस्तुओं का उत्पादन करना चाहते हैं, वे अन्य कृषकों की अपेक्षा, यातायात के खर्च की भिन्नता और अन्तर के कारण, बाजार के नजदीक भूमि के लिए ऊँची कीमत देने को तैयार रहते हैं। इससे इन कृषकों को यातायात की लागत में बहुत बचत होती है। यदि इन लोगों के द्वारा चुना गया उत्पाद बाजार के समीप भूमि में उत्पादन करने योग्य होता है, तो वे उस भूमि को प्राप्त करने का सतत प्रयत्न करते हैं।

शहर का बाजार यातायात की लागतों के कारण कई प्रकार के क्षेत्रों से घिर जाता है। *सबसे समीप का क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र होता है।* इसके बाद सबसे अधिक नाशवान् वस्तुओं को ज्यादा-से-ज्यादा मात्रा में उत्पन्न करने वाला क्षेत्र होता है। फिर उससे कम नाशवान् वस्तुओं को उत्पन्न करने वाला क्षेत्र होता है। क्षेत्रों का यह क्रम क्रमशः चलता रहता है। बाजार के आन्तरिक क्षेत्र में अधिक पैदावार (प्रति इकाई भूमि में) होने के कारण औद्योगिक उत्पादन होता है। इस क्षेत्र से शहर की दूरी अधिक रहने पर उपर्युक्त उत्पाद की पैदावार कम हो जाती है। औद्योगिक क्षेत्र के बाद वाली भूमि में नाशवान् फल, सब्जियाँ और आलू इत्यादि उत्पन्न किये जाते हैं। ये उत्पादें प्रति एकड़ अधिक मात्रा में पैदा होती हैं। वजन में भारी उत्पादों का उत्पादन प्रति एकड़ कम होता है। उपर्युक्त भूमि के बाद वाली भूमि में सबसे पहले दूध, फिर गेहूँ और अन्त में मांस के उत्पादन का महत्त्व दिया जाता है। दूध व मांस देने वाले पशुओं को हल्की किस्म की घास में पाला जाता है। इन उत्पादों के लिए सामान्यतः बड़े क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। इस भूमि के बाद वाली भूमि का उपयोग कृषि के लिए नहीं किया जाता है।

चरागाह क्षेत्र की बाहरी सीमा पर स्थित यह भूमि सीमान्त भूमि कहलाती है। सीमान्त भूमि पर कोई लगान नहीं दिया जाता है। ऐसी भूमि में भेड़ व पशुओं की उत्पादन लागत (Cost of production), भेड़ व पशुओं

की कीमत के बराबर होती है। इस कीमत में कृषक का लाभ भी सम्मिलित रहता है। ऐसी वस्तुओं की बिक्री के लिए बाजार में लाने पर की गयी यात्रा दूरी और यातायात की लागत के अनुसार अधिक कीमत हो जाती है। इस प्रकार कीमत के बढ़ने से भूमि का लगान अधिक हो जाता है। चरागाह वाली भूमि का गेहूँ के उत्पादन[1] के लिए किये गये स्थानान्तरण का लाभ भूमि को प्रत्येक वस्तु द्वारा एक समान मात्रा मे लगान देने पर प्राप्त होता है। इसके लिए प्रत्येक वस्तु के उत्पादन मे प्राप्त आमदनी और उनमें लगने वाली लागतो का समान होना जरूरी होता है। ऐसी दशा मे कृषकों को प्रति एकड़ पैदावार की प्रतिलोमानुपाती (Inversely Proportional) कीमतें प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ—गेहूँ की प्रति एकड पैदावार का वजन भेडो के प्रति एकड वजन से ज्यादा होता है। परन्तु गेहूँ की प्रति हण्ड्रेडवेट कीमत भेड की प्रति हण्ड्रेडवेट कीमत की तुलना मे कम होती है। गेहूँ की प्रति हण्ड्रेडवेट कीमत का यह अन्तर प्रति एकड उत्पादन लागत भेडो की प्रति एकड उत्पादन लागत से कम होने पर घट जाता है। साधारणत बाजार से बहुत दूर प्रति एकड कम मात्रा में उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ अपने प्रति इकाई वजन के अनुसार खर्चीली बनी रहती है।

उपर्युक्त स्थानान्तरण का लाभ लेने की अपेक्षा कृषक बाजार के समीप भूमि म गेहूँ उत्पन्न करता है। गेहूँ को बाजार में विक्रय के लिए लाने पर यातायात की लागत के अनुसार फार्म की कीमत प्रति हण्ड्रेडवेट अधिक हो जाती है। भूमि का लगान भी गेहूँ के यातायात की लागत (प्रति एकड) के अनुसार बढता है। एक एकड भूमि मे गेहूँ, भेडो की अपेक्षा ज्यादा मात्रा म पैदा होने से, गेहूँ के क्षेत्र का लगान, भेड के क्षेत्र के लगान से कम मात्रा मे बढता है। इससे गेहूँ के आन्तरिक क्षेत्र मे पुन सीमान्त अन्तरण उत्पन्न हो जाता है। यह सीमान्त अन्तरण गेहूँ तथा दूध के बीच होता है। इसी प्रकार अन्य मे भी यह पाया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र के लगान, बाजार मिलने से बढते हैं। प्रत्येक क्षेत्र मे विभिन्न उपजो के उत्पादन मे, कृषि के वाह्य और आन्तरिक

---

1. स्थानान्तरण की सीमा सम्बन्धी विस्तृत जानकारी हेतु एच० डी० हेण्डरसन् कृत 'पूर्ति और मांग (Supply & Demand) का अध्याय 6 देखिए।

सीमान्त लाभो के अनुसार, कम या अधिक मात्रा म गहनता अपनायी जाती है।

बाजार मे उत्पादो की कीमतें, उनकी फाम की कीमत और बाजार तक लाने के यातायात व्यय के योग के बराबर होती है। इन कीमतों पर विभिन्न उपजो के क्षत्रो के फैलाव या विस्तार, का प्रभाव पडता है। बाजार मे उपर्युक्त वस्तुओ की माँग उपभोक्ताओ की सख्या और प्रचलित कीमत पर भी निभर होती है। विभिन्न उपजो क क्षत्रो का विस्तार उनकी माँग और प्रति एकड उत्पादन द्वारा निर्धारित होता है। क्षत्रो के विस्तार, उत्पादन की गहनता, प्रतिफल या लाभ की कमी और यातायात की लागत के स्तर पर भी निर्भर होते है। कृषिगत कीमतो की तुलना मे यातायात की लागतें जितनी अधिक होती हैं, बाजार के नजदीक की भूमि म उतनी ही गहन खेती की जाती है। इसलिए इस उपज की पैदावार का अधिक भूमि मे विस्तार नही होता है अर्थात् उपज का क्षेत्र सकीर्ण हो जाता है। यातायात की लागतें ऊँची होन के बावजूद उत्पादन अन्य लागतो क बढन स बढता है। यह आर्थिक गतिविधि उपज के क्षत्र म विस्तार करती है।

उपर्युक्त सभी निर्धारक आर्थिक तत्व अन्योन्याश्रित रहते हैं। सामान्यत प्रत्येक आर्थिक समस्या मे इसी प्रकार की स्थिति पायी जाती है। इससे उत्पादो की कीमतो और उनके पैदावार के क्षेत्रो का अनुमान लगाना कठिन होता है। परन्तु विभिन्न उपजो के क्षत्रो की सापेक्षिक स्थिति भिन्न होती है। इस आर्थिक विश्लेषण म हमने सबसे सरल मान्यता यह स्वीकार की है कि यातायात की लागतें विभिन्न उत्पादो के लिए परिवर्तित होती रहती हैं। हमारी मान्यता के अन्तर्गत उत्पाद की कीमतें, एक एकड भूमि म उत्पन्न होन वाली उपज क यातायात व्यय पर सापेक्षिक रूप से निर्भर रहती है। यह लागत जितनी अधिक होती है, बाजारो के द्वारा उतनी ही अधिक मात्रा मे इन उपजो को आकर्षित किया जाता है ताकि वे अधिक से अधिक मात्रा मे बिक सकें।

यातायात की लागतें मूलरूप मे बाजार की दूरी द्वारा निश्चित होती है अर्थात बाजार की दूरी अधिक होने पर अधिक और कम होने पर कम होती हैं। इसलिए वाव थ्यू नन क्षेत्र सकन्द्रिक वत्तो (Concentric circles) के बीच स्थित होते हैं। इन वृत्तो के मध्य बिन्दु मे बाजार स्थित होता है। यातायात के मुख्य मार्ग रेल, सडक, नाव्य नदियाँ और समुद्र होते हैं। इन मार्गों के द्वारा

यातायात करने पर यातायात की लागतें सबसे सस्ती होती है। भूमि की अपेक्षा जल के द्वारा किया जाने वाला यातायात सस्ता पड़ता है। यातायात की कम-से-कम लागत प्राप्त करने के लिए उपजों के क्षेत्र यातायात रूपी धमनियों के किनारे फैले रहते है और हमेशा बाजार के अधिक समीप पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। यातायात के साधनों की कमी के कारण ये प्रयत्न और तेजी से किये जाते है। उदाहरणार्थ — दक्षिण वेल्स के छोटे पहाड़ी फार्मों मे मक्खन और तरल दूध का उत्पादन किया जाता है। इन उत्पादों के यातायात का खर्च बहुत अधिक होता है, फिर भी इन्हे चारो ओर चौड़ी घाटियों से कार्डिफ भेजा जाता है।

उपजों के क्षेत्रों के नियमित प्रबन्ध के लिए यह मान्यता स्वीकार की जाती है कि इन क्षेत्रों के लिए केवल एक बाजार उपलब्ध हैं, जहाँ उस क्षेत्र-विशेष की समस्त उपज बिक्री के लिए भेजी जाती है। बहुत से नगरों को इनकी पूर्ति करने वाले जिले परस्पर मिले जुले (Overlap) रहते है। इसलिए उन क्षेत्रों को सकुचित करने मे ये नगर बड़ी सहायता करते हैं। यद्यपि उपजों को इन क्षेत्रों मे कुछ अन्य दिशाओं मे बिक्री के लिए भेजा जा सकता है। बिक्री का दबाव इन दिशाओ द्वारा भी पड़ता है। वैसे हम प्रत्येक गाँव और प्रत्येक परिवार को बाजार कह सकते हैं, क्योकि उनमें भी बिक्री का दबाव डालने का गुण होता है। बाजार का आकर्षण परिवर्तनशील होता है। यातायात के लिए अधिक खर्चीली उत्पादों का उत्पादन फार्म परिवार अपने और पड़ोसी गैर फार्म परिवारो के उपयोग के लिए करते है। ये परिवार केन्द्रीय बाजार के लिए ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जो उस क्षेत्र मे सबसे लाभदायक होती है और जिनमे उनके शेष साधनो का भली-भाँति उपयोग हो जाता है।

कई कृषि उत्पादों का उपभोग अपने मौलिक रूप मे नही किया जाता है। वे कम वजनदार उत्पादों के रूप में परिवर्तित की जाती हैं। कृषक अपने फार्म मे इन उपजों को कम मात्रा मे परिवर्तित कर लेते है। यातायात की सबसे लाभदायक (सुसंगत) लागतें, अन्तिम उत्पाद की लागतों का निर्धारण करती हैं। यही कारण है कि मनगोल्ड या शलजम जैसी जड़ो को फार्म के पशुओं को खिलाया जाता है। इन वस्तुओं की पैदावार का निर्धारण जड़ो द्वारा नही होता है, बल्कि दूध या मांस की प्रति एकड़ पैदावार द्वारा किया जाता है। आजकल यह परिष्करण प्रक्रिया सस्ती कीमत मे कारखानों के द्वारा की जाती है।

उदाहरणार्थ—मक्खन, पनीर और शक्कर के उत्पादन की परिष्करण प्रक्रिया। दूध या गन्ने का कच्चे माल के रूप में यातायात बहुत महँगा पड़ता है। इसलिए इन वस्तुओं के उत्पादक इनके कारखानों के चारों ओर बस जाते हैं। इन कारखानों की स्थिति उपज के क्षेत्र में केन्द्रीय बाजार तक की यातायात लागत और मक्खन, पनीर या शक्कर इत्यादि के उत्पादन की मात्राओं पर निर्भर होती है।

5 स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व

सामान्य आर्थिक जीवन में ऐसे कई अन्य तत्वों द्वारा उपजों के क्षेत्रों का परिवर्तन होता है, जिनका यातायात की लागतों से कोई सम्बन्ध नहीं पाया जाता है। इस प्रकार के कुछ अन्य आर्थिक तत्व निम्नलिखित हैं —

(1) प्राकृतिक वातावरण, जो कभी एक उत्पाद के पक्ष में तो कभी दूसरे उत्पाद के पक्ष में होता है।

(2) मिश्रित फार्मिंग के लाभ, जो प्रत्येक फार्म में कई उपजों के उत्पादन को प्रोत्साहित करते हैं।

(3) कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में पाया जाने वाला सस्ता श्रम।

(4) कुछ उपजों के प्राकृतिक वितरण में शासन का हस्तक्षेप।

उपज के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण रूपान्तरण विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित प्राकृतिक परिस्थितियों के परिणाम होते हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति की भिन्नता के कारण उद्योग और कृषि की सापेक्ष स्थितियों में नाममात्र परिवर्तन होता है। भूमि का संघटन, औद्योगिक उत्पादन की लागतों को प्रभावित नहीं कर पाता है। परन्तु इसके विपरीत भूमि की उर्वरा शक्ति के कारण कृषि-उत्पादनों की लागतें कम हो जाती हैं। अतः कृषि के लिए उपजाऊ भूमि की ज्यादा कीमत दी जाती है। कृषक उद्योग के नजदीक स्थित उपजाऊ भूमि की अपेक्षा कम उपजाऊ और थोड़ी दूर की भूमि का चुनाव करते हैं। यह चुनाव उद्योग से कृषि के स्थानान्तरण में सहायक होता है। यद्यपि बाजार से समीप, उपजाऊ भूमि में खेती करने से अधिक अनाज उत्पन्न होता है, परन्तु इस भूमि का उपयोग खेती के लिए न होकर, उद्योग अथवा आवास के लिए किया जाता है। बाजार से नजदीक होने का औद्योगिक महत्त्व कृषि कार्य की उर्वरा शक्ति पर आधारित दृष्टिकोण से ज्यादा प्रभावशील होता है। उदाहरणार्थ—जब मिडिलसेक्स में अत्यधिक उपजाऊ जमीन को उद्योग के लिए लिया जाता है, तब हमें यही समझना चाहिए कि इस क्षेत्र का विकास लन्दन

की समीपता के कारण हो रहा है। एक भूमि कृषि के लिए उपजाऊ हो सकती है, परन्तु उसकी स्थिति औद्योगिक दृष्टि से उसे अधिक मूल्यवान बना देती है। जब भूमि का प्रयोग, पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति पर न होकर, नगर एवं ग्रामीण आयोजन कानून (Town and country planning act) के अनुसार निर्धारित किया जाता है, तब उपर्युक्त आर्थिक तत्वों पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता होती है।

विभिन्न फार्म-उत्पादों के क्षेत्रीय वितरण में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन परवर्ती उर्वरा शक्ति के अनुसार किये जायेंगे। फार्म पदावार और उद्योग पैदावार में (प्रति एकड़) बड़ा अन्तर पाया जाता है, परन्तु एक फार्म की विभिन्न उत्पादों में यह अन्तर उर्वरा शक्ति के कारण बहुत अधिक मात्रा म प्रकट नहीं होता है। इसी प्रकार एक फार्म की भिन्न-भिन्न उपजों के लिए बाजार की दूरी अधिक महत्त्व नहीं रखती है, परन्तु कृषि और उद्योग की पैदावार के तुलनात्मक दृष्टिकोण से बाजार की दूरी बहुत महत्त्वपूर्ण होती है।

भूमि में निम्नलिखित दो प्रकार की भिन्नताएँ पायी जाती है —

(1) उर्वरा शक्ति के अनुसार।

(2) स्थलाकृति विज्ञान, तापक्रम और वर्षा के अनुसार।

कुछ भूमि एक प्रकार के उत्पाद की अपेक्षा दूसरे प्रकार के उत्पाद के लिए ज्यादा योग्य होती हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण इस प्रकार है —इंग्लैण्ड में केले या नारियल का उत्पादन बहुत अधिक उत्पादन लागत के द्वारा ही सम्भव होता है। बाजार के बहुत अधिक आकर्षण का इस उत्पादन लागत म कोई प्रभाव नहीं पडता है। साधारणत एक प्रकार की जलवायु के अन्तर्गत कुछ उपजें एक क्षेत्र की अपेक्षा दूसरे क्षेत्र में सरलता से उत्पन्न होती है। इंग्लैण्ड म आलू उत्पन्न करने वाला मुख्य क्षेत्र बाजार से समान दूरी पर होने के बावजूद समान क्षेत्र में नहीं फैला है। अपितु, यह क्षेत्र फेन्स (Fens) और लंकाशायर (Lancashire) म हम्बर (Humber) और वाश (Wash) के जलोढ क्षेत्रों में बहुत अधिक सीमा तक केन्द्रित है। आलू की पैदावार के लिए इन क्षेत्रों म विशेष रूप से योग्य जमीन पायी जाती है। लन्दन स पूर्व की ओर समान दूरी की अपेक्षा, इंग्लैण्ड के पश्चिमी भाग में डेरी की गायें ज्यादा संख्या में पाला जाती है क्योंकि पश्चिमी भाग की गीली जलवायु में घास का बहुत अधिक उत्पादन होता है। मान लीजिए, बाजार से बहुत दूर एक भूमि में मृदा की

श्रेष्ठता के कारण, आलू के उत्पादन की लागत प्रति एकड़ कम पायी जाती है और यदि उस भूमि में गेहूँ पैदा किया जाय, तो गेहूँ की पैदावार प्रति एकड़ कम होती है। साथ ही यातायात की लागत की (प्रति एकड) अतिरिक्त मात्रा के कारण उत्पादन की लागत (प्रति एकड) और अधिक हो जाती है। इसलिए बाजार से दूर इस क्षेत्र में गेहूँ के स्थान पर आलू की खेती करना सम्भव होता है।

एक ही फार्म में कई प्रकार की उत्पादों के उत्पन्न करने से उत्पादन की लागत कम हो जाती है। इन उत्पादों के क्षेत्रों के वितरण में इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।[1] यदि कृषक किसी एक उत्पाद के उत्पादन में अपना ध्यान केन्द्रित करता है, तो उसे ज्यादा लाभ नहीं होता है। लाभ की इस मात्रा का मृदा की श्रेष्ठता, जलवायु या बाजार के आकर्षण इत्यादि के आधार पर भी अधिक अनुकूल नहीं माना जाता है। कई उत्पादों के स्थान पर केवल एक उत्पाद उत्पन्न करने से उत्पादन और बाजार की लागतें कम हो जाती हैं।

कृषि के अन्तर्राष्ट्रीय वितरण में हमारे आर्थिक विश्लेषण का व्यावहारिक उपयोग किया जाना आवश्यक है। ग्रेटब्रिटेन, विश्व के कृषि-क्षेत्र में एक बड़े बाजार की भूमिका अदा करता है। ब्रिटिश बाजार की पूर्ति के लिए डेनमार्क, अरजेंटाइना, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया और बहुत-से अन्य देश निर्देशित होते हैं अर्थात् इन समस्त देशों से ब्रिटेन में अनाज बिकने आता है। ऐसे उदाहरण में हम अपनी इस मौलिक मान्यता का परित्याग कर देते हैं कि वास्तविक मजदूरी सब स्थानों में एक बराबर होती है। इसका कारण विभिन्न देशों में श्रम की गतिशीलता का कम होना है। साथ ही इन देशों में जनसंख्या से सम्बन्धित प्राकृतिक साधन और विकसित तकनीक की कम उन्नति के कारण जीवन स्तर नीचा रहता है। ऐसे देशों में लाभदायक स्थिति के देशों की गहन खेती की अपेक्षा, अधिक जमीन पर खेती करने के बावजूद प्रति श्रमिक कम प्रतिफल प्राप्त होता है। परन्तु ये देश विवशता के कारण अधिक मात्रा में खेती करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के वासियों को उन वस्तुओं के उत्पादन में अपना ध्यान

---

1 अध्याय 2 उप-शीर्षक 3 देखिए।

आवश्यक रूप से केन्द्रित करना चाहिए, जिनमे सापेक्ष कमियां सबसे कम होती हैं, क्योंकि ये लोग अन्य ऐसे क्षेत्रों मे नहीं जा सकते जहाँ उनकी कमिया कम-से-कम बिलकुल दूर हो जाये। यही कारण है कि अत्यधिक जनसंख्या वाले देशो मे फार्मिंग की जाती है। इन देशो मे कम उपजाऊ और बाजार से दूर भूमि मे अपनी घरेलू मांगो की पूर्ति और निर्यात के लिए खेती की जाती है। यहाँ औद्योगिक उत्पादन के लिए सुविधाएँ, आर्थिक दृष्टि से निकृष्ट होती है।

सामान्यत. विभिन्न देशो के बीच उत्पादो का आवागमन जान बूझकर लगाये गये शासकीय नियन्त्रणो और यातायात की अत्यधिक लागतो द्वारा अवरुद्ध हो जाता है। कभी-कभी किन्ही देशो मे शासन के द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता और सहयोग से कुछ वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है। इन निष्कर्षों पर अध्याय 9 मे विचार किया गया है। उपर्युक्त कारण उत्पादन के वितरण को अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि मे परिवर्तित करते हैं। उदाहरणार्थ—यूरोप मे शक्कर का उत्पादन चुकन्दर (Sugar beet) के रूप मे होता है। यद्यपि वेस्ट इण्डीज मे गन्ने के रूप मे उत्पन्न करने मे इसके उत्पादन की लागत कम पायी जाती है। इस प्रकार की परिस्थितियो को, इस अध्याय मे लिखे आर्थिक विश्लेषण द्वारा समझाना सम्भव नही है।

6 निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों के सन्तुलन की प्रतिक्रिया से कृषि की वास्तविक स्थिति का निर्धारण होता है। अपना ध्यान बाजार के आकर्षण, जलवायु की भिन्नता, भूमि मे विभिन्न उपजो की उत्पादन शक्ति मे अन्तर और विविधीकरण (Diversification) के लाभो पर केन्द्रित करने पर, प्रत्येक देश मे अनुकूलतम व्यवस्था (Optimum pattern) भिन्न रूप मे मिलती है। इन भिन्न परिस्थितियो के पृथक् होते ही, कृषि-उपजो का वास्तविक वितरण उत्पादन और विक्रय की लागतो में होने वाली वृद्धि की गति से निर्धारित होता है। कभी-कभी बाजार की समीपता के लाभ अन्य सभी परिस्थितियो से उत्पन्न लाभो से ज्यादा महत्त्वपूर्ण होते है। जब किसी एक क्षेत्र[1] में केवल एक ही उत्पाद का उत्पादन किया जाता है, तो सभी आर्थिक तथ्य उसके उत्पादन

---

1 अध्याय 2, उप-शीर्षक 2 देखिए।

पर प्रभाव डालते हैं। साधारणतः बाजार के चारों ओर के क्षेत्र में केवल एक उपज उत्पन्न नहीं की जाती है। इस क्षेत्र में फार्म अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत सुदूर क्षेत्रों की तुलना में नाशवान् फल, सब्जियाँ, आलू और दूध इत्यादि अधिक मात्रा में पैदा किये जाते हैं। बाजार से सुदूर स्थित क्षेत्र में कोई भी नाशवान् वस्तु या भारी उपज (घरेलू उपभोग के लिए छोड़कर) विक्रय के लिए उत्पन्न नहीं की जाती है। ऐसे क्षेत्र में हेर-फेर (Rotation) की पद्धति से, कुछ सरलता से यातायात की जा सकने वाली उपजों को बोया जाता है। बाजार से दूर समस्त क्षेत्रों में किसी एक उत्पाद के योग्य भूमि उपलब्ध होने की स्थिति में उत्पाद अनुमान से अधिक अनुपात में उत्पन्न की जाती है।

प्रमुख बाजार के समीप और दूरी के क्षेत्रों में प्रारूपिक फसलों के हेर-फेर का तुलनात्मक अध्ययन करने से विविधीकरण और बाजार के आकर्षण के संयुक्त प्रभाव, स्पष्ट रूप में, दिखते हैं। बड़े बाजार के समीप एक कृषि योग्य फार्म में फसलों का इस प्रकार का हेर फेर (Rotation) किया जाता है कि आलू को 3 या 4 वर्षों में एक बार बोया जा सके। इस फार्म में गेहूँ और बीज-घास (Seed-hay) को वैकल्पिक रूप में बोया जाता है। बीज-घास पशुओं को खिलायी जाती है, परन्तु पशुओं का शेष आहार अन्य क्षेत्रों से खरीदा जाता है।

बड़े बाजार से दूर कृषि फार्मों में आलू (स्वतः के उपभोग के लिए छोड़कर) विक्रय के लिए उत्पन्न नहीं किया जाता है। हेर-फेर की पद्धति के अन्तर्गत 5 या 6 वर्ष में केवल दो फसलों को उत्पन्न किया जाता है। शेष वर्षों में घास और जड़ें उत्पन्न की जाती हैं। यह घास और जड़ें पशुओं को खिलायी जाती हैं।

इन समस्त आर्थिक तथ्यों और परिस्थितियों का सम्मिलित प्रभाव उन क्षेत्रों में दिखलायी पड़ता है, जहाँ से बड़े-बड़े ब्रिटिश शहर आयात पर नियन्त्रण लागू होने के पूर्व अपनी खाद्य सामग्रियों की पूर्ति किया करते थे। उदाहरणार्थ—बाजार के आकर्षण के कारण समस्त मात्रा का तरल दूध, कृषक परिवारों में उत्पन्न किया जाता था। सभी भारी उपजें जैसे आलू[1]

---

1 अगले पृष्ठ पर तालिका देखिए।

(विशेषकर जल्दी उत्पन्न होने वाला) मार्च, अप्रैल या मई तक आ जाता था। ब्रिटिश जलवायु आलू के उत्पादन के अनुकूल न होने के कारण आलू के उत्पादन में अधिक लागत लगती थी। इसलिए गरम क्षेत्रों से शेष आलू की मांग की पूर्ति की जाती थी। इसके अतिरिक्त बाजार के समीप क्षेत्रों में निम्नलिखित चार उत्पादें पैदा की जाती थी —

(1) सुअर का मांस
(2) सब्जियाँ
(3) मुर्गियाँ
(4) अन्य नाशवान् वस्तुएँ

सरलता से यातायात की जा सकने वाली वस्तुओं को सुदूर क्षेत्रों से अधिक-से-अधिक मात्रा में आयात किया जाता था। उदाहरणार्थ—ब्रिटिश जलवायु में मक्खन का उत्पादन सरलता से किया जा सकता था, परन्तु मक्खन का उत्पादन प्रति एकड़ कम होने से कुल मांग का केवल 13 प्रतिशत भाग स्वदेश में उत्पन्न किया गया। इसी प्रकार निम्नलिखित सूची में अन्तिम चार वस्तुओं को भी स्वदेश में उत्पन्न किया जा सकता था :—

सन् 1924-28[1] में स्वदेश में उत्पन्न ब्रिटेन को खाद्य सामग्री का प्रतिशत :—

खाद्य सामग्री	प्रतिशत
(1) तरल दूध	100
(2) आलू	90
(3) सुअर के शुष्क मांस के अतिरिक्त अन्य मांस	82
(4) आलू को छोड़कर शेष सब्जियाँ	75
(5) मुर्गीपालन एवं शिकार	64

1. युद्ध के पूर्व आयात की सीमाओं के द्वारा कृषि-उत्पादन को विशेष सहायता दी जाने से कई उत्पादों के प्रतिशत में वृद्धि हुई। उदाहरणार्थ—शक्कर, गेहूँ, सुअर का शुष्क मांस और सहत दूध (Condensed Milk)। युद्ध के कारण आयात में भारी कटौती हुई, परन्तु स्वदेश में कई वस्तुओं के उत्पादन में तेजी लाने से उनके प्रतिशत में परिवर्तन हुआ।